मध्य प्रदेश की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखांकन : व्यवहार एवं मूल्यांकन

(ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाईयों के विशेष सन्दर्भ में)

वाणिज्य विभाग के अन्तर्गत पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

वर्ष 1996

निदेशक:
डॉ. डी.सी. अग्रवाल
रीडर वाणिज्य संकाय
बुन्देलखण्ड (पी.जी.) कॉलेज,
झांसी (उ.प्र.)

शोधार्थी
सुधीर कुमार त्रिपाठी

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

मध्य प्रदेश की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखांकन : व्यवहार एवं मूल्यांकन

(ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाइयों के विशेष संदर्भ में)

विषय - सूची

तृतीय अध्याय- प्रबंधकीय लेखांकन

चतुर्थ अध्याय- पूंजी संरचना एवं वित्तीय योजना

पंचम अध्याय- वित्तीय विवरणों का विश्लेषण

षष्टम अध्याय- लागत लेखा तकनीकें

सप्तम अध्याय- प्रबन्ध सूचना प्रणाली

अष्टम अध्याय- आय प्रबन्धन

नवम् अध्याय - निष्कर्ष , एवं सुझाव

परिशिष्ठ

मध्य प्रदेश की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखांकन : व्यवहार एवं मूल्यांकन

(ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाइयों के विशेष संदर्भ में)

तालिका - सूची

Dr. D.C. Agrawal

Reader

Faculty of Commerce,
Bundelkhand (P.G.) College,
Convenor, Board of studies,
Faculty of commerce,
Bundelkhand University
Jhansi- 284001 (U.P.)

☎ . Res- 442675
College 440562

`KANCHAN- KUTIR'
27/2, Panchkuiyan
JHANSI
Pin- 284002

प्रमाणित किया जाता है कि:-

(1) सुधीर कुमार त्रिपाठी ने अपने शोध केन्द्र पर 200 दिन से अधिक उपस्थित रहकर मेरे निर्देशन में अपना शोधकार्य निर्धारित अवधि में पूर्ण किया है।

(2) ''मध्य प्रदेश की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखांकन : व्यवहार एवं मूल्यांकन (ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाईयों के विशेष सन्दर्भ में)'' शीर्षक पर यह शोध प्रबन्ध सुधीर कुमार त्रिपाठी ने स्वयं के परिश्रम का प्रतिफल है।

(3) विषय वस्तु, भाषा एवं शैली तथा अन्य सभी दृष्टियों से यह प्रबन्ध पूर्णतः मौलिक एवं पीएच.डी. उपाधि स्तर का है और परीक्षकों के पास परीक्षण के लिये प्रेषित करने योग्य है।
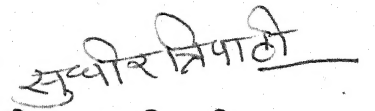
(डा. डी. सी. अग्रवाल)

घोषणा-पत्र

मैं घोषणा करता हूं कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "म० प्र० की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखांकन : व्यवहार एवं मूल्यांकन (ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाईयों के विशेष सन्दर्भ में)" शीर्षक पर पी०एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत यह मेरा शोध प्रबन्ध मेरे स्वयं का मौलिक प्रयास है । जहॉ तक मुझे ज्ञात है कि इस विषय पर देश अथवा विदेश में शोध प्रबन्ध प्रस्तुत नहीं हुआ है ।

झॉसी
दिनांक

सुधीर त्रिपाठी

सुधीर कुमार त्रिपाठी
शोध छात्र

आमुख

आज के इस प्रगतिशील युग की मुख्य समस्या आर्थिक विकास की समस्या है तथा अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा किये जाने वाले चिन्तन का यह एक केन्द्र विन्दु रहा है। किसी भी देश का आर्थिक विकास औद्योगीकरण के अभाव में सम्भव नहीं है। उद्योग मानव जीवन के लिये वरदान तथा देश के सर्वांगीण एवं बहुमुखी प्रगति की आधारशिला हैं। सभी विकसित राष्ट्रों की परिभाषा में वे ही राष्ट्र सम्मिलित होने का गौरव प्राप्त कर सकते हैं, जिन्होंने न केवल तीव्र बल्कि सुव्यवस्थित औद्योगिक विकास किया है और वे देश जो ऐसा नहीं कर सके हैं वे अल्पविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों की परिभाषा में सम्मिलित किये जाते हैं। यह दुर्भाग्य ही है कि भारत में औद्योगिक विकास की सभी अनुकूल परिस्थितियां होने के बावजूद यह आज भी मात्र विकासशील राष्ट्रों की अग्रिम पंक्ति में ही गिना जाता है और विकसित राष्ट्र होने का गौरव प्राप्त नहीं कर सका है।

आधुनिक युग में प्रत्येक व्यावसायिक संस्था गतिशील वातावरण में कार्य करती है इसीलिये वर्तमान समय में व्यवसाय का प्रबन्ध जटिल से जटिलतर होता जा रहा है और नित्य नई प्रबन्ध सम्बन्धी समस्यायें जन्म ले रही हैं। गतिशील एवं परिवर्तनशील सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण के कारण ही किसी संस्था के कुशल प्रबन्धन के लिये बड़े पैमाने पर उत्पादन,शोध,विस्तार, उत्पादन सुधार तथा उत्पाद-विविधता , बाजार के विस्तार आदि अनेक तथ्यों पर ध्यान देना तथा उनके सम्बन्ध में सुनिशिचत योजनायें बनाना आवश्यक हो गया है। वास्तव में इन तथ्यों एवं इनसे सम्बन्धित समस्याओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि वित्तीय लेखांकन अपने परम्परागत रुप में प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि नहीं कर सकता। तीव्र प्रतिस्पर्द्धा के कारण औद्योगिक एवं व्यावसायिक संस्थाओं के जीवित रहने एवं विकास के लिये संचालन कुशलता एवं प्रवन्धकीय कुशलता में वृद्धि करना तथा समयानुकूल परिवर्तन लाना आवश्यक हो गया है। अब यह निर्विवाद सत्य माना जाने लगा है कि न्यूनतम लागत पर ही अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस उद्देश्य की सफलता के लिये व्यवसाय की समस्त क्रियाओं पर नियंत्रण तथा उनके संगठन एवं समन्वय द्वारा ही की जा सकती है। वास्तव में आज उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय साधनों का

संयोजन एवं उनका एक योजनावद्ध रुप में उपयोग अत्यन्त आवश्यक है । कोई भी प्रबन्ध तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह समस्त भैतिक एवं मानवीय साधनों का समन्वय न कर ले ।

एक सुनिश्चित योजना का निर्माण , समस्त संक्रियाओं का संगठन, उनमें समन्वय तथा उन पर नियंत्रण, इन सभी कार्यो की सफलता आवश्यक सूचनाओं एवं आंकड़ों की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं । वर्तमान में प्रबन्ध व्यवस्थाओं में सूचनाओं का निरंतर प्रवाह परम आवश्यक हो गया है क्योंकि उनके आधार पर ही प्रबन्धक दिन-प्रतिदिन महत्वपूर्ण एवं आवश्यक निर्णय ले सकते हैं और उपलब्ध उत्पादन के साधनों का समुचित उपयोग करके तथा उन पर नियंत्रण करने सम्बन्धी योजनाओं का निर्माण करने में सफल हो सकते हैं। इस प्रकार की आवश्यकता ने ही वित्तीय लेखांकन में क्रांतिकारी परिवर्तन करने पर बल दिया है । इसी के फल स्वरुप प्रबन्धकीय लेखांकन का जन्म हुआ है । अब यह स्पष्ट हो चुका है कि वर्ष के अन्त में तैयार तथा प्रस्तुत किये जाने वाले लेखा विवरण,आय विवरण या चिट्ठे से प्रबन्ध सम्बन्धी सूचनायें उपलब्ध नहीं हो सकती । यह वित्तीय विवरण आज संस्था के स्वामियों, विनियोजकों,ऋणदाताओं यहां तक कि अन्य बाहरी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हैं । इन बाहरी व्यक्तियों को इन वित्तीय विवरणों से जिन सूचनाओं की अपेक्षा होती है वे उपलब्ध नहीं हो पाती हैं । इन परम्परागत विवरणों में आवश्यक सूचनाओं की अभिव्यक्ति पर निरंतर बल दिये जाने के कारण वित्तीय लेखांकन एवं लेखाशास्त्र की एक शाखा के रुप में प्रबन्धकीय लेखाशास्त्र का उदय हुआ है । इसमें वित्तीय लेखांकन तथा लागत लेखांकन के व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया जाता है । इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रबन्धकीय लेखांकन ,प्रबन्ध का एक आवश्यक उपकरण है जिसका प्रयोग व्यवसाय के कुशल प्रबन्ध नीति निर्धारण तथा निर्णय के लिये आवश्यक है ।

प्रबन्धकीय लेखांकन में प्रबन्धकीय कला तथा लेखांकन कला दोनों का ही समावेश है । लेखापाल को यह देखना होता है कि जिस सूचना के आधार पर निर्णय लिये जाते हैं, वह सही तथा प्रभावशाली हैं तथा प्रबन्धक का कर्तव्य सही निर्णय लेना है । चूंकि इन दोनों कार्यो में प्रबन्धकीय लेखांकन का योगदान है,अत: प्रबन्धकीय लेखांकन एक ही समय में एक साथ दो कार्य- प्रबन्ध कला एवं लेखांकन, सम्पादित करता है । प्रबन्ध लेखांकन प्रबन्ध के लिये एक वरदान हैं तथा प्रबन्ध व्यवहार में एक प्रभावशाली यंत्र है । प्रबन्ध को एक चिकित्सक के समान, लेखांकन को एक्सरे मशीन तथा व्यवसाय को एक मरीज मान लिया जाये तो लेखांकन की विभिन्न तकनीकों के द्वारा

निदान करके प्रबन्ध एक रुग्ण व्यवसाय का इलाज कर सकता है, बशर्ते बीमारी उपचार योग्य हो। इस प्रकार प्रबन्धकीय लेखांकन प्रबन्ध का महत्वपूर्ण यंत्र है जो व्यवसाय संचालन की विभिन्न क्रियाओं का सूक्ष्य विश्लेषण करता है तथा प्रबन्ध को सही दिशा में कार्य करने एवं निर्णय लेने के लिये बाध्य करता है।

मध्य प्रदेश भारत के मध्य भाग में स्थित देश के क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल ४,४३,४४६ वर्ग किलोमीटर है। वर्तमान में मध्य प्रदेश राज्य देश के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह प्रशंसा की बात है कि मध्य प्रदेश के औद्योगिक विकास में इन्दौर,भिलाई,भोपाल एवं ग्वालियर का स्वर्णिम इतिहास रहा है। वर्तमान में ग्वालियर परिक्षेत्र दिन-प्रतिदिन औद्योगिक दृष्टि से प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक अग्रणी है। इस बात का प्रमाण यह है कि ग्वालियर परिक्षेत्र में दो बड़े औद्योगिक केन्द्र क्रमशः बानमोर एवं मालनपुर में स्थित हैं। साथ ही स्थानीय ग्वालियर में काफी समय से विश्वप्रसिद्ध बड़ी औद्योगिक इकाईयां सफलतापूर्वक कार्यरत हैं। औद्योगिक केन्द्रों में सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जा रही विभिन्न सुविधओं एवं सहायताओं के कारण ग्वालियर परिक्षेत्र औद्योगिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न होता चला जा रहा है। यहां तक कि इस क्षेत्र में बड़ी-बड़ी एवं प्रतिष्ठित औद्योगिक घरानों की औद्योगिक इकाईयां स्थापित की जा रही हैं।

उद्योगों के सुव्यवस्थित विकास एवं संचालन में प्रबन्धकीय लेखांकन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान में प्रबन्धकीय लेखांकन का महत्व और भी बढ़ता जा रहा है। प्रबन्धकीय लेखांकन की सफलता एवं बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण ही मैंने इस विषय को शोधकार्य के लिये चुना है। वाणिज्य संकाय का छात्र होने के कारण मेरी यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि विभिन्न औद्योगिक इकाईयों के सुव्यवस्थित संचालन में प्रबन्धकीय लेखांकन की क्या भूमिका रहती है।? साथ ही उपकरण जो व्यवसाय के सफल संचालन में सहायक होते हैं। शोध प्रबन्ध लिखने का मूल उद्देश्य औद्योगिक इकाईयों में प्रयुक्त प्रबन्धकीय लेखांकन की तकनीकों का पूर्ण विश्लेषण करके ऐसे रचनात्मक एवं उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करना हैं जो न केवल ग्वालियर परिक्षेत्र के मात्र चुनी हुई इकाईयों के लिये उपयोगी हों बल्कि शोध प्रबन्ध के क्षेत्र में एक स्थायी उपलब्धि बन सकें।

विषय की व्यापकता एवं गहन विश्लेषण की दृष्टि से ग्वालियर परिक्षेत्र की सभी इकाईयों का विश्लेषण करना न तो व्यवहारिक ही है और न ही विषय की अनिवार्यता । विषय के पूर्ण एवं गहन विश्लेषण करने की दृष्टि से ही ग्वालियर परिक्षेत्र की निम्न इकाईयों को अध्ययन के लिये चुना गया है-

(१) ग्वालियर रेयान, (२) जे०के० टायर , (३) गोदरेज,(४) पंचशील (अपोलोटायर लिमिटेड) (५) कैडवरीज ,(६) ग्वालियर दुग्ध संघ ।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य " मध्य प्रदेश की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखांकन-व्यवहार एवं मूल्यांकन " (ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाईयों के विशेष संदर्भ में) का विस्तृत अध्ययन करना है। वर्तमान परिस्थितियों में इन इकाईयों की क्या स्थिति है ? इन इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखांकन की क्या भूमिका है ? इसकी समीक्षा करना है । इस हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को नौ अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में मध्य प्रदेश की औद्योगिक पृष्ठ भूमि एवं प्रमुख औद्योगिक इकाईयों का संक्षिप्त परिचय किया गया है । द्वितीय अध्याय में शोध प्रविधि का अध्ययन किया गया है । तृतीय अध्याय में प्रबन्धकीय लेखांकन की अवधारणा , उद्देश्य एवं प्रकृति , तकनीक, कार्य एवं सीमाओं का अध्ययन किया गया है । चतुर्थ अध्याय में पूंजी संरचना एवं वित्तीय योजना का अध्ययन किया गया है । पंचम अध्याय में वित्तीय विवरणों का विश्लेषण किया गया है । षष्ठ अध्याय में लागत लेखें की तकनीकों का अध्ययन किया गया है । सप्तम अध्याय में प्रबन्ध सूचना प्रणाली का अध्ययन किया गया है । अष्ठम अध्याय में आय प्रबन्धन का अध्ययन किया गया है तथा अंतिम एवं नवम् अध्याय में निष्कर्ष सुझाव एवं भावी शोध सम्भावनाओं को प्रस्तुत किया गया है, जिससे विभिन्न पक्षों को लाभ होगा ।

आभारान्जलि

शोध-कार्य के सारस्वत यज्ञ की निर्विध्न समाप्ति एक सुखद अनुभूति है । इस कार्य की "अथ" से "इति" तक की यात्रा विद्वानों के परामर्श, कृतियों के अनुशीलन, औद्योगिक इकाइयों के निरीक्षण, उपलब्ध सामग्री के निरीक्षण, परीक्षण, परीक्षण-विश्लेषण एवं सार संचयन की श्रम साध्य यात्रा रही है जिससे होकर निष्कर्ष रुपी गन्तव्य तक पहुँचना मेरे लिये गुरुजनों के आशीर्वाद से ही सम्भव हो सका है ।

आभारान्जलि के समर्पण की श्रृंखला में सर्वप्रथम मैं शोध प्रबन्धक के निर्देशक अपने गुरु डॉ० डी० सी० अग्रवाल के प्रति आभारी हूं जिन्होंने विषय सुझाने से लेकर शोध यात्रा के प्रत्येक चरण में अपने वहुमूल्य परामर्शो , एवं प्रोत्साहन पूर्ण मार्ग दर्शन से मुझे उपकृत किया है ।

बुन्देलखण्ड कालेज के वाणिज्य विभाग के सभी गुरुजनों जिनके चरणों में बैठकर मैने वाणिज्य का "क ख ग " सीखा तथा शोध प्रबन्ध की गुत्थियों को सुलझाने में जिनसे सहायता मिली उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूं ।

शोध प्रबन्ध के कलेवर का अधिकांश मुझे ग्वालियर की औद्योगिक इकाइयों के स्वयं निरीक्षण अधिकारियों-कर्मचारियों द्वारा उपलब्ध कराए गए ऑकडों एवं जानकारियों के विना मेरा यह विनम्र प्रयास सफल न हो पाता इसका मुझे भली भॉति ज्ञान है तदर्थ मैं आभारी हूं ।

विभिन्न ग्रन्थालयों में पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं आदि की उपलब्धि शोधार्थी की निधि होती है इस क्रम में मैं बुन्देलखण्ड महाविद्यालय झाँसी, आई०सी०एस०एस-आर, नई दिल्ली ,सप्रू हाउस नई दिल्ली, आगरा विश्वविद्यालय आगरा के पुस्तकालायों के अधिकारियों व कर्मचारियों के प्रति उनके स्नेहपूर्ण सहयोग के लिये मैं आभारी हूं ।
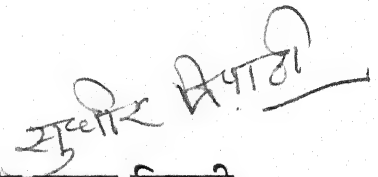
यह शोध प्रबन्ध शोध निर्देशक के स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन , बुन्देलखण्ड कालेज,झाँसी के वाणिज्य विभाग के सभी गुरुजनों के हित चिन्तन,विभिन्न ग्रन्थागारों की परिक्रमा, औद्योगिक इकाइयों के अधिकारियों व कर्मचारियों के सहयोग का प्रतिफल तो है ही परन्तु मुझे लगता है कि मेरे स्वर्गीय

पूज्य पिताजी का अदृश्य आशीर्वाद पूर्ण वरद हस्त छाया की भाँति मेरे साथ इस प्रबन्ध के प्रणयन की पूर्ण अवधि में रहा है । यह मेरे लिये कचोटन की वात है कि इस प्रबन्ध की पूर्णता पर प्रसन्न होने वाले पिताजी आज कीर्तिशेष हो चुके हैं ।

मेरी वात्सल्य मयी जननी जो पिता के संरक्षण एवं माता की ममता दोनों का अजस्त्र दान मुझे दे रही हैं उनके आशीर्वाद के प्रति आभार व्यक्त कर मैं उनके प्रदेय को कम कर आंकने का दुस्साहस मैं नहीं कर सकता ।

परिवार के सभी सदस्यों ने अपनी सुविधा-असुविधा का ध्यान न रखते हुए मुझे निश्चिन्त रख कर शोधकार्य को जो गति दी है वह उनके त्याग के विना मिल ही नहीं सकती थी ।

इस शोध प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करते हुए मुझे आत्मतोष का अनुभव हो रहा है इसमें विद्वानों को जो कुछ अच्छा लगे वह मैं चाहूंगा कि गुरुजनों, मातापिता एवं प्रभु का प्रसाद समझा जावे तथा जो अपेक्षाकृत त्रुटिपूर्ण एवं विसंगत लगे उसे मेरी अपरिपक्वता समझा जावे ।

सुधीर त्रिपाठी

सुधीर कुमार त्रिपाठी

शोध छात्र

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

१- प्रस्तावना

२- मध्य प्रदेश की औद्योगिक पृष्ठभूमि

३- औद्योगिक विकास
   अ- स्वतंत्रता पूर्व
   ब- स्वतंत्रता पश्चात

४- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों का संक्षिप्त परिचय

५- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की वर्तमान स्थिति

प्रस्तावना

उद्योग मानव जीवन के लिये वरदान तथा देश की सर्वांगीण एवं बहुमुखी प्रगति की आधार शिला है। सभी विकसित राष्ट्रों की परिभाषा में वे ही राष्ट्र सम्मिलित होने का गौरव प्राप्त कर सकते हैं, जिन्होंने न केवल तीव्र बल्कि सुव्यवस्थित औद्योगिक विकास किया है तथा वे देश जो ऐसा नहीं कर सके वे अल्प विकसित एवं विकास शील राष्ट्रों की परिभाषा में सम्मिलित किये जाते हैं। यह दुर्भाग्य ही है कि भारत में औद्योगिक विकास की सभी अनुकूल परिस्थितियों के बाबजूद भी वह आज भी मात्र विकासशील राष्ट्रों की अग्रिम पंक्ति में ही गिना जाता है और विकसित राष्ट्र होने का गौरव प्राप्त नहीं कर सका है।

मध्य प्रदेश भारत के मध्य में स्थित होने के कारण अपने नाम को चरितार्थ करता है। म.प्र. देश के क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बडा राज्य है। इसका क्षेत्रफल ४४३४४६ वर्ग कि.मी. है। देश के सात राज्यों .उत्तर प्रदेश ,राजस्थान , गुजरात , महाराष्ट्र, उडीसा, आन्ध्र प्रदेश, और बिहार से इसकी सीमा मिली हुई है। वर्तमान मध्य प्रदेश स्वातन्त्रयोत्तर भारत की देन है। सन १९४७ में सेन्ट्रल प्राविंस और बरार में बघेलखण्ड ,छत्तीसगढ, की रियासतों को मिलाकर मध्य प्रदेश का राज्य बना जो एक पार्ट (ए) स्टेट थी । इसकी राजधानी नागपुर थी । सन १९५६ के राज्य पुनर्गठन के द्वारा राज्य की सीमा में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये इस प्रकार सीमाओं के परिवर्तन के पश्चात वर्तमान मध्य प्रदेश बना। इसमें कुल ४५ जिले हैं जो बस्तर, भोपाल , विलासपुर , चम्बल , ग्वालियर , इन्दौर , जबलपुर , रीवा , रायपुर ,सागर , होसंगाबाद, तथा उज्जैन सम्भागों में विभाजित है। म० प्र० की सन १९९१ के अनुसार जनसंख्या ५,२१,३८,४६७ है ।

मध्य प्रदेश खनिज सम्पदा की दृष्टि से विशेष धनी राज्य है। लगभग २५ प्रकार के खनिज गोण्डवाना और धारबाड शैलसमूहों में मिलते हैं । इनमें से कोयले का उत्खनन ब्रिटिश काल से ही प्रारम्भ हो गया था लेकिन स्वतंत्रता के बाद जब विकास पर अधिक बल दिया गया तो उन कोयला क्षेत्रों में भी उत्खनन प्रारम्भ हो गया जहाँ पहले संचित भण्डार के रुप में थे । बघेलखण्ड तथा छत्तीसगढ में औघौगिक विकास का आधार कोयला ही है । इसके अलावा लोहा ,मैगनीज ताँबा , बाक्साइट , हीरा , टिन , फायर-क्ले , चाइना क्ले , सिलिका सैंड , इमारती पत्थर इत्यादि अन्य उल्लेखनीय खनिज हैं जिन पर आधारित अनेक उद्योग विकसित हुये हैं ।

मध्य प्रदेश की औधौगिक पृष्ठ भूमि

प्राकृतिक सम्पदा की बहुलता के बाबजूद भी म.प्र. में औद्योगिक विकास बहुत सीमित हुआ था जो पिछले बीस वर्षो में विभिन्न पक्षों की ओर अग्रसर हुआ है। कृषि पर आधारित उद्योग मुख्य रुप से पश्चिमी मध्य प्रदेश में केन्द्रित है तो वनों एवं खनिजों पर आधारित उद्योग पूर्वी मध्य प्रदेश में मुख्य रुप से देखने का मिलते हैं । सूती कपड़े , कृत्रिम रेशे , लोहे-इस्पात , और कागज के उद्योग विशेष उल्लेखनीय हैं उद्योगों के विकास में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों और पूंजीपतियों , तीनों के द्वारा प्रयत्न हुये हैं। औद्योगिक इकाईयों के लिये विशेष छूट दी गई है ।

औद्योगिक विकास के लिये परिवर्तन के साधनों का विकास पहली सीढ़ी है । बिट्रिश काल में जो रेलमार्ग और सड़कें बनीं व देश के विभिन्न भागों को जोड़ने के लिये बनी थी और मध्य प्रदेश से होती हुई जातीं थीं । सड़कें पूरे वर्ष खली हुई नहीं रहती थीं । नियोजित विकास काल में नये क्षेत्रों में परिवहन की सुविधा के लिये रेलमार्ग डाले गये हैं जिससे बस्तर और बधेलखण्ड के विकास में सुविधा हुई है । परिवहन के लिये नदियों के ऊपर पुल बनाय गये हैं । इसके बाबजूद भी छोटा नागपुर बस्तर , और सतपुड़ा के विस्तृत भागों में परिवहनकी सुविधायें संतोषजनक नहीं हैं ।

औद्योगिक विकास -

अ–स्वतंत्रता पूर्व -

भारत के अन्य राज्यों की तुलना में मध्य प्रदेश में उद्योग का विकास काफी मंद गति से रहा है । ब्रिटिश काल में सेन्ट्रल प्राविंस में औद्योगिक संसाधनों के विकास की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है । इसके चारों ओर छोटी - छोटी रियासतें थीं , जो अधिकाँश स्वावलम्बी इकाईयों के रुप में थीं इनके राजाओं का ध्यान प्रादेशिक आर्थिक विकास की ओर अधिक नहीं था । सेन्ट्रल प्राविंस के संसाधनों का उपयोग बहुत कुछ सीमा तक होता था । उदाहरण के लिये इमारती लकड़ी निकाली जाती थी और भारत के विभिन्न भागों को भेजी जाती थी लेकिन वनों पर आधारित अन्य उघोगों का विकास नहीं हुआ था । खनिज जैसे मैंगनीज , सिलिका सैंड , चूने का पत्थर इत्यादि का उत्खनन प्रारम्भ हो गया था लेकिन उन पर आधारित उद्योग स्थापित नहीं हुये थे ।

कपास की कृषि होती थी लेकिन कपड़े का उद्योग उतना विकसित नहीं था , जितना बम्बई तथा अहमदाबाद का था । कपड़े के कारखाने कुछ ही रियासतों में खुल पाये थे । निष्कर्ष रुप में यह कह सकते हैं कि रियासतों के प्राकृतिक संसाधन वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक काल में भी संचित भण्डार के रुप में पड़े रहे , जबकि कलकत्ता और दामोदर घाटी , बम्बई तथा अहमदाबाद बड़े औद्योगिक प्रदेशों के रुप में विकसित हो रहे थे ।

ब- स्वतंत्रता पश्चात् -

स्वतंत्रता प्राप्ति अर्थात सन १९४७ के बाद भी वर्तमान मध्य प्रदेश चार राज्यों के रुप में रहा - भूतपूर्व मध्य प्रदेश , मध्य भारत , विन्ध्य प्रदेश तथा भोपाल । इन सभी भागों का नियोजित विकास स्वतंत्र इकाईयों के रुप में चलता रहा । सन १९५६ में जब वर्तमान मध्य प्रदेश का जन्म हुआ , तब एक बड़े राज्य के रुप में यहाँ संसाधनों का मूल्याँकन और उपयोग प्रारम्भ हुआ मध्य भरत की रियासतें अपेक्षाकृत अधिक विकासोन्मुखी थीं तथा ग्वालियर ,इन्दौर , उज्जैन , रतलाम इत्यादि नगर छोटे - छोटे औद्योगिक केन्द्र बन गये थे लेकिन यहाँ के उद्योग उपभोगता सामग्री से सम्बन्धित थे जैसे - ग्वालियर में कपड़ा , शक्कर , चमड़े के उद्योग स्थापित हो गये थे । भूतपूर्व सेन्ट्रल प्राविंस में नागपुर एवं जबलपुर औद्योगिक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है , लेकिन उद्योगों की दिशा यहॉ भी भिन्न थी । यद्यपि खनिज , वन एवं कृषि संसाधनों की दृष्टि से पूर्वी मध्य प्रदेश अधिक सम्पन्न है , लेकिन फिर भी उस समय का औद्योगिक विकास पश्चिमी मध्य प्रदेश में हुआ ।

मध्य प्रदेश में देश के २५ प्रतिशत कोयले , ३० प्रतिशत लोहे , ५० प्रतिशत मैगनीज , ४४ प्रतिशत बाक्साइट जैसे औद्योगिक संसाधनों में संचित भण्डार है । जल संसाधनों की दृष्टि से भी मध्य प्रदेश सम्पन्न है । प्रदेश वनों की दृष्टि से अग्रणी राज्य है क्योंकि यहाँ पर्याप्त औद्योगिक कच्चा माल भी प्राप्त होता है । कृषि के द्वारा भी बड़ी मात्रा में औद्योगिक कच्चा माल प्राप्त होता है जिसमें कपास , तिलहन गन्ना तथा चावल प्रमुख हैं । हम इन सभी संसाधनों की पृष्ठभूमि में उद्योगों के नियोजित विकास की कल्पना कर सकते हैं ।

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना सन १९५१ में प्रारम्भ हुई । नियोजित विकास के लिये ८३.६६ करोड़ रुपये व्यय करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था । इसके अलावा ३२.१८ करोड़ रुपये केन्द्रीय सरकार की योजनाओं पर व्यय होना था । इनमें से २९.३७ लाख रुपये औद्योगिक

विकास पर व्यय हुआ । इस योजना में औद्योगिक विकास कार्यक्रम को प्राथमिकता नहीं दी गई थी । इस योजना में छोटे - छोटे उद्योगों से सम्बन्धित संस्थाओं तथा व्यक्तियों को आर्थिक सहायता दी गई थी ।

राज्यों के पुर्नगठन से पहले ही द्वितीय योजना बन चुकी थी, जिसमें १९०.९० करोड़ रुपये आर्थिक विकास के लिये निर्धारित किये गये । इसमें से १०३५.०६ लाख रुपये अर्थात ५.४२ प्रतिशत उद्योग तथा उत्खनन के लिये थे । १९५६ में राज्यों के पुर्नगठन के कारण विकास में कुछ व्यवधान हुआ इसी अवधि में भिलाई कारखाने का निर्माण समाप्त हुआ, साथ ही भोपाल हैवी इलैक्ट्रीकल्स से उत्पादन प्रारम्भ हो गया । इससे प्रदेश में रोजगार के नये अवसर उत्पन्न हुये । ग्वालियर पाटरीण तथा चमड़े के कारखाने के विकास में भी अधिक व्यय किया गया । द्वितीय योजना के अन्तर्गत तीन कारखाने स्थापित हुये - पावर अल्कोहल प्लाँट रतलाम, काटनसीड तथा सालवेन्ट -एक्सट्रैक्ट प्लाण्ट, उज्जैन तथा काटन स्पिनिंग मिल रानावद । इसके साथ ही इन्दौर तथ ग्वालियर में इंडस्ट्रियल एस्टेटस स्थापित की गई। द्वितीय योजना के अन्तर्गत ट्रेनिंग केन्द्र ,वर्कशाप तथा फाउण्डरी इत्यादि स्थापित किये गये । इनके अलावा प्रेस्ड मेटल उघोग, साईकिल पार्ट उघोग , पंखे छातों इत्यादि के लिये छोटे - छोटे कारखाने स्थापित किये गये । ग्रामीण उद्योगों की ओर ध्यान दिया गया खादी तथा ग्रमीण उद्योगों का एक संस्थान स्थापित किया गया जो इन उद्योगों के नियोजित विकास की व्यवस्था करे ।

मध्य प्रदेश की तृतीय योजना में विकास कार्यों के लिये ३००.०० करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया, जिनमें ९२९.५७ लाख रुपये उद्योगिक विकास के लिये रखे गये थे इसके अलावा म०प्र० को २०४.०० करोड़ रुपये केन्द्रीय योजना से प्राप्त होने की आशा थी जिसे भिलाई के कारखाने के विस्तार - बेसिक रिफेक्टरी प्रोजेक्ट हैवी इलैक्ट्रीकल्स भोपाल, सिक्योरिटी पेपर के कारखाने के स्थापन, बैलाडिला के लोह-अयस्क तथा पन्ना के हीरा उत्खनन उद्योगों के विकास पर व्यय करने की योजना थी । इसके साथ ही इन्दौर ,ग्वालियर, भोपाल, रायपुर, भिलाई तथा जबलपुर में प्रारम्भ किये गये इन्डस्ट्रियल एस्टेटस का निर्माण कार्य आगे बढ़ाया गया । इस अविध में २६ जिलों में ग्रामीण इंडस्ट्रियल एस्टेटस तथा ५० वर्कशाप बनाने का भी काम लिया गया । इसी अवधि में एक नवीन उद्योग जबलपुर का जिलेटिन बनाने वाला कारखाना तथा ग्वालियर का विक्की मोपेट्स बनाने का कारखाना स्थापित किया गया । उद्योगों के व्यवस्थित

विकास के लिये तीन संगठन बनाये गये -(१) मध्य प्रदेश स्टेट इण्डस्ट्रीज कारपोरेशन (२) म०प्र० लघु उद्योग निगम (३) म०प्र० औद्योगिक विकास निगम । प्रथम संगठन द्वारा सरकारी कारखानों का प्रबन्ध एवं संचालन किया जाता है । औद्योगीकरण में संतुलन बनाये रखने के लिये राज्य शासन ने ४ क्षेत्रीय औद्योगिक केन्द्र विकास निगम स्थापित किये गये हैं । इनके द्वारा प्रदेश में १४ विकास केन्द्र स्थापित किये गये है, जिनमें कम लागत पर औद्योगीकरण की सुविधायें उपलब्ध कराई जाती हैं।

चौथी योजना काल में ३१ बृहद तथा मध्यम वर्ग के उद्योगों की स्थापना हुई जिन पर ८६.३१ करोड़ रुपये का विनियोग हुआ था तथा १०७४० व्यक्तियों को रोजगार मिला । सार्वजनिक क्षेत्र में पेपर इमुनोटेड कंडक्ट प्लाँट , हाइट्रोजनरेट आयल प्लाण्ट , तथा फेरक एसिड ,ग्लीसरीन प्लाण्ट विशेष उल्लेखनीय हैं । निजी क्षेत्र में कोआपरेटिव स्पिनिंग मिल ,बुराहनपुर , मुरैना मण्डल सहकारी शक्कर कारखाना , कॉस्टिक सोडा प्लाण्ट , नायलोन प्लाण्ट , नागडा में स्थापित हुये । कोरवा के एलुमिनियम कारखाने का काम बढ़ाया गया , जिससे अब उत्पादन होने लगा है मध्य प्रदेश स्टेट इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन ने ने सार्वजननिक क्षेत्र में २० इकाईयों के आधुनिकीकरण तथा विस्तार का काम हाथ में लिया , जिनमें ताँबें के कंडक्टर बनाने का उघोग , भोपाल तथा विदिशा में बिजली के लैम्प तथा टयूब लाइट बनाने के उद्योग विशेष उल्लेखनीय हैं । सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के प्रयास से बियर, काँच की बोतलें तथा ट्रान्सफार्मर बनाने के उद्योग स्थापित हुये हैं । मध्य प्रदेश आद्योगिक विकास निगम ने उद्योगों के स्थापन की वित्तीय सहायता का काम बड़े पैमाने पर किया ,जिनमें कास्टिक सोड़ा , औद्योगिक विस्फोटक , सिगरेट ,डिटर्जेन्ट तथा लुगदी और कागज , सीमेंण्ट , रसायन इत्यादि बनाने के उघोग महत्वपूर्ण हैं । मध्य प्रदेश टैक्सटाइल कॉपरिशन ने उज्जैन , राजनॉदगाँव , बुरहानपुर , भोपाल तथा इन्दौर के कपड़े के सात कारखानों के आधुनिकीकरण का काम हाथ में लिया ।

पाँचवी पंवर्षीय योजना में उन क्षेत्रों के औद्योगिक विकास पर विशेष रुप से बल दिया गया , जहाँ उद्योगों के लिये समुचित संसाधन है तथा कृषि सम्बन्धी उघोग स्थापित हो सकते हैं । राज्य के औद्योगीकरण की दर को बड़ाने का लक्ष्य रखा गया । इस के साथ ही औद्योगक उत्पादन तथा उत्पादन क्षमता में बृद्धि करने , उद्योगों की दृष्टि से प्रादेशिक असमानता कम करने , तथा रोजगार के नये अवसर उत्पन्न करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया । इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर राजकीय

उद्योगों को आधुनिकीकरण तथा विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया , जिनमें चमड़े , कपड़े , लकड़ी , कृषि ,मशीन , तार बनाने तथा बिजली का सामान इत्यादि के उघोग उल्लेखनीय हैं । इस योजना काल में बृहद तथा मध्यम उद्योगों की संख्या , उत्पादन क्षमता एवं मजदूरों की संख्या में विशेष रुप से बृद्धि हुई । इस अवधि में इस वर्ग में ४८ औद्योगिक इकाईयां स्थापित की गई तथा राज्य में इनकी कुल संख्या १७९ हो गई । सन - १९७७ में औद्योगीकरण की नीति में मूलभूत परिवर्तन हुआ । इसमें लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया , जिससे छोटे - छोटे नगरों एवं गाँवों में भी रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें । नये उद्यमियों को भी लघु उद्योग स्थापित करने के लिये प्रोत्साहित किया गया ।

छठवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक असंतुलन को दूर करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया जिससे प्रदेश का सर्वागीण विकास हो सके । ऐसे उद्योगों को प्रोत्साहित किया गया जिनमें अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल सके । लक्ष्य यह रखा गया कि औद्योगिक उत्पादन में बृद्धि के साथ -साथ उत्पादकता में भी बृद्धि हो जिससे संसाधनों का अच्छे ढंग से विदोहन किया जा सके । पहले से स्थापित उद्योगों के आधुनिकीकरण पर भी विशेष ध्यान दिया गया जिससे उत्पाद की किस्म प्रतियोगी बाजार में ठहर सके । योजना काल में विभिन्न प्रकार के नये उद्योग विकसित किये गये ,जिनसे काफी सीमा तक लोग रोजगार पाने में सफल रहे ।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में पूर्व में स्थापित उद्योगों के आधुनिकीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया । इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कपड़े , कृषि , मशीन ,लकड़ी , बिजली के सामान के उद्योगों का आधुनिकीकरण किया गया । इस अवधि. में कुछ नये उद्योग विकसित किये गये जिनमें परम्परागत उद्योग जैसे कपड़ा ,भोज्य पदार्थ ,सीमेण्ट ,चीनी मिटटी, के सामान ,कागज , पुटठा , लकड़ी के सामान ,रसायन तथा औषधियाँ ,मशीन एवं औजार परिवहन के उपकरण , प्लास्टिक तथा रबड़ उर्वरक इत्यादि प्रमुख हैं । इस अवधि में लगभग २.७७ लाख लोगों को रोजगार मिला

आठवीं पंचवर्षीय योजना में उन क्षेत्रों के औद्योगिक विकास पर विशेष बल दिया गया है जहाँ उद्योग के लिये समुचित संसाधन उपलब्ध है जिससे उद्योगों की स्थापना तीव्र गति से की जा सके । राजकीय उद्योगों के आधुनिकीकरण तथा विकास का लक्ष्य भी निर्घारित किया गया है । इस अवधि में पूँजीगत सामान के उत्पादन पर विशेष ध्यान रखा गया है । योजनाकाल में कुछ नये

उद्योग भी स्थापित किये गये हैं जिनमें मशीन एवं औजार, रसायन तथा औषधियाँ, सीमेण्ट, कपड़ा ,भोज्य पदार्थ , उर्वरक , परिवहन के उपकरण , कागज , पुटठा , लकड़ी का सामान , बिजली का सामान , चमड़ा , तार बनाने इत्यादि उद्योग प्रमुख हैं । इन उद्योगों में एक अनुमान के अनुसार लगभग ३.२४ लाख लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया गया है । योजना अवधि में लघु उद्योगों के स्थापन पर विशेष बल दिया गया है जिससे काफी हद तक बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी पर नियंत्रण पाया जा सके। म.प्र. के औद्योगिक विकास के क्षेत्र में राज्य शासन ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है । उन इकाईयों को शासन ने अपने हाथ में लिया है जो घाटे में चलने के कारण बन्द होने के कगार पर हैं। इसके साथ ही शासन ने ऐसे क्षेत्रों में उद्योग स्थापित किये है जहाँ निजी स्तर पर उद्यमी आना नहीं चाहते हैं । म.प्र. राज्य उद्योग निगम की स्थापना की गई । वर्तमान में निगम द्वारा १९ कारखानें संचालित किये जा रहे हैं। साथ ही संयुक्त क्षेत्र में १२ उद्योग संचालित किये जा रहे हैं । जिनमें उल्लेखनीय हैं - भोपाल जजबलपुर व अमानपुर के फर्नीचर के कारखाने, इटारसी का प्लाईबुड का कारखाना ,गुना का साईकिल उद्योग, देवास का इन्सुलेटर बनाने का कारखाना , बिदिशा का कटीले तार तथा कीलों का कारखाना। राज्य एवं निजी संयुक्त प्रयत्नों से भी उद्योगों की स्थापना के प्रयास किये गये है जैसे - भोपाल का म.प्र. विद्युत यंत्र ,म.प्र. एग्रोमोरारजी फर्टीलाइजर्सउद्योग विशेष प्रकार के तार, ट्रान्सफार्मर तथा उर्वरक बनाते हैं । इसमें प्रथम तथ तृतीय में बम्बई तथा दूसरे में बंगलौर की कम्पननियाँ साझेदार हैं। वर्तमान में इस प्रकार के लगभग २० कारखाने स्थपित हो रहे हैं । ये सभी आधुनिक उपकरणों के उद्योग है जैसे - औषधियाँ ,रसायन , विजली के लैम्प, गैस ,प्लाईबुड ,घड़ियाँ तथा मीटर बनाने के उद्योग हैं । इनमें देश के कई भागों की कम्पनियों की साझेदारी है । इस प्रकार औद्योगीकरण के लिये राज्य सरकार राज्य के बाहर के उद्यमियों को भी प्रोत्साहित कर रही है। इससे राज्य में बड़ी संख्या में रोजगार मिलेगा तथा राज्य के चहुमुखी विकास में सहायता मिलेगी ।

निजी क्षेत्र में भी बृहद तथा मध्यम श्रेणी के उद्योगों की स्थापना स्वतंत्रता के पूर्व से होती रही है । निजी क्षेत्र की बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी प्रदेश के आर्थिक विकास में लगी हुई है । लेकिन पहले बड़े नगरों में ही यह प्रवृत्ति मिलती थी । ग्वालियर ,इन्दौर, भोपाल, तथा जबलपुर औद्योगिक केन्द्रों के रुप में विकसित होना प्रारम्भ हुये थे ,क्योंकि इन्हीं केन्द्रों में औद्योगीकरण के लिये आवश्यक सुविधायें जैंसे - परिवहन , विद्युत , जल ,कुशल श्रमिक की सुविधा उपलब्ध थी । ये

नगर स्वयं भी बने हुये सामान के बाजार थे तथा देश के अन्य भागों को माल सुविधाजनक रुप से भेजा जा सकता था । वर्तमान में जिन औद्योगिक केन्द्रों को विकसित किया जा रहा है उनमें प्रमुख हैं - देवास , उज्जैन , नागदा ,मेघनगर , धार , मंडीद्वीप , विदिशा , रायपुर , भिलाई , दुर्ग राजनाँदगाँव । इन औद्योगिक केन्द्रों के पूर्ण विकसित होने पर प्रदेश में एक औद्योगिक क्रान्ति आ सकेगी,ऐसी आशा की जा सकती है । इसके साथ ही बड़ी संख्या में लोग रोजगार प्राप्त कर अपने जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार कर सकेंगे ।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों का संक्षिप्त परिचय-

विषय की व्यापकता एवं गहन विश्लेषण की दृष्टि से ग्वालियर परिक्षेत्र की सभी इकाईयों का विश्लेषण करना न तो व्यावहारिक ही है और और न ही विषय की अनिवार्यता । विषय के पूर्ण एवं गहन विश्लेषण करने की दृष्टि से ही ग्वालियर परिक्षेत्र की जिन इकाईयों को अध्ययन के लिये चुना गया है उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

१- ग्वालियर रेयान - यह बिड़ला ग्रुप की औद्योगिक संख्या है । इसकी निर्माण इकाईयाँ देश के विभिन्न स्थानों पर हैं जैसे -नागदा ,ग्वालियर ,जावद, (म.प्र.), जयपुर (राज.), भवूर (केरला), भिवानी (पंजाब) ,हरलाहार (कर्नाटक) । इसका रिजस्टर्ड कार्यालय विरलाग्राम ,नागदा (म.प्र.) में है । इसके अध्यक्ष आदित्य विक्रम बिड़ला हैं इसमें उत्तम क्वालिटी का कपड़ा तैयार किया जाता है ।

२- जे.के. टायर - यह सिंघानिया ग्रुप की औद्योगिक संस्था हैं। इसकी निर्माण इकाईयाँ जे.के. ग्राम (राजस्थान) ,गजरौला (उत्तरप्रदेश) , बानमोर (म.प्र.) में स्थित है । इसका पंजीकृत कार्यालय कलकत्ता में है। इसके अध्यक्ष एच. एस. सिंघानिया हैं । इस औद्योगिक इकाई द्वारा टायर तैयार किये जाते हैं ।

३- गोदरेज - यह गोदरेज ग्रुप की औद्योगिक संस्था है । इसकी निर्माण इकाईयाँ बम्बई तथा भिण्ड (म.प्र.) में स्थित हैं । इसका पंजीकृत कार्यालय बम्बई में स्थित है । इसके अध्यक्ष एस.पी. गोदरेज हैं। इस औद्योगिक ईकाई द्वारा गंगा साबुन तैयार किया जाता है ।

४- पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) - यह रौनक सिंह ग्रुप की कम्पनी है । इसकी निर्माण इकाईयाँ कोचीन (केरला) ,बड़ौदा (गुजरात) तथा मालनपुर (म.प्र.) में स्थित हैं । इसके अध्यक्ष श्री रौनक सिंह हैं । इसका पंजीकृत कार्यालय कोचीन में है । इस औघोगिक इकाई द्वारा अपोलो टायर बनाये जाते हैं ।

५- कैडबरीज - यह बहुराष्ट्रीय ग्रुप की कम्पनी है । इसकी निर्माण इकाईयॉ थाणे (महाराष्ट्र) तलेगाँव (महाराष्ट्र) , मालनपुर (म.प्र.) में स्थित हैं । इसके अध्यक्ष सी.वाई.पाल हैं । इसका पंजीकृत कार्यालय बम्बई में हैं । इस औद्योगिक इकाई द्वारा खाद्य पदार्थ (फूड प्रॉडक्ट्स) तैयार किये जाते हैं।

६- ग्वालियर दुग्ध संघ - यह सहकारी संस्था है । इसकी निर्माण इकाई बानमोर में स्थित है । इसका मुख्य कार्यालय ग्वालियर में है । इसके अध्यक्ष श्री भगवती प्रसाद शर्मा हैं । इस औद्योगिक संस्था द्वारा दुग्ध उत्पाद तैयार किये जाते हैं।

ग्वालियर रेयान इकाई की वर्तमान स्थिति को निम्नाँकित तालिका के रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

"तालिका"

ग्वालियर रेयान की वर्तमान स्थिति[१.१] (करोड़ रुपयो में)

	१९९१-९२	१९९२-९३	१९९३-९४
-विक्रय	१२२८.१	१४४०.३७	१८६५.१६
मूल्य द्वारा , ब्याज ,कर भुगतान से पूर्व के लाभ	२२७.५६	२२९.८७	३२९.४२
मूल्य द्वारा ब्झयाज ,कर भुगतान के बाद के लाभ	१०६.००	१३७.७१	२२७.८७
अर्जित आय प्रतिअंश रुपये में	१७.५२	२०.४२	३३.७९
पुस्तमूल्य प्रति अंश रुपये में	८०.५५	१२७.९५	१५७.०१

(१.१) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0 - 136

जे.के. टायर इकाईकी वर्तमान स्थिति को निम्नाँकित तालिका के रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

"तालिका"

जे.के. टायर की वर्तमान स्थिति[१.२] (करोड़ रुपयो में)

	१९९१-९२	१९९२-९३	१९९३-९४
विक्रय	३२१.८८	४१२.७०	५१९.९१
मूल्य द्वारा ,ब्याज,कर भुगतान से पूर्व के लाभ	६७.६०	७९.८४	७४.३२
मूल्य द्वारा , ब्याज ,कर भुगतान के बाद लाभ	१३.२३	५.९३	८.३२
अर्जित आय प्रति अंश (रुपये में)	९.४३	४.२२	२.११
पुस्त मूल्य प्रतिअंश (रुपये में)	१७६.६९	२०४.०२	१३१.०२

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की वर्तमान स्थिति -

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों का संक्षिप्त परिचय देने के वाद इकाईयों की वर्तमान स्थिति का अवलोकन किया गया है । जो इस प्रकार है-

१- ग्वालियर रियान -

यह उद्योगिक इकाई अपनी उत्पादन क्षमता का ८६.३ प्रतिशत उत्पादन कर रही है पिछले तीन वर्षो १९९१-९२, १९९२-९३,तथा १९९३-९४ में कम्पनी ने क्रमशः १२२८.१ करोड़ रुपये , १४४० करोड़ रुपये तथा १८६५.१६ करोड़ रुपये का विक्रय किया है । इसी अवधि में कम्पनी ने मूल्यह्रास ब्याज तथा कर भुगतान से पूर्व क्रमशः २२७.५६ करोड़ रुपये , २२९.८७ करोड़ रुपये

(1 . 2) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0- 47।

तथा ३२९.४२ करोड़ रुपये का लाभ अर्जित किया है। मूल्यह्रास तथा ब्याज, कर भुगतान के बाद का शुद्ध लाभ क्रमश: १०६.०० करोड़ रुपये, १३७.७१ करोड़ रुपये तथा २२७.८७ करोड़ रुपये रहा है । इस प्रकार कम्पनी ने ४९२२.८ करोड़ रुपये की अंश पूँजी पर क्रमश:- १७.५२ रुपये ,२०.४२ रुपये ,तथा ३३.७९ रुपये प्रतिअंश आय अर्जित की है । इसी अवधि में कम्पनी के अंशों का पुस्तमूल्य प्रतिअंश क्रमश:- ८०.५५ रुपये,१२७.९५ रुपये तथा १५७.०१ रुपये रहा है ।

इस प्रकार कम्पनी के पिछले तीन वर्षो में विक्रय में ५२.१२ प्रतिशत की बृद्धि हुई है । मूल्य द्वारा , ब्याज तथा कर भुगतान से पूर्व के लाभों में पिछले तीन वर्षो की अवधि में ४४.७६ प्रतिशत की बृद्धि रही है । जो कि विक्रय की तुलना में कम है । मूल्यह्रास,ब्याज तथा कर भुगतान के बाद के शुद्ध लाभ इसी अवधि में ११४.९७ प्रतिशत बढ़े है जो कि विक्रय की तुलना में दुगने से अधिक हैं जिसका कारण कर की राशि कम होना रहा है । कम्पनी ने पिछले तीन वर्षो की अवधि में प्रति अंश आय में ९२.८६ प्रतिशत की बृद्धि की है । इस बृद्धि के साथ ही कम्पनी के अंशों के पुस्त मूल्यों में ९४.९२ प्रतिशत की बृद्धि रही है ।

२- जे. के. टायर-

इस औद्योगिक इकाईकी टायर एवं ट्यूब बनाने की उत्पादन क्षमता क्रमश: १९६१००० तथा ११०५,००० है। ३० जून १९९४ को समाप्त होने वाले वर्ष में इसने १५,६२,००० टायर तथा १०,०९,००० ट्यूब उत्पादित किये जो कि उत्पादन क्षमता का क्रमश: ७९.७ प्रतिशत एवं ९१.३ प्रतिशत है।कम्पनी ने पिछले तीन वर्षो १९९१-९२ , १९९२-९३, तथा १९९३-९४ में क्रमश: ३२१.८८ करोड़ ४१२.७० करोड़ रुपये तथा ५१९.९१ करोड़ रुपये का विक्रय किया है । इसी अवधि के लाभ मूल्य ह्रास ,ब्याज एवं कर देने के पूर्व , क्रमश ६७.६० करोड़ रुपये ,७९.८४ करोड़ रुपये तथा ७४.३२ करोड़ रुपये अर्जित किये हैं। मूल्य ह्रास , बयाज एवं कर भुगतान करने के बाद का शुद्ध लाभ क्रमश- १३.२३ करोड़ रुपये है, ५.९३ करोड़ रुपये , ८.३२ करोड़ रुपये । दूसरे वर्ष के लाभों में जो अचानक कमी आयी है उसका कारण गत वर्षो का समायोजन कराया जा रहा है । इस प्रकार कम्पनी ने ५८३.७ करोड़ रुपये की पूँजी पर क्रमश: ९.४३ रुपये ,४.२२ रुपये तथा २.११ रुपये प्रति अंश आय आधारित की है। इसी अवधि में कम्पनी के अंशों का पूरक मूल्य प्रति अंश क्रमश १७६.६९ रुपये , २०४.०२ रुपये , १३१.०२ रुपये रहा है ।

इस प्रकार कम्पनी के पिछले तीन वर्षों में विक्रय में ६१.५२ प्रतिशत की बृद्धि हुई है । मूल्य ह्रास ,ब्याज तथा कर भुगतान से पूर्व के लाभ पिछले तीन वर्षों की अवधि में ९.९३ प्रतिशत अधिक रहे हैं । जो कि विक्रय में बृद्धि की तुलना में कम है । मूल्य ह्रास , ब्याज तथा कर भुगतान के बाद के शुद्ध लाभ इसी अवधि में ४७.७५ प्रतिशत कम हुये है । इस कमी का कारण पिछले वर्षों के समायोजन रहा है । कम्पनी के पिछले तीन वर्षों की अवधि में प्रतिअंश आय में २२.३७ प्रतिशत की कमी आयी है । उसके साथ ही कम्पनी के अंशों के पूरक मूल्यों में लगभग २५.८५ प्रतिशत की कमी आयी है ।

गोदरेज इकाई की वर्तमान स्थिति की निम्नाँकित तालिका के रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

"तालिका,

गोदरेज की वर्तमान स्थिति [१.३] (करोड़ रुपयों में)

	१९९१-९२	१९९२-९३	१९९३-९४
विक्रय	४७६.५२	३७४.१२	३७१.५२
मूल्यह्रास ,ब्याज , कर भुगतान से पूर्व के लाभ	३४.६२	२.५८	३९.०६
मूल्य ह्रास , ब्याज ,कर भुगतान के बाद के लाभ	१०.१८	२९.९२	२५.३
अर्जित आय प्रति अंश रुपये में	२३५.७५ (१००रु.के अंश पर)	११.५४	७.६४
पुस्तमूल्य प्रतिअंश रुपये में	१२२२.११ (१००रु. के अंश का मूल्य)	३१.४१	५७.९८

पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) इकाई की वर्तमान स्थिति को निम्नांकित तालिका रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

---

(1.3) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0- ।12

"तालिका"

पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) की वर्तमान स्थिति[१.४] (करोड़ रुपयो में)

	१९९१-९२	१९९२-९३	१९९३-९४
विक्रय	२७७.९७	३९४.९५	५३२.६२
मूल्यह्रास ,ब्याज,कर भुगतान से पूर्व के लाभ	५७.४५	६०.५४	६७.२४
मूल्य ह्रास,ब्याज कर भुगतान के बाद के लाभ	३३.०१	२०.८०	१५.६३
अर्जित आय प्रति अंश (रुपये में)	११.८५	७.४७	६.६१
पुस्तमूल्य प्रति अंश (रुपये में)	४८.५५	५२.५५	५४.०१

(३) गोदरेज-

यह संस्था साबुन,डिटर्जेन्ट,कॉस्मेटिक (सौन्दर्य प्रसाधन),फैटी ऐसिड तथा ग्लैसरिन का उत्पादन करती है जिसकी कुल क्षमता क्रमशः ५६३८१ मी. टन, २०,००० मी.टन, १२०० मी. टन,५४५०० मी. टन, तथा ५२५० मी. टन है । जबकि कम्पनी ने ३१ मार्च १९९४ में समाप्त होने वाले वर्ष में क्रमशः ३३२६८ मी. टन,२४२१२ मी.टन,२ मी. टन,१७१२६ मी. टन तथा २६३१ मी.टन उत्पादन किया है अर्थात अपनी उत्पादन क्षमता का क्रमशः ५९%, १२१.१%, ०.२%, ३१.४/ तथा ५०,१% उपयोग किया गया है । पिछले तीन वर्षों में कम्पनी कीकुल बिक्री क्रमशः ४७६.५२ करोड़ रु.,३७४.१२ करोड़ रु. ३७१.५२ करोड़ रु. रही है मूल्यह्रास ,ब्याज तथा कर देने के पूर्व के लाभ क्रमश- ३४.६२ करोड़ ,२.५८ करोड़ रु. तथा ३.०६ करोड़ रु. रहा है । द्वितीय वष के लाभांश में कमी का कारण आकस्मिक खर्चों में बृद्धि रहा है । मूल्यह्रास ,ब्याज तथा कर देने के बाद के लाभ क्रमशः- १०.१८ करोड़ रु., २९.९२ करोड़ रुपये तथा २५.३ करोड़ रुपये रहा है । द्वितीय वर्ष के लाभों में बृद्धि का कारण असाधारण मद से ६०.० करोड़ का आना रहा है । कम्पनी

(1.4) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0 - 467

ने ६७८.९ करोड़ रुपये की पूँजी पर प्रति अंश आय २३५.७५ रु., ११.५४ रु. तथा ७.६४ रु.अर्जित की है । प्रथम वर्ष में प्रत्येक अंश १०० रु. का था तथा द्वितीय वर्ष में कम्पनी ने प्रत्येक एक अंश पर ५ अंश बोनस के निर्गमित किये एवं प्रत्येक अंश मूल्य १० रु. कर दिया , तथा तृतीय वर्ष में १४ करोड़ रुपये का सार्वजनिक निर्गम जारी किया जिससे प्रति अंश आय में कमी आई है । कम्पनी के अंशों का पुस्तमूल्य क्रमश: १२२२.११ रु. ३१.४१ रु. तथा ५७.९८ रु. रहा है । इस कमी का कारण अंश पूँजी में बृद्धि होना है । इस प्रकार कम्पनी के विक्रय एवं लाभों में पिछले तीन वर्षों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है ।

४- पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) -

यह संस्था टायर एवं ट्यूब का उत्पादन करती है, इसकी उत्पादन क्षमता क्रमश: १३४४५०० तथा ५०४००० है । जबकि कम्पनी ने वर्ष १९९३-९४ में १६,३४,६२६, टायर तथा १२,५५,८५३ ट्यूब का उत्पादन किया है । जो कि उत्पादन क्षमता का क्रमश: १२१.६ प्रतिशत एवं २४९.१ प्रतिशत है । संस्था ने पिछले तीन वर्षो में क्रमश: २७७.९७ करोड़ रु.,३९४.९५ करोड़ रु.,तथा ५३२.६२ करोड़ रु.की बिक्री की है । मूल्यह्रास ,कर तथा ब्याज देने के पूर्व के लाभ क्रमश: ५७.४५ करोड़ रु., ६०.५४ करोड़ रु. तथा ६७.२४ करोड़ रु. हुये हैं। कार्यक्षमता में बृद्धि के कारण लाभों में बृद्धि रही है । मूल्यह्रास ,कर तथा ब्याज देने के बाद क्रमश: ३३.०१ करोड़ रु. २०.८० करोड़ रु. तथा १५.६३ करोड़ रुपये का लाभ हुआ है । यह लाभ में कमी ब्याज की राशि अधिक भुगतान करने के कारण हुई है । कम्पनी ने ५४६.९ करोड़ रुपये की पूँजी पर प्रति अंश आय क्रमश:११.८५ रु. ,७.४७ रु. ,तथा ६.६१ रु. अर्जित की है । प्रति अंश आय की कमी शुद्ध लाभ में कमी के कारण हुई है । कम्पनी के अंशों का पुस्तक मूल्य क्रमश: ४८.५५ रु. ,५२.५५ रु. तथा ५४.०१ रु. रहा है ।

इस प्रकार कम्पनी के पिछले तीन वर्षो के बिक्रय में ९१.६१ प्रतिशत की वृद्धि रही है मूल्यह्रास ,कर तथा ब्याज का भुगतान करने के पूर्व के लाभ ,पिछले तीन वर्षों में १६.८५ प्रतिशत वढ़े है। मूल्य द्वारा कर तथा ब्याज भुगतान के बाद के लाभों में लगभग ५० प्रतिशत की कमी हुई है, इस कमी का मुख्य कारण ब्याज का अधिक भुगतान करना है । शुद्ध लाभ में कमी के कारण कम्पनी के प्रति अंश आय में भी उसी अनुपात में कमी आई है । कम्पनी की शुद्ध सम्पत्तियों में बृद्धि के कारण अंशों के पुस्त मूल्य में लगभग ११ प्रतिशत की बृद्धि हुई है ।

कैडबरीज इकाई की वर्तमान स्थिति को निम्नाँकित तालिका के रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है ।

"तालिका,

कैडबरीज की वर्तमान स्थिति [१५] (करोड़ रुपयो में)

ठ	१९९१-९२	१९९२-९३	१९९३-९४
विक्रय	१४१.३४	१५६.२२	१६९.०५
मूल्य द्वारा, ब्याज,कर			
भुगतान से पूर्व के लाभ	१४.०१	७.९४	८.०५
मूल्य ह्रास,ब्याज, कर			
भुगतान के बाद के लाभ	३.७१	१.३७	८.६७
अर्जित आय प्रति अंश रुपये में	४.४१	१.१०	७.००
पुस्त मूल्य प्रति अंश रुपये में	३१.९३	५३.३४	५६.९०

५- कैडबरीज-

यह संस्था विभिन्न खाद्य पदार्थो का उत्पादन करती है । यह अपनी उत्पादन क्षमता के लगभग ५५ प्रतिशत क्षमता का ही प्रयोग कर ,उत्पादन कर रही है । पिछले तीन वर्षो में इसकी कुल बिक्री क्रमश-१४१.३४करोड़ रुपये , १५६.२२ करोड़ रुपये तथा १६९.०५ करोड़ रुपये हुई है । मूल्यह्रास ,ब्याज तथा कर भुगतान के पूर्व के इसी अवधि के लाभ क्रमश: १४.०१ करोड़ रुपये ,७.९४ करोड़ रुपये तथा ८.०५ करोड़ रुपये हुये हैं । लाभ में कमी संचालन व्ययों में बृद्धि के कारण हुई है । इसी अवधि के मूल्यह्रास ,ब्याजतथा कर भुगतान करने के बाद के लाभ क्रमश: ३.७१ करोड़ रुपये ,१.३७ करोड़ रुपये , तथा ८.६७ करोड़ रुपये हुआ है । द्वितीय वर्ष के लाभ में कमी पिछले वर्ष के समायोजनों के कारण हुई है । संस्था ने ४८३.६ करोड़ रुपये की पूँजी पर प्रति अंश आय क्रमश: ४.४१ रु. ,१.१० रु. तथा ७ रु. अर्जित की है । द्वितीय वर्ष की प्रति अंश आय में

(1.5) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0 - 226

कमी शुद्ध लाभ में कमी के कारण है । संस्था के अंशों का पुस्तकीय मूल्य क्रमशः ३१.९३ रु.,५३.३४ रु. तथा ५६.९० रु. रहा है ।

इस प्रकार कम्पनी ने पिछले तीन वर्षो की अवधि में , विक्रय में १९.६ प्रतिशत की बृद्धि की है । संस्था के शुद्ध लाभों (मूल्यह्रास ,ब्याज एवं कर देने के बाद) में १३३.७ प्रतिशत की बृद्धि हुई है । कम्पनी के अंशों की प्रति अंश आय भी इसी अनुपात में बढ़ी है । संस्था की शुद्ध सम्पत्तियों में बृद्धि के कारण इसके अंशों के पुस्तकीय मूल्यों में ७८.२ प्रतिशत की बृद्धि हुई है ।

६- ग्वालियर दुग्ध संघ-

यह संस्था विभिन्न दुग्ध उत्पादों का उत्पादन करती है जैसे - दूध पनीर,दही, मक्खन,घी इत्यादि । इसका मुख्य उत्पाद दूध है । यह अपनी कार्यक्षमता के लगभग ७५% पर अपना उत्पादन कर रही है । पिछले तीन वर्षो १९९१-९२,१९९२-९३,तथा १९९३-९४ के वर्षो में इसका कुल विक्रय क्रमशः ८.५९ करोड़ रु., ११.२२ करोड़ रु. तथा १७.६३ करोड़ रुपये,हुआ है । मूल्य ह्रास एवं ब्याज भुगतान करने के बाद क्रमशः शुद्ध हानि १.९१ करोड़ रुपये ,१.९३ करोड़ रुपये तथा ३.०१ करोड़ रुपये हुई है । संस्था को व्यापार में हानि के साथ साथ दीर्घकालीन ऋणों पर ब्याज तथा स्थायी सम्पत्तियों पर ह्रास मदो पर बहुत अधिक राशि व्यय करनी पड़ी है जिससे संस्था की शुद्ध हानि प्रतिवर्ष बढ़ती गई है । संस्था के द्वारा ४६८४९०० रु. की अंश पूँजी निर्गमित की गई है । ग्वालियर दुग्ध संघ की स्थापना वर्ष १९८०-८१ में की गई थी, प्रारम्भिक वर्ष से ही संस्था हानि में चल रही है और इसकी हानि प्रतिवर्ष बढ़ती ही जा रही है, प्रथम वर्ष इसे ४.४० लाख रुपये की हानि हुई जबकि वर्ष १९९३-९४ में यह बढकर ३.०१ करोड़ रुपये हो गई है । इस प्रकार इसमें पिछले १३ वर्षो में ६८ गुना बृद्धि हुई है । खातों के निरीक्षण से मालूम हुआ है कि यह हानि ऋण पर ब्याज तथा मूल्यह्रास के कारण बढ़ती जा रही है ।

द्वितीय अध्याय

शोध प्रविधि-

१- शोध प्रक्रिया

२- न्यादर्श का चयन

३- समंक प्राप्ति के स्त्रोतों का विश्लेषण

४- समंक संतुलन में प्रयुक्त रीतियाँ

५- समस्या निरुपण , सम्बन्धित विशेष सामग्री का अवलोकन उद्देश्य एवं क्षेत्र, विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण

६- शोध परिकल्पनायें एवं उनका परीक्षण

शोध - प्रक्रिया

मनुष्य एक सामाजिक एवं बुद्धिजीवी प्राणी होने के साथ-साथ संस्कृति व सभ्यता का निर्माता और पालनकर्ता भी है । मनुष्य के पास ज्ञान का अपार भण्डार भी है और विज्ञान का सहारा भी । इसी लिये वह संसार के रहस्यों को जानने के लिये हमेशा उत्सुक रहता है । वह अपने जीवन तथा समाज के विभिन्न क्षेत्रों में घटित होने वाली अनेक घटनाओं को न केवल देखता है बल्कि उनके घटित होने के कारणों को भी जानने का प्रयास करता है । मनुष्य यह जानना चाहता है कि ऐसा क्यों होता है । इस तरह वह प्रत्येक समस्या के समाधान के लिये प्रयास करता है । किसी समस्या के समाधान के लिये यह आवश्यक है कि उसके विषय में गहन अध्ययन किया जाये । आधुनिक युग में प्राय: सभी क्षेत्रों में विभिन्नन प्रकार की समस्याओं के संख्यात्मक अध्ययन तथा विश्लेषण के लिये शौघ कार्यो पर विशेष बल दिया जाता है, जिसे हम साँख्यिकीय अनुसंधान के नाम से जानते है । इन्हीं अनुसंधानों के द्वारा आवश्यक समंकों की उपलब्धता के आधार पर व्यावसायिक ,सामाजिक तथा आर्थिक विषयों पर महत्वपूर्ण तथा विवेकपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं । शोध प्रक्रिया काफी कुछ सीमा तक समस्या के स्वरुप पर निर्भर करती है । साधारणतया हम शोध कार्य के द्वारा ही समस्या की गहराई तक पहुँचने का प्रयास करते है किसी क्षेत्र विशेष में संख्यात्मकविश्लेषण द्वारा समस्या का उचित निर्वचन करने के उद्देश्य से आवश्यक समंकों के वैज्ञानिक संकलन की क्रिया को शोध प्रक्रिया कहा जाता है । दूसरे शब्दों मे हम यह कह सकते हैं कि शोध प्रक्रिया केवल उन समस्याओं से ही सम्बन्धित होती है जिनका संख्यात्मक विवेचन किया जा सके । प्रस्तुत शोध प्रक्रिया "मध्य प्रदेश की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन - व्यवहार एवं मूल्याँकन " से सम्बन्धित है । शोध प्रक्रिया एक व्यापक क्रिया है, इसके अन्तर्गत आयोजन से ले कर अन्तिम रिपोर्ट तैयार करने तक अनेक चरणों से गुजरना पड़ता है, जैसे सबसे पहले शोघ कार्य के उद्देश्य , क्षेत्र ,प्रकृति,सूचना प्राप्ति के स्रोत,इकाईयों का निर्धारण एवं वास्तविकता के स्तर को ध्यान में रखते हुये कार्य की एक स्पष्ट योजना बना ली जाती है, इसके पश्चातु सम्बन्धित समंकों को उचित विधि द्वारा एकत्रित किया जाता है । यदि सूचना प्राप्ति के कई स्रोत होते है तो प्रश्नों की एक सूची तैयार करली जाती है । यदि किसी कारण से समंकों के संकलन में कुछ अशुद्धियाँ हो तो इन्हें संशोधित कर लिया जाता है । इसके बाद समंकों को विभिन्न वर्गों में विभजित किया जाता है तथा उनका उचित विश्लेषण करने के लिये उन्हें सारणियों में प्रस्तुत किया जाता है । समंकों की विभिन्न सारणियों में

प्रस्तुत करने के बाद विभिन्न गणितीय मापों द्वारा उनका विश्लेषण किया जाता है । इस विश्लेषण के आधार पर रचित निष्कर्ष निकाले जाते हैं और अन्तिम प्रतिवेदन तैयार किया जाता है । शोध प्रक्रिया की सफलता बहुत कुछ सीमा तक इस बात पर निर्भर करती है कि शोधार्थी समस्या के प्रति कितना गम्भीर एवं जागरुक है और उसके प्रति कितनी रुचि लेता है । जब कोई शोधकार्य प्रारम्भ किया जाता है तो उसके कुछ निश्चित उद्देश्य होते है और इन उद्देश्यों को तब ही प्राप्त किया जा सकता है जबकि शोध कार्य योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित ढंग से शुरु किया जाये । इसके लिये यह आवश्यक होता हैकि शोध कार्य शुरु करने से पहले इसकी एक नियोजित रुपरेखा तैयार कर ली जाये । इस नियोजित तथा योजनाबद्ध तरीके से तैयार की गई रुपरेखा को ही शोध प्रक्रिया कहते हैं । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "शोध के उद्देश्य के आधार पर अध्ययन के विषय से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को प्रकाश में लाने हेतु पूर्व में ही बनायी गई योजना की व्यवस्थित रुपरेखा शोध प्रक्रिया कहलाती है ।

इस प्रकार हम यह कह सकते है कि शोध प्रक्रिया के अन्नतर्गत तथ्यों के संकलन, सम्पादन, वर्गीकरण तथा सारणीयन, विश्लेषण एवं निर्वचन आदि को सम्मलित किया जाता है ।

शोध प्रबन्ध का सम्पूर्ण कार्य उसकी शोध प्रक्रिया पर निर्भर करता है । यह निश्चित करना कि शोध कार्य हेतु किन पद्धतियों एवं प्रविधियों को अपनाया जाये,यह शोध की प्रकृति,क्षेत्र,धन की उपलब्धता,समय एवं शोधनार्थी की योग्यता पर निर्भर करता है । प्रायः शोध कार्य के लिये अध्ययन की ऐसी पद्धतियों को अपनाया जाता है जिससे कम से कम समय में कम प्रयासों द्वारा मितव्ययिता पूर्वक पर्याप्त एवं विश्वसनीय सूचनाये प्राप्त हो सकें । शोध के लिये प्राप्त की जाने वाली सूचनाओं की शुद्धता ,निष्पक्षता और विश्वसनीयता को भी अध्ययन पद्धति के चुनाव के समय ध्यान में रखना आवश्यक होता है क्योंकि विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं पर ही शोध कार्य की व्यावहारिकता एवं विश्वसनीयता निर्भर करती है। इन्हीं उद्दश्यों को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में निम्नलिखित पद्धति को अपनाया गया है-

(१) संग्रहण कार्य-

यह शोध प्रक्रिया का प्रथम चरण है। इसके अन्तर्गत तथ्यों का संग्रहण, साक्षात्कार, व्यक्तिगत निरीक्षण, अनुसूची एवं प्रश्नावली इत्यादि पद्धतियों के माध्यम से किया जाता है। सही

एवं वास्तविक सूचनायें प्राप्त करने के लिये न केवल व्यक्तिगत सम्पर्क की आवश्यकता होती है,बल्कि सूचना दाताओं से मेल-जोल भी बढ़ाना होता है जिससे वे बिना किसी हिचक के सही व निष्पक्ष सूचनायें देने के लिये तैयार हो जायें और वे किसी तथ्य को छिपाये बिना समय - समय पर आवश्यक सूचनायें उपलब्ध कराते रहें। सूचनादाताओं द्वारा प्रदत्त सूचनाये शुद्ध एवं निष्पक्ष हैं यह जानने के लिये समय -समय पर इनकी विश्वसननीयता की जाँच करना आवश्यक है। सूचनादाताओं से तथ्य एकत्रित करनेके अलावा सम्बन्धित सरकारी ,अर्द्ध सरकारी , गैर सरकारी तथा संस्थागत प्रकाशित एवं अप्रकाशित अभिलेखों ,फाइलों तथा पुस्तकों से भी समंक एकत्रित करना आवश्यक है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय निश्चित करने के बाद शोधनार्थी ने ग्वालियर क्षेत्र की प्रमुख इकाईयों के कार्यालय एवं अन्य संस्थाओं के कार्यालयों में उपस्थित होकर उनके अधिकारियों एवं कर्मचारियों से सम्पर्क स्थापित किया तथा उन्हें अपने शोध प्रबन्ध के उद्देश्य से अवगत कराया जिससे वे अध्ययन से सम्बन्धित जानकारी देने के लिये तैयार हुये । इसके अलावा अपने अध्ययन को पूर्ण करने के उद्देश्य से विभिन्न औद्योगिक संस्थाओं की पत्रिकाओं,वार्षिक एवं मासिक प्रतिवेदनों तथा अन्य अप्रकाशित अभिलेखों से भी तथ्यों को संकलित किया है ।

(२) सम्पादन कार्य-

जिन तथ्यों का संग्रहण किया जाता है, उनमें कुछ तथ्य अशुद्ध हो सकते हैं तथा कुछ अनुपयोगी भी हो सकते हैं। विश्लेषण करके अशुद्धियों एवं त्रुटियों को दूर किया जाता है और अनुपयोगी तथ्यों को अलग कर दिया जाता है। संग्रहीत तथ्यों को विश्लेषण योग्य बनाने,उनकी कमियों को सुधारने ,अनुपयोगी तथ्यों को अलग करने तथा उन्हें क्रमबद्ध करने की क्रिया को ही सम्पादन कहते हैं ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधार्थी द्वारा संग्रहीत किये गये तथ्यों का निरीक्षणा किया गया है,अध्ययन में प्रयुक्त समंकों एवं सूचनाओं का गहन परीक्षण किया गया है , त्रुटिपूर्ण ,अस्पष्ट , तथा अपूर्ण समंकों को विभिन्न प्रतिवेदनों , पत्र-पत्रिकाओं एवं व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम से पूर्ण तथा स्पष्ट बनाने का पूरा प्रयास किया गया है तथा संग्रहीत समंकों को विश्लेषण योग्य बनाने के लिये उन्हें व्यवस्थित क्रम में रखा गया है जिससे उनके विश्लेषण से शुद्ध परिणाम ज्ञात हो सकें ।

(३) सामग्री का वर्गीकरण-

संग्रहीत सामग्री में से उपयोगी सूचनाओं को पृथक करने के बाद ही उन्हें संक्षिप्त रुप में प्रस्तुत करने हेतु उनका वर्गीकरण किया जाता है जिससे संग्रहीत की गयी अव्यवस्थित सामग्री कोसमानताओं और विभिन्नताओं के आधार पर कुछ निश्चित वर्गों में प्रस्तुत किया जा सके। निश्चित वर्गों में विभाजित कर लेने से समंकों का रुप सरल एवं छोटा हो जाता है और उन्हें समझना तथा आगामी चरणों में प्रयोग कर पाना आसान हो जाता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्ययन हेतु शोधार्थी ने जिन समंको को संकलित किया है, उन्हें उनकी प्रकृति के आधार पर विभिन्न तालिकाओं में अपने शोध प्रबन्ध में यथा स्थान प्रस्तुत किया है।

(४) सामग्री का सारिणीयन-

संकलित समंकों का वर्गीकरण करने के पश्चात उसे अधिक स्पष्ट तुलनीय एवं बोधगम्य बनाने के लिये सारणीयन करना आवश्यक होता है। सारणीयन संख्यात्मक समंकों को संक्षिप्त तथा क्रमबद्ध रुप में प्रस्तुत करनेकी क्रिया है,जिससे उनका विश्लेषण एवं निर्वचन सरलतापूर्वक हो सके। इस सम्बन्ध में "कौनर" के विचार महत्वपूर्ण हैं कि, "सारणीयन किसी विचाराधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया जाने वाला संख्यात्मक तथ्यों का क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण है।"[१]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधार्थी ने महत्वपूर्ण तथ्यों को , सम्बन्धित अध्यायों में, सारणियों के रुप में प्रस्तुत कर इस अध्ययन का संक्षिप्त एवं पूर्ण बनाने का यथासम्भव प्रयास किया है। समंकों को आकर्षक एवं स्मरणीय बनाने के उद्देश्य से विभिन्न सारणियों को, आवश्यकतानुसार , चित्रों एवं बिन्दुरेखा द्वारा भी प्रदर्शित किया गया है। शोध अध्ययन का विषय संख्यात्मक होने के कारण सारणियों की संख्या अधिक होना स्वाभाविक ही है इसीलिये अध्ययन को पूर्ण बनाने की दृष्टि से सम्बन्धित अध्यायों के समंकों को सारणियों के रुप में प्रस्तुत किया गया है।

(५) विश्लेषण, निर्वचन तथा निष्कर्ष -

समस्त सामग्री को सारणीय करने के पश्चात ही उसका विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण करना सम्भव हो पाता है। जब तक शोध सामग्री का विश्लेषण नहीं किया जाता, उसमें निहित विभिन्न तथ्यों की प्रवृत्तियों एवं कारणों का ज्ञान हो पाना सम्भव नहीं होता है। अध्ययन के समय कुछ सूचनायें आवश्यक एवं सम्बनधित होते हुये भी बहुअर्थक हो सकती हैं, इसीलिये उनका निर्वचन या स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक होता है। विश्लेषण एवं निर्वचन तभी सार्थक सिद्ध होगा जबकि इनके आधार पर सामान्य एवं व्यावहारिक निष्कर्ष निकाले जायें क्योंकि बिना निष्कर्ष निकाले अध्ययन को पूर्ण नहीं माना जाता है। इन निष्कर्षों के आधार पर ही नवीन तथ्यों तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है और इसके साथ ही अध्ययन के व्यावहारिक उद्देश्य की पूर्ति भी होती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधार्थी ने प्रस्तुत की गई सारणियों का विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण में प्रतिशतों तथा अनुपातों की भी गणना की गई है। अध्ययन के दौरान शोधार्थी को जहाँ - जहाँ बहुअर्थक सूचनायें मिली हैं, उनका निर्वचन किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में अध्यायसे सम्बन्धित समस्त सूचनाओं, समंकों एवं सारणियों के निष्कर्ष भी निकाले गये हैं और अन्तिम अध्याय में विभिन्न समस्याओं एवं उनके निदानके लिये उपायों तथा ज्ञात किये गये निष्कर्षों का भी विवेचन किया गया है।

न्यादर्श का चयन-

किसी भी अनुसंधान के अन्तर्गत समग्र के विषय में जानकारी दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है। (प्रथम) - संगणना विधि अर्थात समस्त इकाईयों के अध्ययन द्वारा तथा (द्वितीय) - निदर्शन विधि अर्थात नमूने के रुप में कुछ इकाईयों के अध्ययन द्वारा। जब अनुसधान से सम्बन्धित समूह की प्रत्येक इकाई के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित की जाती है तो इसे संगणना अनुसंधान कहा जाता है। लेकिन जब समग्र की समस्त इकाईयों की जॉच न करके किसी विशेष आधारपर कुछ प्रतिनिधि इकाईयों को चुना जाता है और उनका गहन अध्ययन करके समग्र की समस्त इकाईयों पर लागू किया जाता है तो उसे निदर्शन अनुसंधान कहा जाता है।

आधुनिक युग में मितव्ययिता लाने तथा गहन विश्लेषण के दृष्टिकोण से न्यादर्श अनुसंधान प्रणाली का ही अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है। संगठन अनुसंधान न तो प्रत्येक परिस्थिति में आवश्यक ही होता है और न सम्भव ही। न्यादर्श अनुसंधान के द्वारा प्राप्त होने वाले परिणाम वास्तविकता के निकट ही होते हैं। इसके अलावा यह विधि अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक भी है। इसीलिये इस पद्धति का प्रयोग अनुसंधान के क्षेत्र में दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है। इस पद्धति में समग्र की सभी इकाईयों का अध्ययन न करके समस्त में से कुछ ऐसे पदों को बुद्धिमतापूर्वक तथा सावधानी से नमूने के रुप में चुन लिया जाता है जो समग्र का प्रतिनिधित्व करते हैं और इन प्रतिनिधि इकाईयों का ही अध्ययन किया जाता है तथा इन्हीं से सम्बन्धित सूचनायं एकत्रित की जाती हैं। और इनक आधर पर जो निष्कर्ष प्राप्त किये जाते हैं। उन्हें समग्र कर लागू किया जाता है। इस अनुसंधान पद्धति के बारे में कुछ विद्धानों के मत इस प्रकार हैं- **गुण्डे तथा हाट्ट के अनुसार-** "एक न्यादर्श,जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है,किसी विशाल समूह का छोटा प्रतिनिधि है।"

स्नेडेकार के अनुसार- " केवल कुछ पौण्ड कोयले की जाँच के आधार पर एक गाड़ी कोयला स्वीकार अथवा रदुद कर दिया जाता है , केवल एक बूँद रक्त की जाँच करके एक रोगी के रक्त के विषय में चिकित्सक निष्कर्ष निकालता है,न्यादर्श ऐसी युक्तियाँ हैं जिनके द्वारा केवल कुछ इकाईयों का निरीक्षण करके बृहद के मात्राओं के बारे में जाना जाता है।" [१]

श्रीमती यंग के अनुसार - "निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक लघु चित्र है,जिसमें से निदर्शन लिया गया है।"

वर्तमान युग में न्यादर्श प्रणाली का ही अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है। विशेष रुप से ऐसी स्थिति में जबकि अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत हो और प्राप्त समंक असीमित हों तो न्यादर्श पद्धति को ही उपयोग में लाना हितकर होता है। इस प्रकार न्यादर्श प्रणाली वर्तमान युग में साँख्यिकीय अनुसंधान की बहुत ही महत्वपूर्ण तथा लोकप्रिय पद्धति सिद्ध हुई है। शोधार्थी ने भी इसी पद्धति का चयन किया है।

---

(1) सांख्यकीय के सिद्धान्त - डा0 शुक्ल एवं सहाय- पृ0क्र0 77

समंक प्राप्ति के स्रोतों का विश्लेषण

शोध प्रबन्ध सम्बन्धी व्यापक योजना तैयार कर लेने के बाद उचित रीति द्वारा समंकों को एकत्रित करने का कार्य प्रारम्भ किया जाता है। समंक संकलन से आशय समस्त तथ्यों एवं सूचनाओं को एकत्रित करने से है जो विभिन्न विधियों के अन्तर्गत प्राथमिक अथवा द्वैतीयक स्रोतों से प्राप्त किये जाते हैं। समंकों का संकलन अनुसंधान की प्रकृति ,क्षेत्र , उद्देश्य तथा उपलब्ध धन और समय पर निर्भर करता है। किसी भी शोध कार्य में समंकों के संकलन का बहुत अधिक महत्व होता है क्योंकि प्रत्येक शोध प्रबन्ध की सफलता समंकों के संकलन पर ही निर्भर करती है। इसीलिये इस कार्य को सतर्कता एवं सावधानी पूर्वक करना होता है। समंक दो प्रकार के होते हैं-(अ) प्राथमिक समंक (ब)द्वितीयक समंक।

(अ) प्राथमिक समंक-

प्राथमिक समंकों से आशय उन समंकों से होता है जो अनुसंधानकर्ता द्वारा पहली बार निश्चित योजना के अनुसार आरम्भ से अन्त तक एकत्रित किये जाते हैं। प्राथमिक समंकों को परिभाषित करते हुये " श्रीमती यंग ,ने लिखा है कि," प्राथमिक समंक प्रथम स्तर पर एकत्रित किये जाते हैं तथा इसके संकलन एवं प्रकाशन का उत्तरदायित्व इसके प्रारम्भिक अधिकारी के ही अधीन होता है।"

प्राथमिक समंकों के बारे में " ग्रेग्ररी ,ने कहा है कि ," प्राथमिक समंक वे समंक हैं जिनहें प्रथम बार एक विशेष साख्यिकीय अनुसंधान के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये संग्रहीत किया जाता है।"

प्राथमिक समंकों को शोधकर्ता शोधकार्य हेतु वास्तविक अध्ययन स्थल में जाकर विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों से अनुसूची ,प्रश्नावली या साक्षात्कार की सहायता से एकत्रित करता है। अथवा निरीक्षण के द्वारा प्राप्त करता है। इनका संकलन किसी विशेष शोधकार्य के लिये ही किया जाता है। इसीलिये ये समंक उसी शोधकार्य के लिये ही विशेष उपयोगी होते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिये एक सीमा तक प्राथमिक समंकों का भी संकलन करना होगा जिससे मध्यप्रदेश की आद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन ,व्यवहार एवं मूल्याँकन से

सम्बन्धित शुद्ध एवं विश्वसनीय समंक प्राप्त हो सकें। मौलिक, शुद्ध एवं विश्वसनीय समंकों के आधार पर ही म.प्र. की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन व्यवहार एवं मूल्याँकन से सम्बन्धित समस्याओं एवं भावी सम्भावनाओं से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(ब) द्वितीयक समंक-

द्वितीयक समंक से आशय उन समंकों से होता है जो पहले ही अन्य व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा एकत्रित तथा प्रकाशित किये जा चुके हों और शोधकर्ता अपने शोधकार्य के लिये केवल उनका प्रयोग करता है। वास्तव में शोधकर्ता द्वारा इन समंकों का संकलन नहीं किया जाता है बल्कि उसके द्वारा इनका उपयोग किया जाता है इन समंकों का संकलन व्यापारिक संस्थाओं, सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं अन्य संस्थाओं द्वारा किया जाता हो। द्वितीय समंकों "को परिभाषित करते हुये, " **राबर्टसन एवं राइट** " ने लिखा है कि," वे समंक जिनका किसी अन्य उद्देश्य हेतु पहले ही लेखन कर लिया गया हो, परन्तु उनको अब किसी अनुसंधान कार्यक्रम में प्रयोग किया जा रहा है, द्वितीयक समंक होते हैं। "

किसी शोध कार्य में द्वितीयक समंकों के प्रयोग से मौलिक संकलन की समस्या उत्पन्न नहीं होती है। इन समंकों को प्रकाशित एवं अप्रकाशित स्रोतों से एकत्रित किया जाता है। द्वितीयक समंकों को विश्लेषण योग्य बनाने के लिये उनका उचित रीति से सम्पादन करना अनिवार्य होता है। सम्पादन के द्वारा ही इनमें पाई जाने वाली अनियमितताओं तथा अशुद्धियों को दूर किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिये अधिकाँश द्वितीयक समंकों का ही संकलन करना होगा, क्योंकि म.प्र. की औघोगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन व्यवहार एवं मूल्याँकन से सम्बन्धित समंक औघोगिक इकाईयों द्वारा ही प्रकाशित किये जाते हैं। और उन्ही समंकों का अधिकाँश प्रयोग प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में किया गया है।

समंक संकलन में प्रयुक्त रीतियाँ -

प्रत्येक शोध कार्य के लिये समंकों का संकलन अति आवश्यक होता है इसीलिये इसे शोधकार्य की मूलभूत क्रिया कहते हैं। किसी शोधकार्य के लिये जिन सूचनाओं एवं समंकों की

आवश्यकता होती है, उन्हें जिस रीति से संकलित किया जाता है वे रीतियाँ ही समंक संकलन की रीतियाँ होती हैं। चूँकि समंक दो प्रकार के होते हैं-(अ) प्राथमिक समंक ,(ब) द्वितीय समंक, अत: समंक संकलन की रीतियों को भी दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है-

(अ) प्राथमिक समंक संकलन की रीतियाँ-

जैसा कि पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि शोधार्थी द्वारा जिन समंकों को स्वयं संकलित किया जाता है वे प्राथमिक समंक कहलाते हैं। इन समंकों को संकलित करने की रीतियाँ प्राथमिक समंक संकलन की रीतियाँ कहलाती हैं।इन समंकों को एकत्रित करने के लिये शोधार्थी को या तो स्वयं सूचनादाताओं से सम्पर्क करना होता है या उसे उस क्षेत्र के अनुभवी व्यक्तियों से सम्पर्क करना होता है सूचनायें या समंक संकलित करने होते हैं। इस प्रकार के समंकों को संकलित करने की रीतियाँ निम्नानुसार हैं-

क- प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अवलोकन।

ख- मौखिक छानबीन।

ग- सम्वाददाताओं से सूचना प्राप्ति।

घ- सूचनादाताओं द्वारा अनुसूचियाँ भरवाकर सूचना प्राप्ति।

ङ- प्रगणकों द्वारा अनुसूचियाँ भरना।

(क) प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अवलोकन -

इस रीति के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता स्वयं ही घटना-स्थल पर उपस्थित रहता है तथा उन व्यक्तियों से सम्पर्क करता है जिनसे सूचना प्राप्त करनी होती है। वह स्वयं भी घटनाओं एवं कार्यक्रमों में किसी सीमा तक भाग ले सकता है। इसीलिये इस पद्धति में संकलित समंक अधिक विश्वसनीय होते हैं और इसमें पक्षपात की भी सम्भावना नहीं रहती है। इस पद्धति का प्रयोग उन अनुसंधानों के लिये आवश्यक होता है जहाँ शुद्धता एवं सत्यता पर अधिक ध्यानदेना हो तथा अनुसंधान का क्षेत्र छोटा हो , अनुसंधानकर्ता का उपस्थित रहना आवश्यक हो और समंकों को गोपनीय रखना हो। इस रीति से समंकों के संकलन में अधिक समय , श्रम एवं धन व्यय होता है।

(ख) मौखिक छानबीन-

अनुसंधान का क्षेत्र अधिक विस्तृत होने पर व्यक्तिगत अवलोकन द्वारा समस्त समंक संकलित नहीं किये जा सकते। ऐसी स्थिति में मौखिक छानबीन के द्वारा समंक संकलित किये जाते हैं। इस रीति में तृतीय पक्ष वाले ऐसे व्यक्तियों से मौखिक पूँछताँछ द्वारा समंक संग्रहीत किये जाते हैं । इस रीति में तृतीय पक्ष वाले ऐसे व्यक्तियों से मौखिक पूंछतांछ द्वारा समंक संग्रहित किये जाते है । इस रीति में तृतीय पक्ष वाले ऐसे व्यक्तियों से मौखिक पूंछताछ द्वारा समंक संग्रहित किये जाते है । जो स्थिति से अप्रत्यक्ष रुप से सम्बन्धित हों। इस पद्धति में उन व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित नहीं किया जाता जिनके बारे में सूचनायें एकत्रित करनी होती हैं। यह रीति उसी स्थिति में उपयोगी होती है जबकि अध्ययन का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो , सम्बन्धित सभी व्यक्तियों से सम्पर्क करना कठिन हो या वे अज्ञानता अथवा अन्य किसी कारण से सूचना देने में समर्थ न हों या समंक जटिल प्रकृति के हों।

(ग) सम्वाददाताओं से सूचना प्राप्ति-

इस रीति में शोधकर्ता द्वारा विभिन्न स्थानों पर कुछ विशेष व्यक्ति नियुक्त कर दिये जाते हैं जो समय - समय पर सूचनायें संकलित करके अनुसंधानकर्ता के पास भेजते रहते हैं ,"इन्हें संवाददाता कहा जाता है। अनुसंधानकर्ता द्वारा इन प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस रीति का प्रयोग सामान्यतया: समाचार पत्र , पत्रिकाओं द्वारा किया जाता है। इस पद्धति से समंक एकत्रित करने में समय , श्रम एवं धन की बचत होती है और दूर - दूर के स्थानों से भी लगातार सूचनायें एकत्रित की जाती हैं।

(घ) सूचनादाताओं द्वारा अनुसूचियाँ भरवाकर सूचना प्राप्ति-

इस रीति में शोधकर्ता समस्या से सम्बन्धित प्रश्नों की एक अनुसूची (प्रश्नावली) तैयार करता है फिर अनेक प्रतियाँ तैयार करके उन्हें सूचनादाताओं के पास भेज देता है और वे व्यक्ति इन प्रश्नों के उत्तर भरकर एक निश्चित तिथि शेधकातर्ता के पास भेज देते हैं। इस पद्धति में सूचनादाताओं से सूचना प्राप्त करने के लिये उन्हें उनकी सभी सूचनाओं को गुप्त रखने का आश्वासन दिया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग ऐसे विस्तृत क्षेत्रों के अध्ययन के लिये उपयुक्त

माना जाता है जहाँ कि सूचना देने वाले शिक्षित हों । इस पद्धति द्वारा कम खर्च में तथा कम समय में विस्तृत क्षेत्र की सूचनायें प्राप्त हो जाती हैं ।(ड़) प्रगणकों द्वारा अनुसूचियाँ भरना -

इस पद्धति में अध्ययन से सम्बन्धित अनेक बातों को ध्यान में रखकर सम्बन्धित प्रश्नों की एक प्रश्नावली तैयार की जाती है । इन प्रश्नावलियों को प्रत्यक्ष रुप से सूचनादाताओं के पास नहीं भेजा जाता है बल्कि कुछ प्रगणक नियुक्त कर दिये जाते हैं जो सूचनादाताओं के पास जाकर स्वयं प्रश्नावलियों को भरते हैं । इस रीति में अलग -अलग क्षेत्रों के लिये अलग - अलग प्रगणकों की नियुक्ति कर दी जाती हैऔर आवश्यकतानुसार उन्हें प्रशिक्षित भी किया जाता है जिससे उन्हें प्रश्नावलियों को भरते समय कोई कठिनाई न हो । इस प्रणाली का प्रयोग विस्तृत क्षेत्र के लिये किया जाता है । इस रीति में शुद्धता की अधिक सम्भावना रहती है क्योंकि अनुभवी तथा प्रशिक्षित प्रगणकों द्वारा ही अनुसंधान का कार्य किया जाता है ।

समंक संकलन के लिये उचित रीति का चुनाव करते समय अनुसंधान की प्रकृति ,उद्देश्य , क्षेत्र , उपलब्ध समय ,आर्थिक साधन तथा शुद्धता की मात्रा को ध्यान में रखना आवश्यक होता है तभी शोधार्थी द्वारा उचित रीति का चुनाव सफलता पूर्वक किया जा सकता है ।

(ब) द्वितीयक समंक संकलन की रीतियाँ-

जैसा कि पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका हो कि द्वितीयक समंक उन समंकों को कहते हैं जो पहले से ही अन्य व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा एकत्रित एवं प्रकाशित किये जा चुके है द्वितीयक समंकों को संग्रहीत करने की रीतियॉ अग्रॉकित हैं । इन समंकों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

१- प्रकाशित स्त्रोत-

प्रकाशित स्त्रोत के अन्तर्गत निम्नलिखित स्त्रोत सम्मलित हैं-

(क) अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन -

अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों एवं सस्थाओं द्वारा समय -समय पर विभिन्न विषयों से सम्बन्धित समंक संकलित कर प्रकाशित किये जाते है, जैसे - संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रतिवेदन ,

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का वार्षिक प्रतिवेदन। इनका प्रयोग द्वितीयक समंकों के रुप में , शोधकर्ताओं द्वारा किया जाता है ।

(ख) शासकीय प्रकाशन -

समय - समय पर केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के अनेक विभागों द्वारा विभिन्न विषयों से सम्बन्धित समंक संग्रहीत कर प्रकाशित किये जाते हैं , जैसे - भरतीय रिजर्व बैंक का प्रतिवेदन , जनगणना समंक इत्यादि ।

(ग) अर्द्ध सरकारी प्रकाशन -

अनेक अर्द्ध सरकारी संस्थाओं जैसे नगर निगमों , नगरपालिकाओं , जिलापंचायतों " द्वारा समय -समय पर स्वास्थ्य , शिक्षा , जन्म - मृत्यु से सम्बन्धित समंक संग्रहीत कर प्रकाशित किये जाते हैं ।

(घ) समिति एवं आयोगों के प्रतिवेदन -

समय - समय पर सरकार विभिन्न विषयों पर जाँच कराने के लिये आयोग एवं जाँच समितियाँ गठित करती है । ये आयोग एवं जाँच समितियाँ अपना प्रतिवेदन तैयार करते हैं जैसे - वित्त आयोग ,अल्प संख्यक आयोग , एकाधिकार आयोग इत्यादि। इन प्रतिवेदनों से भी शोधकर्ताओं को महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होतीं हैं ।

(ङ) व्यापारिक संस्थाओं के प्रकाशन -

अनेक बड़ी - बड़ी व्यापारिक संस्थाये समय - समय पर विभिन्न विषयों पर अपने शोध विभागों द्वारा एकत्रित समंकों का प्रकाशन करती है जैसे - स्कन्ध विपणि , हिन्दुस्तान लीवर लि. इत्यादि ।

(च) विश्वविद्यालयों तथा अनुसंधान संस्थाओं के प्रकाशन -

अनेक अनुसंधान संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों द्वारा समय - समय पर विभिन्न विषयों से सम्बन्धित समंक एकत्रित किये जाते हैं जिन्हें बाद में प्रकाशित किया जाता है । अनुसंधानकर्ताओं को इन प्रकाशित संमकों से उपयोगी सूचनायें प्राप्त हो जाती है ।

(छ) समाचार पत्र एवं सामाजिक पत्रिकायें -

अनेक समाचारपत्रों एवं सामाजिक पत्रकाओं द्वारा समय - समय पर विभिन्न विषयों पर जो समंक संकलित कर प्रकाशित किये जाते हैं उन्हें शोधार्थियों द्वारा द्वितीय समंकों के रुप में उपयोग में लाया जाता है ।

(ज) व्यक्तिगत अनुसंधानकर्ताओं द्वारा प्रकाशित समंक

अनेक अनुसंधानकर्ताओं द्वारा विभिन्न विषयों पर आवश्यक समंक संकलित कर प्रकाशित किये जाते हैं । जिनसे भी आवश्यक सूचनायें प्राप्त होती हैं ।

२- अप्रकाशित स्त्रोत -

समय - समय पर अनेक अनुसंधानकर्ताओं , संस्थाओं द्वारा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सामग्री संकलित की जाती है जो कि प्रकाशित नहीं कराई जाती । आवश्यकतानुसार इस प्रकार की अप्रकाशित सामग्री का भी प्रयोग किया जाता है ।

समस्या निरुपण -

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मध्य प्रदेश की औद्योगिक इकाईयों में प्रबंधकीय लेखाँकन: व्यवहार एवं मूल्याँकन (ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाईयों के विशेष संदर्भ में) का अध्ययन किया गया है । म.प्र. की विभिन्न प्रकार के उत्पाद तैयार कर समाज के विभिन्न वर्गों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है । संस्थाओं के स्वामियों , विनियोजकों , ऋण दाताओं , प्रबन्धकों यहाँ तक कि बाहरी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में प्रबन्धकीय लेखाँकन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इसके द्वारा प्रबंधकों को नियोजन कार्य में सफलता मिलती है जिससे संस्था अपने मूल उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहती है । प्रबंध लेखाँकन संस्था में उचित नियंत्रण तथा व्यवस्था बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है । योजनाओं के सफल कार्योन्यियन हेतु व्यवसाय की सभी क्रियाओं में उचित तालमेल होना आवश्यक होता है तथा संगठन में अभिप्रेरण की भी आवश्यकता होती है इन क्रियाओं में प्रबन्ध लेखाँकन महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है । आज के गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा कें युग में वही संस्था अपना अस्तित्व बनाये रख सकती है जो न्यूनतम लागत पर

अधिकतम तथा श्रेष्ठतम किस्म का उत्पादन करने में सक्षम हो । प्रबन्ध लेखाँकन के प्रयोग से बहुत कुछ सीमा तक यह सब सम्भव हो पाता है ।

सम्बन्धित विषय सामग्री का अवलोकन -

किसी भी समस्या का अध्ययन तब तक प्रारम्भ नहीं किया जा सकता जब तक कि उससे सम्बन्धित विषय सामग्री का अवलोकन एवं गहन अध्ययन न किया जाये । लेखाँकन क्रिया कोई नई क्रिया नहीं है । व्यावसायिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था से ही व्यवसाय जगत में यह चली आ रही है । लेखे रखने की क्रिया किसी न किसी रुप में उस समय से विद्यमान है जब से व्यवसाय का जन्म हुआ । एक बहुत छोटा व्यवसायी मस्तिष्क में याददास्त का सहारा लेकर लेखा रख सकता है तो दूसरा व्यवसायी उसे कागज पर लिखित रुप प्रदान कर सकता है । व्यवसाय का आकार जैसे - जैसे बढ़ता गया और व्यवसाय की प्रकृति जटिल होती गई , लेखाँकन व्यवस्थित होने लगा । इसमें तर्क - वितर्क , कारण प्रभाव विश्लेषण के आधार पर प्रतिपादित ठोस नियमों एवं सिद्धाँतों की नींव पड़ती गई तथा सामान्य लेखा - जोखा एक कालांतर से बृहद लेखाशास्त्र के रुप में हमारे सामने आया। यह व्यवसायी को यह जानकारी प्रदान करता है कि एक निश्चित अवधि में उसकी व्यावसायिक क्रियाओं का परिणाम क्या रहा । उसकी सम्पत्तियाँ एवं दायित्व एक निश्चित तिथि का क्या हैं ।

आधुनिक व्यवसाय का बढ़ता हुआ आकार , उत्पादन स्तर में बृद्धि , तकनीकी प्रविधियों की जटिलता , सरकारी हस्तक्षेप तथा उद्योगों के सामाजिक दायित्व के प्रति जनता की जागरुकता के फलस्वरुप अनेक नवीन आवश्यकताओं का प्रादुर्भाव हुआ जैसे - भावी नियोजन ,नीतियों एवं योनाओं का मूल्याँकन , लागत नियंत्रण , उत्तरदायित्वों एवं अधिकारों का विभाजन , केन्द्रीय नियंत्रण तथा शीघ्र एवं उचित निर्णायन इत्यादि । इन आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य लेखाँकन या वित्तीय लेखाँकन द्वारा सम्भव नहीं हुई , इसीलिये प्रबन्ध लेखाँकन का विकास व्यवसाय प्रबन्ध की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु हुआ । प्रबन्ध लेखाँकन का प्रादुर्भाव प्रबन्धकों की सेवा करने के लिये और उन्हें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में सफलता देने के लिये हुआ ।

उद्देश्य एवं क्षेत्र -

यह शोध प्रक्रिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण है। किसी भी व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले कार्य अथवा प्रयास उद्देश्यपूर्ण ही होते हैं। इसीलिये स्वाभाविक रुप से शोध कार्य भी निरुउद्देश्य नहीं हो सकता है। उद्देश्य विहीन किये गये किसी अध्ययन की कोई उपयोगिता नहीं होती है। सामान्यतया प्रत्येक शोध कार्य के प्रमुख उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना, नये सिद्धाँन्तों का प्रतिपादन करना, अज्ञात तथ्यों का पता लगाना और विशेष जानकारी हासिल करना इत्यादि होते हैं। कोई भी शोधार्थी शोधकार्य करने के लिये इस कारण से प्रभावित होता है कि वह सामाजिक जीवन से जुड़ी हुई घटनाओं, तथ्यों तथा सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को ठीक प्रकार से समझ सके। इसके अतिरिक्त शोधकार्य के दौरान नये सिद्धाँन्तों की खोज करना तथा उन्हें पुराने सिद्धाँन्तों के साथ समायोजित करना आवश्यक होता है। शोधकार्य के उद्देश्यों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं। इस सम्बन्ध् में **"डब्ल्यू.ए.नीस्बैंगर, ने लिखा ,"** उद्देश्यों का स्पष्ट विवरण आधार भूत महत्व रखता है, क्योंकि उससे निश्चित किया जाता है कि कौन से समंक एकत्रित करने है, सम्बद्ध समंकों की क्या - क्या विशेषतायें हैं। किन सम्बन्धों की खोज करनी है, किन प्रतिविधयों द्वारा अनुसंधान करना है और अन्तिम रिपोर्ट की विषय सामग्री तथा रुपरेखा क्या होगी। " इसी प्रकार **राबर्ट बैसेल एवं एडबर्ड विलेट लिखते हैं** कि, " शोधकार्य का उद्देश्य यथा सम्भव पर शुद्ध रुप से स्पष्ट किया जाना चाहिये, इससे उचित सूचना का ही संग्रह सुनिश्चित हो जायेगा और प्रसंगहीन ऑकड़ों के संकलन व प्रहस्तन के खर्चएवं कष्ट से छुटकारा मिल जायेगा।" इसीलिये यह आवश्यक होता है कि पहले से ही उद्देश्य निश्चित कर लिये जायें, जिससे बाद में उपस्थित होने वाली अनेक कठिनाईयों से बचा जा सके, केवल आवश्यक समंक ही संकलित किये जा सकें तथा धन, समय एवं श्रम का सदुपयोग हो सकें।

"म.प्र. की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन व्यवहार एवं मूल्याँकन " पर किये जा रहे शोध प्रबन्धों का उद्देश्य, प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की वर्तमान स्थिति की जानकारी हासिल करना वित्तीय योजना एवं पूँजीकरण की स्थिति का पता लगाना, पूँजी संरचना एवं पूँजी स्त्रोंतों का विश्लेषण करना, वित्तीय विश्लेषण की प्रमुख तकनीकों के उपयोग के बारे में जानकारी करना, प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में बजटिंग, प्रमाप लागत तथा सीमाँत लागत तकनीकों के उपयोग का

मूल्याँकन करना , सूचना प्रणाली का विश्लेषण करना , लाभों के पुर्नविनियोजन , ह्रास प्रबन्धन , विभिन्न संचय एवं कोषों का प्रबन्धन , लाभाँश नीति का विश्लेषण करना , है । इन सभी तथ्यों का अध्ययन करके व्यावारिक , रचनात्मक एवं उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करना ही इस शोध प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य है । यथा सम्भव शोधकर्ता का यही प्रयत्न रहेगा कि शोध प्रबन्ध प्रमुख औद्योगिक इकाईयों के लिये लाभकारी होने के साथ - साथ इस देश, समाज एवं विनियोक्ताओं के लिये भी अधिकतम लाभकारी एवं उपयोगी सिद्ध हो सके ।

शोध प्रक्रिया का उद्देश्य निर्धारित करने के बाद अध्ययन के क्षेत्र को निर्धारित करना आवश्यक है । असीमित , त्रुटिपूर्ण एवं अस्पष्ट अवधारणायें शोध कार्य को अनिश्चित बना देती हैं , जिससे न तो विषय का पूर्ण अध्ययन ही किया जा सकता है और न प्राप्त परिणाम ही परिशुद्धता के निकट हो सकते है । इसीलिये प्रत्येक शेधकता के लिये यह आवश्यक होता है कि वह अपने शोध प्रबन्ध के अध्ययन का क्षेत्र स्पष्ट रुप से निर्धारित करे । इस सम्बन्ध में **कार्ल पियर्सन का मत है** कि ," शोध का क्षेत्र वास्तव में असीमित है तथा इससे सम्बन्धित विषय सामग्री भी अनन्त है , इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक घटना , जीवन का प्रत्येक पक्ष , अतीत व वर्तमान का प्रत्येक स्तर शोधकार्य के लिये जीवन्त विषय सामग्री प्रस्तुत करता है ।"

प्रस्तुत अध्ययन " मध्य प्रदेश की औद्येगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन व्यवहार एवं मूल्याँकन " का क्षेत्र केवल ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख औद्योगिक इकाईयों तक सीमित है । लेकिन औद्येगिक इकाईयों के संदर्भ में यह अधिक विस्तृत एवं व्यापक है क्योंकि किसी भी राष्ट्र का आर्थिक विकास वहाँ के औद्योगीकरण पर निर्भर करता है और औद्योगीकरण इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पादन योजना बद्ध तरीके से हो , उचित नियंत्रण व्यवस्था हो , समन्वय तथा अभिप्रेरण की प्रभावी व्यवस्था हो, विनियोजित पूँजी पर अधिकतम लाभ मिले , मौसमी उच्चावचनों व व्यापारिक चक्रों से सुरक्षा हो ,कम मूल्य पर अधिकतम तथ श्रेष्ठतम किस्म का उत्पादन सम्भव हो , संस्थाओं में हित रखने वाले पक्षकार संतुष्ट हों , उत्पादन में बृद्धि हो तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो । यह सब प्रबन्धकीय लेखाँकन के व्यवहार द्वारा ही सम्भव है । औद्योगीकरण का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इसीलिये शोधार्थी ने इस क्षेत्र को शोध कार्य के लिये चुना है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यह अध्ययन किया जायेगा कि ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाईयों की वित्तीय योजनायों एवं पूंजीकरण की क्या स्थिति है। पूँजी संरचना कैसी है तथा पूँजी के स्रोत क्या हैं, वित्तीय विश्लेषण की प्रमुख तकनीकों का प्रयोग संतोषनक है या नहीं, बजटिंग, प्रमाण लागत तथा सीमाँत लागत तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है या नहीं, सूचना प्रणाली की क्या स्थिति ठीक है कि नहीं, का उचित प्रबन्ध किया गया है या नहीं, संचय एवं कोषों का प्रबन्धन ठीक है या नहीं, औद्योगिक इकाईयों द्वारा लाभाँश नीति कैसी अपनाई गयी है। इन प्रमुख क्षेत्रों में कहाँ - कहाँ कमियाँ हैं, उनमें सुधार के क्या उपाय किये जा सकते हैं इन विभिन्न समस्याओं का भी विवेचन आवश्यक है, क्योंकि इनके अध्ययन के बिना शोध कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इसीलये इन समस्याओं के संक्षिप्त विवेचन को भी अध्ययन क्षेत्र में सम्मलित किया गया है।

विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण-

समस्त समंकों को संग्रहीत करने के बाद उन्हें विश्लेषण योग्य बनाने के लिये उनका वर्गीकरण एवं सारणीयन करना होता है। समंकों का वर्गीकरण तथा सारणीयन का कार्य पूरा हो जाने के बाद ही उन्हीं के आधार पर तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है। साधारणतः विभिन्न तथ्यों की तुलना तथा उनमें पाये जाने वाले आपसी सम्बन्धों के आधार पर तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है तथा इसी विश्लेषण के आधार पर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं अर्थात समस्या से सम्बन्धित परिणाम ज्ञात किये जाते हैं। इस प्रकार इन सामान्य निष्कर्षो के आधार पर न केवल विषय के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान ही प्राप्त होता है बल्कि शोधकार्य के व्यावहारिक उद्देश्य की भी पूर्ति होती है। साधरणतः विश्लेषण में निम्नाँकित विधियों को काम में लाया जाता है-१- औसत एवं माध्य, २- प्रतिशत, ३- अनुपात, ४- अपकिरण, ५- विषमता, ६- सह सम्बन्ध, ७- आन्तरगणन एवं बाहय गणन,८- काल श्रेणी, ९- प्रतीपगमन १०- प्रायिकता इत्यादि।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधकर्ता द्वारा सभी सारणियों का विश्लेषण किया गया है। विश्लेषण में मुख्य रुप से माध्यों, प्रतिशतों तथा अनुपातों आदि का प्रयोग किया गया है।

शोधकार्य के लिये संकलित किये गये समंकों तथा उनसे प्राप्त निष्कर्षों को प्रदर्शित करना ही प्रस्तुतीरण कहलाता है। प्रस्तुतीकरण जितना अधिक प्रभावी तथा आकर्षक होगा, किसी भी व्यक्ति का उतनी ही शीघ्रता से प्रभावित किया जा सकेगा और वह अधिक समय तक प्रभावित रह

सकेगा। सामान्यतः प्रस्तुतीकरण में निम्नलिखित रीतियों को उपयोग में लाया जाता है- १- सारणीयन , २- चार्ट , ३- रेखाचित्र , ४- अर्न्तविभक्त दण्ड चित्र , ५- वर्गाकार चित्र , ६- बिन्दु रेखा चित्र इत्यादि ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधार्थी द्वारा शोध कार्य में प्रस्तुत किये गये तथ्यों को अधिक आकर्षक एवं बोधगम्य बनाने के लिये आवश्यकतानुसार सारणियों , चार्टों , चित्रों , बिन्दुरेखा चित्रों , वर्गाकार चित्रों का प्रयोग किया गया है । शोध के अध्ययन में तथ्यों के संख्यात्मक एवं वर्णात्मक होने के कारण प्रस्तुतीकरण का क्षेत्र अधिक व्यापक है , लेकिन शोधार्थी ने अध्ययन को संक्षिप्त रुप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से आवश्यक तथ्यों एवं सारणियों को ही चित्रों , चार्टों , बिन्दुरेखीय चित्रों एवं वर्गाकार चित्रों में प्रदर्शित किया है ।

अध्याय की रुपरेखा-

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य " मध्य प्रदेश की औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन: व्यवहार एवं मूल्याँकन " का ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाईयों के विशेष संदर्भ में विस्तृत अध्ययन करना है। वर्तमान परिस्थितियों में , ग्वालियर परिक्षेत्र की प्रमुख इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन के व्यवहार की क्या स्थिति है । इसकी समीक्षा करना है इस शोध प्रबन्ध को नौ अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में म.प्र. की प्रमुख् औद्योगिक इकाईयों की वर्तमान स्थिति का अवलोकन किया गया है । द्वितीय अध्याय में शोध प्रविधि का अध्ययन किया गया है । तृतीय अध्याय में प्रबन्धकीय लेखाँकन के उद्देश्य ,प्रकृति , तकनीकों , कार्यों तथा सीमाओं का अध्ययन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में प्रमुख औद्येगिक इकाईयों की पूँजी संरचना एवं वित्तीय योजना का अध्ययन किया गया है । पंचम अध्याय में वित्तीय विवरणों का विश्लेषण किया गया है । षष्टम अध्याय में लागत लेखा तकनीकों का अध्ययन किया गया है । सप्तम् अध्याय में प्रबन्ध सूचना प्रणाली का अध्ययन किया गया है । अष्ठम अध्याय में आय प्रबन्धन का अध्ययन किया गया है । नवम अध्याय में निष्कर्ष , सुझाव तथा भावी शोध संभावनाओं को प्रस्तुत किया गया है , जिससे विभिन्न पक्षों को लाभ होगा ।

शोध परिकल्पनायें एवं उनका परीक्षण-

किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन कार्य में शोध परिकल्पनाओं के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । इसकी सहायता के बिना यदि अध्ययन कार्य किया जाये तो घटनाओं की दुनियाँ में अनुसंधानकर्ता ठीक उसी प्रकार भटकेगा जैसे कि एक गाँव के किसान को , जिसने महानगरों का दर्शन नहीं किया है,बम्बई या कलकत्ता के राजपथ पर अकेला छोड़ दिया जाये । यह शोधकर्ता के लिये मार्गदर्शक का कार्य करती है, उसे उद्देश्यीन रुप में इधर-उधर भटकने से रोकती है और उसका हाथ पकड़कर सत्य के द्वार तक पहुँचने में या झूँठ को प्रमाणित करने में उसकी मदद करती है । शोध परिकल्पनायें अध्ययन कार्य को निश्चितता प्रदान करती हैं , अनुसंधान क्षेत्र को सीमित करती हैं, अनुसंधान की दिशा निर्धारित करती है, सम्बद्ध तथ्यों के संकलन में सहायक होती हैं तथा प्रत्येक दशा में सत्य ढूंढ निकालने के कार्य में सहायक सिद्ध होती हैं ।

एक काम चलाऊ परिकल्पना का निर्माण हम इसलिये करते हैं कि हमें अपने अध्ययन कार्य के दौरान यह पता रहे कि हमें क्या करना और क्या जानना है , किन तथ्यों को लेना है और किन्हें छोड़ना है , हमारे लिये क्या महत्वपूर्ण और क्या बेकार का है । लेकिन इसमें यह खतरा होता है कि कभी - कभी शोधकर्ता परिकल्पना को ही अपने अध्ययन का वास्तविक निष्कर्ष मान लेने की गलती करता है और उस अवस्था में वह तथ्यों को तोड़ - मरोड़ कर इस प्रकार एकित्र एवं प्रस्तुत करता है जिससे कि परिकल्पना ही प्रमाणित हो । वास्तव में ऐसा तब होता है जबकि शोधकर्ता वास्तविक तथ्यों के अनुसार परिकल्पना को न बदलकर परिकल्पना के अनुरुप तथ्यों को विकृत करने की भारी गलती कर बैठते हैं । इस संदर्भ में शोधकर्ता को हमेशा **श्री"वेस्टावे,** की इस चेतावनी को याद रखना चाहिये कि , "परिकल्पनायें बेलोरियाँ हैं जो कि असावधान को गाना गाकर सुला देती हैं । " इसलिये जागते रहो, ऑखें खोलकर वास्तविक तथ्यों को उनके वास्तविक रुप में देखो और उन्हीं के आधार पर परिकल्पना की जाँच करो - वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में तुम्हारी देन समान महत्व की होगी ।

शोधार्थी द्वारा जो शोध परिकल्पायें की गई हैं वे अग्रॉकित हैं और उन्हीं का परीक्षण किया गया है-

१- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की वर्तमान स्थिति कैसी है ।

२- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में प्रबन्धकीय लेखाँकन तकनीकों का प्रयोग कहाँ तक सफलतापूर्वक किया गया है ।

३- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की वित्तीय योनाओं की क्या स्थिति है और उनमें पूँजीकरण की आदर्श स्थिति है या नहीं ।

४- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की पूँजी संरचना कैसी है और उनके पूँजी के स्रोत कौन - कौन से हैं ।

५- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में विश्लेषण की प्रमुख तकनीकों का प्रयोग ठीक प्रकार से हो रहा है या नहीं ।

६- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में बजटिंग , प्रमाप लागत तथा सीमाँत लागत तकनीकों का उपयोग ठीक ढंग से हो रहा है या नहीं ।

७- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में सूचना प्रणाली का विश्लेषण ।

८- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में आय प्रबन्धन की संतोषनक स्थिति है या नहीं ।

९- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में अपनाई गई लाभाँश नीति विनियोजकों को आकर्षित करती है या नहीं ।

१०- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में भावी शोध सम्भावनायें ।

उपर्युक्त शोध परिकल्पनाओं के अध्ययन तथा उनके परीक्षण से न केवल शोध प्रबन्ध लिखने का उद्देश्य पूरा होगा बल्कि इस अध्ययन से समाज के विभिन्न वर्गों को अनेक लाभ भी प्राप्त हो सकेंगे ।

तृतीय अध्याय

प्रबंधकीय लेखांकन

१- अवधारणा

२- उद्देश्य एवं प्रकृति

३- प्रबन्धकीय लेखांकन की तकनीकों एवं कार्यों का संक्षिप्त परिचय

४- प्रबन्धकीय लेखांकन के कार्य एवं सीमायें

अवधारणा

आधुनिक युग में प्रत्येक व्यावसयिक संस्था गतिशील वातावरण में कार्य करती है इसीलिये वर्तमान में व्यवसाय का प्रबन्ध जटिल से जटिलतर होता जा रहा है और नित्य नई समस्यायें जन्म ले रही हैं। गतिशील एवं परिवर्तनशील सामाजिक तथा आर्थिक वातारण के कारण ही किसी संस्था के कुशल प्रबन्धन के लिये वड़े पैमाने पर उत्पादन, शोध, विस्तार, उत्पादन-सुधार तथा उत्पादन-विविधता वाजार के विस्तार आदि अनेक तथ्यों पर ध्यान देना तथा उनके सम्बन्ध में सुनिश्चित योजनायें बनाना अनिवार्य हो गया है। इन सभी तथ्यों एवं इनसे सम्बन्धित समस्याओं ने आखिरकार यह सिद्व कर दिया है कि वित्तीय लेखांकन अपने परम्परागत रुप में प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्वि नहीं कर सकता । व्यवसायिक गतिविधियों के क्षेत्र में आश्चर्यजनक वृद्वि होने के कारण दूसरे विश्वयुद्ध के वाद वित्तीय लेखांकन के लिये यह एक सबसे बड़ी चुनौती रही है । गला काट प्रतिस्पर्द्धा के कारण व्यावसायिक तथा औद्योगिक संस्थाओं के जीवित रहने तथा विकास के लिये संचालन कुशलता एवं प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि करना और समयानुसार परिवर्तन लाना आवश्यक हो गया है यह निर्विवाद सत्य है कि न्यूनतम लागत पर ही अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस उद्देश की पूर्ति तभी संभव है जबकि व्यवसाय की समस्त क्रियाओं पर नियन्त्रण हो तथा उनके संगठन में पूर्णरुपेण समन्वय हो। वास्तव में आज उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय साधनों का संयोजन तथा उनका एक योजनाबद्ध रुप में उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। कोई भी प्रबन्ध तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह समस्त भौतिक तथा मानवीय साधनों में समन्वय स्थापित न कर ले।

किसी भी व्यावसायिक उपक्रम के लिये एक सुनिश्चित योजना का निर्माण , सभी संक्रियायों का संगठन,उनमें समन्वय तथा उन पर नियंत्रण,इन सभी कार्यो की सफलता आवश्यक सूचनाओं तथा आंकड़ों की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं। आधुनिक युग की प्रबन्ध व्यवस्थाओं में सूचनाओं का निरन्तर प्रवाह अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उनके आधार पर ही प्रबन्धक दिन-प्रतिदिन आवश्यक निर्णय ले सकते हैं तथा उत्पादन के साधनों का सम्पूर्ण उपयोग करने तथा उन पर नियंत्रण करने सम्बन्धी योजनाओं का निर्माण करने में सफल हो सकते हैं। इसी प्रकार की आवश्यकता ने ही वित्तीय लेखांकन में क्रांतिकारी तथा महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पर बल दिया है,जिसके परिणामस्वरुप

ही प्रन्धकीय लेखांकन का जन्म हुआ है । अब यह स्पष्ट हो चुका है कि वर्ष के अन्त में तैयार तथा प्रस्तुत किये जाने वाले लेखा विवरण -लाभहानि खाता तथा चिट्ठे से प्रबन्ध सम्बन्धी सूचनायें एकत्रित नहीं हो सकती हैं आज ये वित्तीय विवरण संस्था के स्वामियों, विनियोजकों, ऋणदाताओं तथा अन्य बाहरी व्यक्तियो की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है। इन बाहरी व्यक्तियों को इन वित्तीय विवरणों से जिन सूचनाओं की अपेक्षा होती है वे उपलब्ध नही हो पाती हैं। इन परम्परागत विवरणों में आवश्यक सूचनाओं की अभिव्यक्ति पर निरंतर बल दिये जाने के कारण वित्तीय लेखांकन एवं लेखाशास्त्र की एक शाखा के रुप में प्रबन्धकीय लेखाशास्त्र का विकास हुआ है। इसके अर्न्तगत वित्तीय लेखांकन तथा लागत लेखांकन के व्यवहारिक पहलू पर जोर दिया जाता है। इस आधार पर ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रबन्धकीय लेखांकन प्रबन्ध का एक आवश्यक उपकरण है जिसका प्रयोग व्यवसाय के कुशल प्रबन्ध तथा नियंत्रण नीति निर्धारण और निर्णयन के लिये आवश्यक है। संक्षेप में यही प्रबन्ध लेखांकन है।

प्रबन्ध लेखांकन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं। **जे० बैटी** के शब्दों में "प्रबन्ध लेखाशास्त्र का अभिप्राय लेखांकन विधियों, पद्धतियों एवं प्रविधियों से है जो विशिष्ट ज्ञान एंव योग्यता के साथ प्रबन्धकों को लाभ अधिकतम करने अथवा हानि न्यूनतम करने के अपने कार्य में सहायता प्रदान करती है।"[१] इसी प्रकार **अमेरिकन एकाउन्टिग एसोसियेशन** के अनुसार "प्रबन्धकीय लेखांकन में व्यवसायिक क्रियाओं के विकल्पों में से चुनाव के लिये तथा मूलयांकन के द्वारा नियंत्रण एवं कार्यकरण का विश्लेषण के लिये प्रभावी योजना के आवश्यक कार्य एवं विधियां सम्मिलित हैं।"[२] **डा० एस० के० आर० भण्डारी** के शब्दों में, "प्रबन्धकीय लेखांकन का उद्देश्य प्रबन्ध को प्रत्येक स्तर पर सहायता प्रदान करना है ताकि निम्न स्तर पर नियंत्रण क्रियान्वित किया जा सके इसके द्वारा उच्चस्तरीय प्रबन्ध भावी नीतियों की साधक्ता का मापन करता है।"[३]

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रबन्धकीय लेखांकन की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रबन्ध लेखांकन वित्तीय एवं लागत लेखों तथा अन्य पुस्तकों व अभिलेखों द्वारा प्रदर्शित तथ्यों, सूचनाओं एवं परिणामों का निर्वचन एवं प्रस्तुतीकरण है जिसका उपयोग प्रबन्ध द्वारा नीति निर्धारण, उनका क्रियान्वयन और कुशल निर्देशन हेतु किया जाता है। यह कार्य ऐसी विधियों, प्रविधियों तथा पद्धतियों द्वारा विशेष ज्ञान व कुशलता के साथ संपादित किया जाता है कि उपलब्ध सूचना प्रबन्ध समस्याओं को समझने तथा सुलझाने में पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सके। इस तरह प्रबन्ध लेखांकन

---

(1) प्रबन्ध लेखांकन - एम0आर0 अग्रवाल- पृ0क्र0 -4
(2) प्रबन्धकीय लेखांकन- जे0के0अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल पृ0क्र0 - 3
(3) प्रबन्धकीय लेखांकन- जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल पृ0क्र0- 4

एक शब्द है जिसमें वे सभी सेवायें सम्मिलित हैं जो किसी व्यावसायिक संस्था का लेखांकन विभाग प्रबन्ध को अर्पित करता है, जिससे व्यवसाय के विभिन्न विभागों का आधुनिकतम ढंग से अधिकतम कुशलता के साथ संचालन किया जा सके।

उद्देश्य एवं प्रकृति -

प्रबन्ध लेखांकन की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर प्रबन्ध लेखांकन के निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं-

१- नियोजन तथा नीति निर्धारण में सहायता करना-

नियोजन में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर पूर्वानुमान करना, लक्ष्य निर्धारित करना, नीतियां निर्धारित करना, वैकल्पिक कार्यवाही का निर्धारण करना तथा सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं के कार्यक्षेत्रों का निर्णय लेना सम्मिलित हैं। प्रबन्धकीय लेखांकन के आधार पर ही भविष्य की योजनाओं का निर्माण तथा नीति निर्धारण का कार्य किया जाता है। उत्पादन, विक्रय, वित्त तथा विपणन इत्यादि से सम्बन्धित योजनाओं को बनाने एवं क्रियान्वयन के लिये लेखाकारों से प्राप्त विविध सूचनाओं को आधार माना जाता है। किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कई विकल्प प्रस्तुत किये जाते हैं तथा उनमें से सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता है। आवश्यकतानुसार अनेक बार भूतकालिक सूचनाओं के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करके भविष्य का पूर्वानुमान किया जाता है। तथा नीतियों का निर्धारण किया जाता है।

२- नियंत्रण प्रक्रिया में सहायता करना -

एक संगठन की क्रियाओं से सम्बन्धित वित्तीय सूचनाओं की न्याय निष्ठा सुनिश्चित करने हेतु नियंत्रण करना प्रबन्ध लेखांकन का उद्देश्य है। इसके अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था की जाती है जिससे वास्तविकता की तुलना पूर्व निर्धारित आंकड़ों से की जाती है। यदि इनमें कोई अन्तर आता है तो उसके कारणों पर विचार किया जाता है। कि यह प्रबन्ध की कमियों के कारण तो नही है। या किसी अन्य प्रकार की कमी तो नही रह गई है। समस्या पर पूर्ण रुप से विचार किया जाता है और उन कमियों को दूर किया जाता है। जिससे अव्यवस्था, असावधानी, एवं धोखाधड़ी पर नियंत्रण किया जा सके।

३- संगठन कार्य में सहायता करना -

संगठन प्रशासन की अनिवार्य प्रक्रिया है । संगठन व्यवसाय के निशिचत उद्देश्य प्राप्ति एवं नीति के क्रियान्वयन का आवश्यक साधन है । यह प्रबन्ध की प्रेषित रेखा क्रम प्रक्रिया है, लेखाकर्म का संगठन इस प्रकार होना चाहिये ताकि इसका उपयोग सही समय पर उचित साधन द्वारा उचित स्तर द्वारा किया जा सके । इस प्रकार प्रबन्धकीय लेखांकन सूचना प्राप्त करने के लिये इस प्रकार संगठन का कार्य करता है जिससे कि उससे उचित समय पर आवश्यक सूचना प्राप्त की जा सके ।

४- समन्वय में सहायता करना -

विभिन्न विभागों की क्रियाओं में समन्वयन से पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद मिलती है । प्रबन्ध लेखांकन का एक प्रमुख उद्देश्य व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं एवं विभागों.में समन्वयन करने में मदद करना है । बजटिंग के द्वारा विभिन्न विभागों की क्रियाओं में समन्वयन किया जाता है । उत्पादन बजट, क्रय बजट तथा वित्त बजट को विक्रय बजट के अनुसार इस प्रकार समन्वित किया जाता है । जिससे व्यवसाय में किसी भी प्रकार की बाधा न आये । इसी तरह वित्तीय लेखांकन तथा लागत लेखांकन के मध्य समन्वय कार्य भी प्रबन्ध लेखांकन के द्वारा सम्पन्न किया जाता है ।

५- अभिप्रेरण में सहायता करना -

वास्तव में केवल नीतियों के निर्धारण एवं उनके क्रियान्वयन से ही प्रबन्धकों के कार्यों का समापन नहीं हो जाता । संस्था में सेविवर्गीय कर्मचारियों का प्रभावी समन्वय एवं संगठन तो होना ही चाहिये, इसके साथ ही उसे इस प्रकार निर्धारित किया जाये ताकि उसे वही कार्य करने को दिया जाये जिसमें उसकी रुचि है तथा केवल उसी व्यकि को कार्य सौंपना चाहिये जिससे प्रबन्धक को यह विश्वास हो जाये कि जिसे कार्य दिया गया है वह वही कार्य करेगा जिसे प्रबन्धक करवाना चाहते हैं । प्रबन्धकीय लेखांकन से कर्मचारियों में अभिप्रेरणा की भावना को विकसित करने में सहायता मिलती है

६- मूल्यांकन करने में सहायता करना -

मूल्यांकन प्रक्रिया के अन्तर्गत अनेक भूतकालिक तथा भावी घटनाओं और क्रियान्वयन की उचित पद्धति के चयन के विभिन्न प्रभावों के बारे में निर्णय करना सम्मिलित होता है । इस संदर्भ में प्रबन्ध लेखांकन का उद्देश्य परिमाणात्मक समंकों की प्रवृति तथा सम्बन्ध प्रदर्शन हेतु रुपान्तरित करना और मूल्यांकन तथा विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों का प्रभावपूर्ण निर्वचन एवं संवहन करना है । इससे प्रबन्धकों को अपनी भावी नीतियों के निर्धारण तथा संचालन में अधिकतम सहायता मिलती है ।

७- निर्णय में सहायता करना-

विभिन्न व्यापारिक तथा औद्योगिक संस्थाओं में अनेक विषयों से सम्बन्धित निर्णय लेने होते हैं । प्रबन्ध लेखांकन के अन्तर्गत क्रय,विक्रय, उत्पादन, वित्त, तथा सेविवर्गीय आदि से सम्बन्धित विभिन्न योजनाओं के वारे में विचार किया जाता है । समंकों के तुनात्मक अध्ययन के बाद अनेक प्रबन्धकीय निर्णयों के विकल्प तैयार किये जाते हैं और उनमें सर्वाधिक लाभप्रद विकल्प का चुनाव किया जाता है । इस प्रकार प्रबन्धकीय लेखांकन से निर्णय करने में सहायता मिलती है ।

८- जबाबदेही निश्चित करने में सहायता करना-

प्रबन्ध लेखांकन का उद्देशय प्रितवेदन पद्धित जो संगठनात्मक दायित्वों से जुड़ी होती है तथा जो प्रबन्धकीय निष्पादन का प्रभावपूर्ण मापन है, को कार्यान्वित करने के लिये जबावदेही निशिचय करना ही है । इसके लिये संगठन के लक्ष्यों एवं उद्देशयों को विभिन्न उत्तरदायित्व केन्द्रों की स्थापना करके उसे सौंप दिये जाते हैं जो कि प्रबन्ध के प्रति जबाब देही होते हैं । इस प्रकार प्रबन्ध लेखांकन से जबाब देही निशिचत करने में सहायता मिलती हैं ।

९- संप्रेषण में सहायता करना-

प्रबन्ध लेखांकन का महत्वपूर्ण उद्देश्य ठीक समय पर ठीक सूचना ठीक व्यकिक्त तक पहुंचाना होता है । यदि सूचना संप्रेषण का कार्य ठीक प्रकार तथा प्रभावी ढंग से न हो तो व्यवसाय की सभी क्रियायें जैसे नियोजन, संगठन, नियंत्रण, समन्वय तथा नीति निर्धारण इत्यादि कुछ भी ठीक

समय पर नहीं हो सकता प्रबन्ध लेखांकन के द्वारा विभिन्न लेखांकन सूचनाओं को उचित रुप में संचालित किया जाता है जिससे इसका प्रयोग प्रबन्धक समयानुसार कर सकें ।

१०- कानूनी प्रक्रिया को पूर्ण करने में सहायता करना-

आधुनिक युग में व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण एवं कानूनी आवश्यकतायें इतनी अधिक हो गई हैं कि व्यवसाय के लिये कानूनी अनिवार्यताओं की पूर्ति करना आवश्यक हो गया है । प्रबन्ध लेखांकन इस कार्य में महत्वपूर्ण योगदान देता है । प्रबन्ध लेखांकन में लेखों, प्रतिवेदनों आदि के प्रारुप इस प्रकार तैयार किये जाते हैं जिससे किसी भी समय किसी भी कानूनी आवश्यकता को पूर्ण किया जा सके ।

प्रबन्ध लेखांकन की परिभाषाओं से प्रबन्ध लेखांकन की प्रकृति स्पष्ट है लेकिन फिर भी निम्न पहलुओं पर ध्यान आकर्षित किया जाता है-

१- सेवा कार्य -

प्रबन्धकीय लेखांकन एक सेवा कार्य हैं इसके अन्तर्गत संस्थाओं के प्रबन्धकों को संस्था की नीतियां निर्धारित करने तथा विवेकपूर्ण निर्णय के लिये चाही गई अनेक आवश्यक सूचनायें उचित समय पर उपलब्ध कराई जाती हैं । ये विभिन्न सूचनायें लागत,मूल्य, आय, लाभ , विक्रय आदि से सम्बन्धित हो सकती हैं । जिनका प्रयोग प्रबन्धक संस्था के निशिचत लक्ष्यों की प्राप्ति में करता है ।

२- भविष्य से सम्बन्धित -

प्रबन्ध लेखांकन भविष्य पर अधिक जोर देता है । भविष्य के लिये योजनायें बनाई जाती हैं तथा जब भविष्य के रुप में सोचा गया समय वर्तमान के रुप में सामने आता है तब उसका विश्लेषण किया जाता है । तथा आलोचनात्मक परीक्षण किये जाते हैं । प्रमाप लागत, लागत अन्तर,बजटरी कन्ट्रोल आदि ऐसी विधियां हैं जो भविष्य पर प्रकाश डालती है ।

३- समन्वित पद्धति -

प्रबन्ध लेखांकन एक समन्वित पद्धति है जिसमें अनेक विषयों, प्रणालियों,पद्धतियों, प्रविधियों, प्रारुपों व अन्य संबन्धित तथ्यों का समावेश किया जाता है। इसमें सांख्यिकी,

अर्थशास्त्र,मनोविज्ञान, व्यापारिक सान्नियम आदि विषयों के ज्ञान का व्यवहारिक प्रयोग करने के साथ- साथ वित्तीय लेखा, लागत लेखा , प्रमाप लागत, बजट नियंत्रण आदि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है ।

४- कारण परिणाम विश्लेषण -

प्रबन्ध लेखांकन कारण एवं उसके परिणाम पर काफी जोर डालता है । जैसे वित्तीय लेखों में लाभ की केवल मात्रा ज्ञात की जाती है जबकि प्रबन्ध लेखांकन में यह ज्ञात किया जाता है कि यह लाभ किन कारणों से हुआ है, इसके लिये विभिन्न मदों का विक्रय से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तथा उसका विश्लेषण करके संस्था की वित्तीय स्थिति,क्रियाशीलता तथा साख पर पड़नेवाले प्रभावों को जाना जाता है ।

५- चुनाव पर आधारित पद्धति -

प्रबन्ध लेखांकन के अन्तर्गत विभिन्न समान प्रक्रति एवं विशेषता वाली योजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है । जो योजना सर्वाधिक लाभप्रद एवं श्रेष्ठ होती है उसको चुन लिया जाता है । इसी तरह प्रबन्ध के समक्ष किसी विषय से सम्बन्धित उपलब्ध अनेक सूचनाओं में केवल वे ही सूचनायें प्रस्तुत की जाती हैं जिनकी जानकारी प्रबन्ध के लिये महत्वपूर्ण हैं ।

६- लागत तत्वों की प्रकृति का ही अध्ययन-

प्रबन्ध लेखांकन में लागत तत्वों प्रकृति पर विशेष जोर दिया जाता है । इसके अन्तर्गत लागत को स्थायी, परिवर्तनशील तथा अर्द्धपरिवर्तनशील में विभाजित किया जाता है । ऐसा करने से अनेक प्रबन्धकीय निर्णय लेने में सहायता मिलती है । प्रबन्धलेखांकन की अनेक तकनीकें जैसे सीमांत लागत विश्लेषण प्रत्यक्ष लागत विश्लेषण,लागत-लाभ-मात्रा विश्लेषण इत्यादि इसी वर्गीकरण पर आधारित हैं ।

७- निशिचत प्रकृति के नियमों का न होना-

प्रबन्ध लेखांकन के नियम निशिचत प्रकृति के नहीं होते हैं जैसा कि वित्तीय लेखांकन में होता है । इसके अन्तर्गत प्रबन्ध लेखापाल द्वारा प्रबन्धकों की आवश्यकतानुसार अंकों को विभिन्न तालिकाओं, चार्टों आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है । वह अपनी कल्पना तथा प्रतिभा के

द्वारा ऐसी सूचनायें तैयार कर सकता है जो कि प्रबन्धकों को अतिरिक्त जानकारी प्रदान करके उचित निर्णय लेने में सहायक होती है ।

८- समंक प्रस्तुतीकरण, निर्णयन नहीं -

प्रबन्ध लेखांकन में केवल समंकों के माध्यम से सूचनायें मिल सकती हैं, जिनके आधार पर निर्णय करना प्रबन्धक का कार्य है ।प्रबन्धक इनके आधार पर अपने मनोनुकूल निर्णय ले सकते हैं । वास्तव में प्रबन्ध लेखांकन निर्णय लेने के लिये आधार प्रस्तुत करता है। यह प्रबन्धक की कुशलता पर निर्भर करता है कि वह इसका प्रयोग किस प्रकार करता है ।

प्रबन्धकीय लेखांकन की तकनीकों एवं कार्यो का संक्षिप्त परिचय-

प्रबन्ध को अपने कार्य को कुशलता पूर्वक सम्पन्न करने के लिये अनेक प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता होती है। इन सूचनाओं की प्राप्ति प्रबन्धक को अनेक उपकरणों अथवा तकनीकों के माध्यम से होती है। कोई भी एक तकनीक प्रबन्ध को सम्पूर्ण सूचनायें प्रदान नहीं कर सकती है। सूवना प्राप्ति के लिये प्रबन्ध द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपकरण तथा तकनीक अग्रांकित हैं-

१- वित्तीय आयोजन-

वित्तीय आयोजन के अन्तर्गत व्यवसाय के लिये दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन पूंजी के प्रबन्ध हेतु भावी गतिविधियों की योजना वनाने का कार्य आता है जिससे भविष्य में किसी भी प्रकार की वित्तीय कठिनाई का सामना न करना पड़े एवं संस्था का कार्य बिना किसी बाधा के चलता रहे । वित्तीय आयोजन के आभाव में संस्था के मूलभूत लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव है । वित्तीय आयोजन के अर्न्तगत पूंजी की कुल आवश्यकता का अनुमान लगाना, उनके स्त्रोतों का निर्धारण करना , अनेक स्त्रोतों से प्राप्त पूंजी की लाभदायकता का तुलनात्मक अध्ययन करना और प्राप्त पूंजी को विभिन्न स्थायी एवं अस्थायी सम्पत्तियों में विनियोग की उचित तथा लाभप्रद मात्रा का निर्धारण करना इत्यादि कार्य आते है ।

२- वित्तीय लेखांकन

इसके अन्तर्गत किसी व्यवसायिक संस्था के दैनिक व्यवहारों का क्रमवद्ध व नियमानुसार पुस्तकों में लेखा किया जाता है तथा इन लेखों के सारांश के आधार पर वर्ष के अन्त में लाभ हानि खाता तथा चिट्ठा तैयार किया जाता है । वित्तीय लेखांकन द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर ही वित्तीय विवरणों का विश्लेषण,तुलनात्मक अध्ययन ,अनुपात विश्लेषण, प्रवृत्ति विश्लेषण इत्यादि तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है । वित्तीय विश्लेषण के माध्यम से प्रवन्धक,प्रशासक,ऋणदाता किसी निशिचत निर्णय पर पहुंचने में सक्षम होते हैं । इससे भावी आय अर्जन क्षमता ,ऋण पर ब्याज देने की क्षमता, उचित लाभांश नीति की संम्भावना आदि के वारे में जानकारी प्राप्त करने में मदद मिलती है ।

३- ऐतिहासिक लागत लेखांकन-

ऐतिहासिक लागत लेखांकन का अर्थ लागतों को उनके उदय होने की तिथि अथवा इसके बाद विभिन्न वर्गों में विभाजित करके लिख लेने से है । इसकी प्रमुख दो विधियां हैं- उपकार्य लागत विधि तथा प्रक्रिया लागत विधि । इन दोनों विधियों का स्वयं में इतना अधिक महत्व नहीं है लेकिन इन विधियों का प्रयोग प्रमाप लागत लेखांकन की सफलता के लिये आवश्यक है ।

४- पुनर्मूल्यांकन लेखांकन -

इस विधि को प्रतिस्थापन मूल्य लेखांकन भी कहते हैं । इसका अभिप्राय: उन रीतियों से है जिनका प्रयोग बढ़ते हुये मूल्यों की अवधि में स्थायी सम्पतियों की पुर्नस्थापना से सम्बन्धित समस्याओं का हल करने के लिये किया जाता है पुनर्मूल्यांकन लेखांकन का उद्देश्य इस बात का विशवास दिलाना होता है कि संस्था की पूंजी सुरक्षित है अर्थात मूल्य परिवर्तन के प्रभावों का समायोजन खातों में कर लिया गया है और लाभों की गणना इसी आधार पर की गई है ।

५- उत्तरदायित्व लेखांकन-

यह पद्धित लेखांकन की एक ऐसी पद्धति है जिसके अन्तर्गत लेखों एवं प्रतिवेदनों को इस प्रकार व्यविस्थत किया जाता है कि विभिन्न कार्यो से सम्बन्धित उत्तरदायी व्यक्तियों को उनके कार्य से सम्बन्धित वित्तीय सूचनायें उपलब्ध करायी जाती हैं। इसी सन्दर्भ में **आर०एम० भंडारी** के विचार महत्वपूर्ण हैं। " उत्तरदायित्व लेखांकन वह पद्धति है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक स्तर पर

उत्तरदायित्व निर्धारण के लिये लागत इस प्रकार संकलित एवं प्रतिवेदित की जाती है ताकि लेखांकन एवं लागत समंकों का प्रयोग प्रबन्ध द्वारा प्रत्येक स्तर पर उनके कार्यो एवं लागत पर नियंत्रण के लिये किया जा सके" । इस कार्य के लिये आवश्यक है कि लक्ष्यों का निर्धारण,योजनाबद्ध कार्य तथा कर्मचारियों में कार्य तथा अधिकारों का विभाजन किया जाये ।

६- वित्तीय विशलेषण-

इसका आशय वित्तीय विवरणों (लाभहानि खाता एवं चिट्ठा) में प्रस्तुत किये गये निष्कर्षो को किसी वैज्ञानिक विधि से सुविधाजनक भागों में बांटकर उनसे अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकालना है । इन्हीं निष्कषों के आधार पर संस्था में हित रखने वाला व्यक्ति संस्था की शोधन क्षमता, लाभदायकता तथा कार्य कुशलता के बारे में जान सकता है । इसिके लिये जिन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है वे है ।- (१) तुलनात्मक विवरण व प्रवृत्ति विश्लेषण ,(२) अनुपात विश्लेषण ,(३) कोष प्रवाह विश्लेषण ,(४) रोकड़ प्रवाह विश्लेषण (५)विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय ।

७- प्रमाप लागत लेखांकन -

लागतों पर नियंत्रण रखने के लिये अपनाई जाने वाली यह महत्वपूर्ण तकनीक है । इस विधि के अन्तर्गत किसी उपकार्य या प्रक्रिया की औसत कार्यकुशलता के आधार पर पहले से ही कुछ प्रमाप निशिचत कर दिये जाते हैं इसके बाद किये जाने वाले कार्य पर वास्तविक लागत एवं प्रमाप लागत की तुलना करके अन्तर की राशि एवं कारणों को जानने का प्रयास किया जाता है जिससे इसके लिये सुधारात्मक कार्यवाही की जा सके तथा लागत पूर्व निर्धारित प्रमापों के यथासम्भव करीब हो सकें।

८- बजटरी नियंत्रण -

इस तकनीक से प्रबन्धक को नियंत्रण कार्य में काफी हद तक सहायता मिलती है । बजटरी नियंत्रण के अन्तर्गत व्यवसाय की नीतियों और योजनाओं को वित्तीय मदों में प्रदर्शित किया जाता है । इसमें कार्यविधियों,उत्पादन तथा बिक्री की एक निशिचत समय पूर्व ही भविष्यवाणी कर दी जाती है । इसके साथ ही बजट वनाकर विभिन्न कार्यकर्ताओं के उत्तरदायित्व निशिचत कर दिये जाते हैं । इसके बाद वास्तविक परिणाम ज्ञात हो जाने पर बजट द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की तुलना की जाती है । बजट कमेटी बनाकर विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित किया जाता है तथा समय समय पर

कार्यात्मक विवरण तथा प्रतिवेदन तैयार करके सभी विभागों की क्रियाओं को बजट के अनुसार नियोजित करने का प्रयास किया जाता है । इस तकनीक के द्वारा विभिन्न विभागों की कार्यकुशलता का मूल्यांकन भी किया जा सकता है और इसके साथ ही उनकी अकुशनलता को नियंत्रित किया जा सकता है ।

९- सीमांत लागत लेखांकन-

यह तकनीक उत्पादन लागतों को स्थायी तथा परिवर्तनशील लागतों में विभाजित करने की तकनीक है । स्थायी लागतें अविध लागतें होती हैं जो कि उत्पादन घटने-बढ़ने से प्रभावित नहीं होतीं जबिक परिवर्तनशील लागतें उत्पादन के स्तर के साथ-साथ घटती-बढ़ती हैं। सीमांत लागत लेखांकन विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि स्थायी लागतों को उत्पादन में सम्मिलत करना अनावश्यक रुप से भ्रम पैदा करता है जिससे व्यावसायिक निर्णय उचित ढंग से नहीं हो पाते हैं । यह विधि-विभिन्न उत्पादों विभागों तथा खण्डों की लाभादायकता के मापन में विशेष रुप से योगदान देती है। इस विधि के एक भाग के रुप में ही लाभ-लागत तथा उत्पादन मात्रा का विश्लेषण करके सर्वाधिक लाभप्रद उत्पादन स्तर का निश्चयन किया जाता है ।

१०- निर्णय लेखांकन -

वास्तव में निर्णय लेखांकन कोई अलग से लेखांकन की विधि नहीं है । इसके अर्न्तगत यह अध्ययन किया जाता है कि लेखांकन प्रबन्ध को अपने महत्वपूर्ण कार्य-निर्णय में किस प्रकार सहायता पहुंचाता है । प्रबन्धकों को अनेक निर्णय लेने होते हैं, किसी कार्य को करने के लिये प्रबन्धकों के पास अनेक बिकल्प होते हैं। इन उपलब्ध बिकल्पों में से ऐसे सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना होता है जिससे न्यूनतम व्यय पर अधिकतम लाभ हो सके । इसके साथ ही प्रयोग तथा त्रुटि की अनिशिचतता से बचा जा सकें । व्यवसाय में अनेक महत्वपूर्ण निर्णयों जैसे पूंजी व्यय करना अथवा नहीं करना, वस्तु अपने ही कारखाने में निर्मित करना है अथवा बाजार से खरीदना है उप ठेका देना, मूल्य निर्धारित करना इत्यादि में निर्णय लेखांकन महत्वनपूर्ण सहायता करता है ।

११- नियंत्रण लेखांकन -

यह पद्धति भी अलग से लेखांकन की पद्धति नहीं हैं इसके अर्न्तगत प्रबंध लेखापाल अपने बुद्धि कौशल, कल्पना तथा प्रतिमा से प्रबन्धकों को कुछ उपयोगी सूचना प्रदान कर सकते हैं । इसके

लिये उन्हें इन सूचनाओं की व्याख्या,विश्लेषण तथा प्रस्तुतिकरण करना होता है। नियंत्रण कार्य के लिये मुख्य रुप से प्रमाप लागत लेखांकन तथा बजटरी नियंत्रण की विधियों की सहायता ली जाती है। इसके अलावा आन्तरिक अंकेक्षण, आन्तरिक रोकथाम,वैधानिक अंकेक्षण आदि को भी नियंत्रण कार्य के लिये प्रयोग में लाया जहाता है। उत्तरदायित्व लेखांकन को भी नियंत्रण का एक प्रभावी अंक माना जाता है। इसके अन्तर्गत सूचनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे सम्बन्धित अधिकारी को उसके कार्य के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सके।

१२- अंकेक्षण-

अंकेक्षण का कार्य त्रुटियों तथा कपटों का पता लगाना होता है इसके साथ ही सम्पत्तियों एवं दायित्वों की जांच तथा सत्यापन करना है। अंकेक्षण के अन्तर्गत वित्तीय अंकेक्षण, लागत अंकेक्षण,प्रबन्ध अंकेक्षण,आन्तिरक अंकेक्षण तथा कर अंकेक्षण को सम्मिलत किया जा सकता है । लागत अंकेक्षण का उद्देश्य लागत लेखों की शुद्धता की जांच करना होता है और प्रबन्ध अंकेक्षण का उद्देश्य प्रबन्धकीय कार्यकुशता को बढ़ाना। इस प्रकार प्रबंध अंकेक्षण तथा प्रबन्ध लेखांकन का समान उद्देश्य होता है।

१३- वित्तीय प्रतिवेदन का संवहन-

इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की आवश्यक सूचनाओं को प्रबन्ध के समक्ष समय-समय पर प्रस्तुत किया जाता है। इसी के आधार पर प्रबन्ध को नीति निर्धारण तथा निर्णय कार्य को सम्पन्न करने में मदद मिलती है। इस कार्य में प्रतिवेदनों, विवरणों, तालिकाओं,ग्राफों, चित्रों का प्रयोग किया जाता है।

१४- क्रियात्मक अनुसंधान तथा सांख्यिकीय विधियां -

प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं के निदान हेतु पिछले कुछ बर्षो से गणित का उपयोग वढ़ रहा है। इससे निर्णय अधिक विश्वसनीय लिये जाते हैं। क्रियात्मक अनुसंधान गणित की उन प्रबिधियों का सामूहिक नाम है जो प्रबन्धकीय निर्णय में महत्वपूर्ण उपकरण का कार्य करते हैं । इसके अन्तर्गत सरलतम तथा तटिलतम प्रविधियों का उपयोग किया जाता हैं। प्रायिकता सिद्धान्त, प्रतिचयन सिद्धान्त,रेखीय प्रक्रयन, क्रीड़ा सिद्धान्त,पंक्ति सिद्धान्त आदि इस क्षेत्र की प्रमुख प्रविधियां हैं ।

१५- निधि प्रवाह विश्लेषण -

दो विभिन्न तिथियों के बीच वित्तीय स्थिति के परिवर्तन का अध्ययन करने की दृष्टि से निधि प्रवाह विश्लेषण एक महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय उपकरण है ।इससे यह मालूम हो जाता है कि अतिरिक्त निधि की प्राप्ति किन किन स्रोतों से हुई तथा उनका उपयोग कहां-कहां हुआ है । वित्तीय विश्लेषण तुलनात्मक अध्ययन तथा भावी नियंत्रण के लिये यह तकनीक आवश्यक पद-प्रदर्शन करती हैं ।

१६- पूंजी विनियोगों पर प्रत्याय-

व्यावसायिक संस्था में नियोजित पूंजी की लाभदायकता के निर्धारण के लिये इस तकनीक का प्रयोग किया जाता है । विभिन्न परियोजनाओं पर किये जाने वाले पूंजी व्ययों को आर्थिक सुदृढता के निर्धारण के लिये भी इसका उपयोग होता है ।

१७- सांख्यिकीय चार्ट तथा तकनीक -

प्रबन्धकीय लेखांकन के अन्तर्गत कई सांख्यिकीय चार्ट एवं ग्राफों का भी प्रयोग किया जाता है । इनके प्रयोग से एक दृष्टि में मौटे तौर पर समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है । विक्रय-लाभ चार्ट, विनियोग चार्ट,रेखीय कार्यक्रम, प्रतीपगमन रेखायें,सांख्यिकीय गुण नियंत्रण इत्यादि इसी प्रकार की तकनीकें हैं ।

प्रबन्ध लेखांकन का विकास प्रबन्ध को उसके कार्यो में सहयोग प्रदान करने के लिये हुआ है । इसमें वित्तीय लेखांकन से प्राप्त सूचनाओं को प्रबन्ध की आवश्यकतानुसार विश्लेष्त तथा निर्वाचित करके उसके सम्मुख रखा जाता है । जिससे प्रबन्ध नीति निर्धारण, नियोजन, निर्णयन तथा नियंत्रण का कार्य उचित ढंग से कुशलतापूर्वक कर सके । इसके कार्यो का विस्तृत विवेचन अगले शीर्षक में किया गया है ।

प्रबन्धकीय लेखांकन के कार्य एवं सीमायें -

प्रबन्धकीय लेखांकन के कार्यो को दो वर्गो में रखा जा सकता है-

(अ) प्रबन्ध के प्रयोग हेतु आवश्यक तथ्यों एवं सूचनाओं को संस्थात्मक रुप में प्रस्तुत करना - इनको संचालनात्मक कार्य भी कहते है । इसके अन्तर्गत जो कार्य आते है वे इस प्रकार है-

१- समंकों का अभिलेखन -

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था में प्रतिदिन उत्पादन बिक्रय अनुसंधान ,वित्त ,श्रम इत्यादि क्रियाओं के लिये अनेक लेनदेन होते रहते हैं। प्रबन्धकीय लेखांकन के अर्न्तगत इस प्रकार के लेनदेनों से सम्बिन्धत आधारभूत समंकों को इस प्रकार अभिलिखित किया जाता है कि वे प्रबन्धक के अपने कार्य के निष्पादन में सहायक हो सकें। यदि किन्हीं परिस्थितियों में किसी घटना से सम्बिन्धत मूल समंक उपलब्ध न हो तो इन्हें अनुमान के आधार पर मान कर दर्ज किया जाता है। इन समंकों को इस प्रकार लिखा जाता है जिससे प्रबन्धकों को समय-समय पर नवीनतम सूचना उपलब्ध होती रहे । इस कार्य को सम्पादित करने के लिये अनेक आधुनिकतम यंत्रों का सहयोग लिया जाता है।

२- समंकों की वैधता निशिचत करना-

प्रबंधकीय लेखांकन के द्वारा आंकड़ों की सत्यता तथा वैधता का भी परीक्षण किया जाता है। प्रबन्धकों की नीतियां निर्धारित करने के लिये भूतकालीन अनुभवों तथा वर्तमान परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना होता है । इनके साथ ही पूर्वानुमान आदि के लिये भावी समंकों की आवश्यकता पड़ती है। इन समंकों के आधार पर प्रबन्ध कोई भी निर्णय लेने से पहले इनकी वैधता के बारे में आश्वस्त होना चाहता है। इसका कारण यह है कि पूर्वानुमानित एवं वास्तविक समंकों में कुछ न कुछ अन्तर आ जाता है। प्रबन्ध लेखांकन द्वारा इन समंकों की सत्यता की जांच या परीक्षण किया जाता है। इसके लिये सांख्यिकी की विधियों जैसे प्रितचयन सिद्धान्त,प्रमाप विभ्रम आदि के द्वारा एक निशिचत विश्वास स्तर पर प्रबन्ध लेखापाल यह निशिचत कर लेता है कि प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत किये जाने वाले समंक कितने शुद्ध हैं।

३- समंको का विश्लेषण एवं व्याख्या-

समंकों का अभिलेखन करने तथा उनकी वैधता की जांच करने के बाद इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि समंकों का विश्लेषण एवं उनकी व्याख्या की जाये। समंक जिस मूल रुप में वित्तीय लेखांकन एवं लागत लेखांकन से प्राप्त होते हैं, उनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। प्रबन्धक उन समंकों से तब ही निष्कर्ष निकाल सकते हैं जबकि उन्हें सरल एवं संक्षिप्त रुप में

उनके समक्ष रखा जाये । प्रबन्ध लेखापाल लागत एवं वित्तीय लेखांकन से प्राप्त समंकों का विश्लेषण एवं व्याख्या करके उचित रुप में प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत करता है

४- संख्यात्मक रुप में सूचनाओं का संवहन-

समंक तब ही लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं जबकि उन्हें उचित समय पर उचित व्यक्ति को पहुंचा दिया जाये। प्रबन्धकीय लेखांकन द्वारा इन समंकों को सम्बन्धित व्यक्तियों के पास उचित समय पर पहुंचाने का कार्य किया जाता है। प्रबन्धकों को सूचित करने का कार्य प्रतिवेदनों के माध्यम से किया जाता है। इन प्रतिवेदनों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-(क) नियमित प्रतिवेदन (ख) विशेष प्रतिवेदन। इस कार्य को सम्पन्न करने में विभिन्न ग्राफों,चारों, तालिकाओं,प्रतिशतों आदि का प्रयोग किया जाता है।

(ब) प्रबन्धकीय क्रियाओं के सम्पादन में योग देना - प्रबंध लेखांकन का मुख्य कार्य प्रबंध की सहायता करना है जिससे वह अपने दायित्व को पूरा कर सके। प्रबन्ध लेखांकन उपरोक्त सूचनाओं से प्रबंध की निम्न प्रकार सहायता करता है-

(१) नियोजन में सहायता करना-

उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर भावी परिस्थितियों का अनुमान लगाकर योजना बनाने का कार्य प्रबन्ध लेखांकन करता है। प्रबन्धकों को सम्पूर्ण संस्था अथवा उसके विभागों के कार्यों की योजना बनानी होती है। इस कार्य में प्रबन्धकीय लेखांकन द्वारा उत्पादन,रोकड़,विक्रय इत्यादि तथ्यों के पिछले वर्षों के तुलनात्मक समंक तथा भविष्य के लिये पूर्वानुमान प्रस्तुत किये जाते हैं ये समंक उचित नीतियां निर्धारित करने व योजना बनाने में मदद करते हैं । विभिन्न विकल्पों के बीच सर्वाधिक लाभप्रद विकल्प को चुनने में प्रबन्ध लेखापाल प्रबन्धक की सहायता करता है। वह विभिन्न योजनाओं के विकल्पों की लागत, विनियोजन , लाभ, मूल्य आय इत्यादि को तुलनात्मक रुप में प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करता है, इसी के आधार पर ही प्रबन्ध नियोजन कर सकने में सफल होता है।

(२) संगठन में सहायता करना-

योजना के कार्यान्वयन हेतु विभिन्न व्यक्तियों के बीच दायित्वों का बंटबारा और अधिकार रेखांकन- ये दोनों कार्य संगठन के अन्तर्गत शामिल किये जाते हैं। प्रबन्धकीय लेखांकन की विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय दर की तकनीक द्वारा किसी विभाग अथवा सम्पूर्ण संगठन की श्रेष्ठता की माप की जा सकती है। इसके साथ ही प्रबन्ध लेखांकन में बजट प्रणाली ,लागत केन्द्रों एवं उत्तरदायित्वों का निर्धारण, लागत नियंत्रण इत्यादि पर अधिक बल दिया जाता है जिससे संगठन संरचना में सुधार करना संभव हो जाता है। इसके अलावा प्रमाप लागत विधि, आंतरिक लेखा परीक्षण एवं व्यवस्था पद्धति से भी प्रत्येक विभाग की क्षमता को बढाने में मदद मिलती है। प्रबंधकीय लेखांकन में विधियों तथा कार्य प्रणालियों की निरंतर जांच होने से संस्था में कार्यरत कर्मचारी तथा अधिकारी सचेत बने रहते हैं।

(३) नियंत्रण में सहायता करना-

इसके अन्तर्गत व्यवसायिक परिणामों की लगातार जांच होती रहती है जिसके द्वारा यह विश्वास प्राप्त किया जाता है कि जो परिणाम प्राप्त हुये हैं वे योजना के अनुसार ही हैं। यदि इन दोनों में कोई अन्तर होता है तो सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। प्रबन्ध के अन्तर्गत इस क्रिया पर अधिक जोर दिया जाता है क्योंकि नियंत्रण के द्वारा ही अधिकतम लाभ सम्भव होता है। प्रबन्धकीय लेखांकन में क्रियाओं तथा लागतों के नियंत्रण पर विशेष जोर दिया जाता है। प्रमाप लागत विधि द्वारा लागत की नियंत्रण तथा बजट द्वारा कार्यात्मक तथा विभागीय नियंत्रण किया जाता है। सामग्री, श्रम तथा अन्य अप्रत्यक्ष व्ययों के नियंत्रण के लिये अनेक रीतियों को काम में लाया जाता है। नीतियों, योजनाओं तथा प्रबन्ध की प्रभावशीलता का माप लाभ- हानि खाते तथा चिट्ठे के निर्वचन से सम्भव होता है। इन व्यवस्थाओं से उद्यम से सम्बन्धित पक्षकार लाभान्वित होते हैं।

(४) सम्प्रेषण में सहायता करना-

सम्प्रेषण के अन्तर्गत संस्था के भीतर तथा बाहर जैसे ग्राहकों, बैंको, पूर्तिकर्ताओं, सरकारी अधिकारियों इत्यादि के बीच। सूचनाओं तथा निर्देशो का आदान- प्रदान करना शामिल है। प्रबन्धकीय लेखांकन इस क्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। संस्था के कर्मचारियों को सूचनाओं का आदान- प्रदान, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक, छमाही विवरणों तथा प्रतिवेदनों द्वारा किया

जाता है। इन विवरणों तथा प्रतिवेदनों को अधिक विश्लेषणात्मक बनाने के लिये लागत लेखों की सहायता ली जाती है। संस्था के बारे में बाहरी व्यक्तियों को वार्षिक खातों, वार्षिक प्रतिवेदनों द्वारा संस्था के परिणामों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। इस कार्य को निष्पादित करने में प्रबन्धकीय लेखांकन का योगदान रहता है। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि प्रबन्ध लेखांकन द्वारा सम्प्रेषण क्रिया के निष्पादन के लिऐ आवश्यक साधन उपलब्ध कराये जाते हैं।

(५) निर्णयन से सहायता करना-

उच्चस्तरीय प्रबन्ध का मुख्य कार्य निर्णय लेना है। निर्णयन से आशय विभिन्न वैकल्पिक कार्यों में से किसी ऐसे एक का चुनाव करना होता है जिसमें लाभ अधिकतम हो। निर्णयन में बुद्धि, अनुभव व विवेक का विशेष महत्व होता है, लेकिन फिर भी प्रबन्धकीय लेखांकन प्रबन्ध के समक्ष विभिन्न वैकल्पिक योजनाओं के लिये लागत, मूल्य, लाभ, आय आदि तथ्यों के सम्बन्ध में तुलनात्मक समंक प्रस्तुत करता है। जिनके आधार पर सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता है। इस कार्य को सम्पादित करने में सीमांत लागत लेखांकन, सम- विच्छेद बिन्दु विश्लेषण, लागत-लाभ मात्रा विश्लेषण तथा पूंजी परियोजना विश्लेषण आदि तकनीकों को प्रयोग में लाया जाता है।

(६) समन्वय में सहायता करना-

समन्वय का तात्पर्य सभी क्रियाओं में एकनिष्ठता एकसुजता तथा सहयोग स्थापित करने से है। प्रबन्धकीय लेखांकन व्यवसाय के विभिन्न विभागों, व्यक्तियों एवं क्रियाओं में समन्वय का कार्य करता है। समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से बजट प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये उत्पादन बजट विक्रय बजट को ही ध्यान में रखकर बनाया जाता है, इसी प्रकार क्रय बजट वित्त एवं रोक बजट को ही ध्यान में रखकर बनाया जाता ह। व्यवसायिक क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से समय- समय पर प्रबन्धकीय लेखापाल प्रबन्धकों को अपने प्रतिवेदन एवं सुझाव देता रहता है।

(७) अभिप्रेरण में सहायता करना-

किसी भी संस्था में नियंत्रण की कार्यवाही को प्रभावी बनाने के लिये अभिप्रेरण अनिवार्य तत्व होता है। प्रबन्धक जो भी योजनायें बनाते हैं। उन पर नियंत्रण अनिवार्य होता है। नियंत्रण के लिये प्रबन्धक यह देखते रहते हैं कि कार्यों का संचालन पूर्व निर्धारित योजनाआनुसार सम्पन्न हो रहा

है या नहीं। यदि कार्य में संतोषजनक प्रगति नहीं होती है तो प्रबन्धक कर्मचारियों को प्रोत्साहित करते रहते हैं। जिससे कार्य संचालन की प्रगति संतोषजनक रखी जा सके। प्रबन्धकीय लेखांकन प्रबन्धकों की समय- समय पर विभिन्न लेखांकन सूचनायें देता रहता है जिसके आधार पर, कार्य में संतोषजनक प्रगति लाने के लिये, कर्मचारियों को अभिप्रेरित करते रहते हैं।

(८) कर प्रशासन में सहायता करना-

वर्तमान समय में व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण तथा कानूनी आवश्यकतायें अत्याधिक हो गई हैं। सभी व्यवसायें के लिये कानूनी तथा कर सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करना अनिवार्य हो गया है। प्रबन्धकीय लेखांकन के द्वारा इन आवश्यकताओं को सरलता से पूरा किया जा सकता है। इसके लिये लेखा प्रतिवेदनों तथा अन्य विवरण पत्रों को इस प्रकार तैयार किया जाता है जिससे सभी आवश्यक सूचनायें आसानी से उपलब्ध हो जायें।

प्रबन्ध लेखांकन के कार्यो के अध्ययन हम यह कह सकते हैं कि यह प्रबन्ध के लिये यह वरदान है। लेकिन इसके बावजूद भी इसकी कुछ सीमायें हैं। प्रबन्ध लेखांकन का प्रयोग करते समय इन सीमाओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है, तब ही इसके लाभ प्राप्त हो सकते हैं। इसकी प्रमुख सीमायें अग्रांकित हैं।-

(१) वित्तीय लेखों पर आधारित-

प्रबन्धकीय लेखांकन की जो भी सूचनायें मिलती हैं वे सब वित्तीय तथा लागत लेखांकन के द्वारा एकत्रित की जाती है अर्थात उन सभी सूचनाओं का आधार वित्तीय लेखांकन है। प्रबन्धकीय निर्णयों की शुद्धता बहुत कुछ सीमा तक इन्हीं लेखों तथा प्रतिवेदनों पर आधारित होती हैं।

(२) अधिकांश भूतकालिक सूचनायें-

वित्तीय लेखांकन से जो सूचनायें प्रबन्धकीय लेखांकन को प्राप्त होती हैं वे अधिकांश भूतकालिक होती है। जब किसी योजना के सम्बन्ध में इन सूचनाओं के आधार पर कोई पूर्वानुमान किया जाता है तब तक परिस्थितियों में परिवर्तन आ जाता है।अत: परिवर्तित परिस्थितियों में इनके द्वारा निकाले गये निष्कर्ष में पूर्वानुमान भावी नियोजन तथा निर्णयन के सुदृढ़ आधार नहीं होते ऐसी स्थिति में पूर्वानुमानित मूल्य व वास्विक मूल्यों का अन्तर प्रबन्धकीय लेखांकन के महत्व को कम कर देता है।

(३) प्रशासन का विकल्प नही -

प्रबन्धकीय लेखांकन प्रशासन का विकल्प न हो कर यह मात्र प्रशासन का एक यन्त्र है । जो भी निर्णय लिये जाते है वे सब प्रबन्धकों द्वारा लिये जाते है प्रबन्धकीय लेखापालों द्वारा नहीं । प्रबन्धकीय लेखापाल तो प्रबन्धकों को आवश्यक सूचनायें उपलब्ध कराता है । यह प्रबन्धक का अधिकार है कि उस सूचना को माने या नहीं । इसप्रकार प्रबन्धकीय लेखांकन प्रबन्ध की सहायतार्थ एक यंत्र मात्र है जो विभिन्न निर्णयों हेतु सूचनायें उपलब्ध कराता है ।

(४) निरंतरता की आवश्यकता -

प्रबंधकीय लेखापाल द्वारा जो भी निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं वे तब तक सफल नही हो सकते जब तक कि प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न न किये जायें निरंतर प्रयास तथा विभिन्न कार्यक्रमों व योजनाओं में समन्वय के आधार पर ही प्रबन्धकीय लेखांकन सफल हो सकता है ।

(५) सम्बन्धित विषयों के ज्ञान का अभाव -

प्रबन्धकीय लेखांकन का सम्बन्ध अन्य विज्ञानों जैसे अर्थशास्त्र, सांख्यिकी, प्रबन्ध सिद्धांत, आंकिक अर्थशास्त्र तथा अभियांत्रिक आदि से है। इसका प्रार्दुभाव भी इन विषयों के विकास के कारण हुआ है। अत: प्रबन्धकीय लेखांकन का अधिकतम लाभ तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि प्रबन्धकीय लेखापाल को इन सभी विषयों का पर्याप्त ज्ञान हो। परन्तु आज के इस विशिष्टीकरण के युग में एक व्यक्ति को इतने अधिक विषयों का ज्ञान होना असंभव सा प्रतीत होता है।

(६) भारी संरचना की तुलना में कम उपलब्धियां -

अनेक विद्वान यह मानते हैं कि प्रबन्धकीय लेखांकन की व्यवस्था के लिये भारी प्रबन्धकीय संरचना की जाती है। इसके व्यापक संगठन तथा नियम व्यवस्थाओं आदि में जो व्यय किया जाता है उससे प्राप्त होने वाले लाभ अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। अत: प्रबन्धकीय लेखांकन से जो उपलब्धियां होती है वे अपेक्षाकृत बहुत कम होती है।

(७) अन्तर्ज्ञानीय निर्णयन की ओर झुकाव -

प्रबन्धकीय लेखांकन की तकनीकों तथा उपकरणों को प्रयोग में लाकर प्रबन्धक जो निर्णय लेना चाहते हैं तब अपनी वैज्ञानिकता के कारण ये तकनीकें प्रबन्धक को काफी कठिन मालूम होती है जबकि अपने अन्तर्ज्ञान से किये जाने वाले निर्णय उन्हें सरल लगते हैं। इस प्रकार प्रबन्धकों का झुकाव वैज्ञानिक तकनीकों में अन्तर्ज्ञानी आधार पर निर्णयन की ओर अधिक हो जाता है।

(८) विषय परकता का अभाव -

प्रबन्धकीय लेखांकन द्वारा जो सूचनायें प्रबन्ध को प्रस्तुत की जाती हैं, वे व्यक्तिगत निर्णय से प्रभावित होती हैं। जो व्यक्ति सूचना प्रदान करता है या सूचनाओं का विश्लेषण तथा निर्वचन करता है, उसके विचार, भावना व चरित्र इत्यादि का प्रभाव इन सूचनाओं पर पड़े बिना नही रह सकता है। ऐसी स्थिति में पक्षपात होने तथा हेरा-फेरी होने की सम्भावनायें बढ़ जाती हैं। इसलिये प्रबन्धकीय लेखांकन की सफलता प्रबन्ध लेखापाल की सूझ-बूझ, उसके ज्ञान, सहयोग लेने की शक्ति इत्यादि से प्रभावित होती है।

(९) विकासशील अवस्था -

प्रबन्धकीय लेखांकन की तकनीकें अभी भी विकासशील अवस्था में है। इसकी तकनीकों में समय-समय पर बहुत अधिक तथा जल्दी जल्दी परिवर्तन होते रहते हैं। इसीलिये प्रबन्धकीय लेखांकन की तकनीकों को अपनाने में अभी भी अनिश्चिततायें रहती हैं।

(१०) खर्चीली पद्धति -

प्रबन्धकीय लेखांकन के लिये किसी व्यावसायिक संस्था में एक विस्तृत संगठन तथा बड़ी संख्या में नियमों एवं व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है। इसीलिये सारा कार्य बहुत खर्चीला हो जाता है। अत: यह व्यवस्था बड़े व्यवसायों के लिये ही उपयुक्त रहती है।

(११) विस्तृत क्षेत्र -

प्रबन्धकीय लेखांकन के उद्देश्यों की महत्वाकांक्षी प्रवृत्ति तथा विषय सामग्री का अति विस्तृत क्षेत्र होने के कारण इसके क्रियान्वयन में अनेक कठिनाईयां आती है। इसके अन्तर्गत एक तरफ तो ऐतिहासिक घटनाओं का मुद्रा के रुप में अभिलेखन एवं निवर्चन करना होता है तथा दूसरी तरफ भावी अवसरों तथा अप्रत्याशित परिस्थितियों के पूर्वानुमान, व्याख्या तथा मूल्यांकन का कार्य करना होता है, जो कि अधिक कठिन होता है।

(१२) मनोवैज्ञानिक विरोध -

प्रबन्धकीय लेखांकन पद्धति को व्यवसाय में अपनाने से संस्था में प्रबन्धकों की सुस्थापित व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन आते है। प्रबन्धकों की कार्य प्रणाली, वैचारिक स्वतंत्रता इत्यादि में भी परिवर्तन होता है और इन्हें एक नई पद्धति से कार्य करने के लिये विवश होना पड़ता है। इसीलिये शुरु में स्वयं प्रबन्धकों द्वारा इसका विरोध किया जाता है।

चतुर्थ अध्याय

पूंजी संरचना एवं वित्तीय योजना

१. आशय एवं आवश्यकता

२. प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की वित्तीय योजना एवं पूंजीकरण

३. प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की पूंजी संरचना एवं पूंजी स्त्रोतों का विश्लेषण

पूंजी संरचना एवं वित्तीय योजना

पूंजी आधुनिक उद्योग का जीवन रक्त है । कोई भी व्यवसाय चोह वह छोटा हो अथवा बड़ा, उस समय तक सफल नही हो सकता जब तक कि उसके पास पर्याप्त मात्रा में पूंजी का प्रबन्ध न हो । पूंजी ऐसा शक्तिशाली साधन है जो उद्योग को गतिशील रखता है, उत्पादों का विकास करता है तथा मनुष्यों व मशीनों को कार्यरत रखता है । कोई भी व्यवसाय शुरु करने का विचार मन में आने की स्थिति से लेकर उसके प्रवर्तन, संचालन, विस्तार तथा उसके समापन तक सभी परिस्थितियों में पूंजी की आवश्यकता होती है । उचित समय पर पर्याप्त मात्रा में वित्त की व्यवस्था न होने पर बड़ी से बड़ी एवं अच्छी से अच्छी योजनायें भी असफल हो जाती है । इसीलिये संस्था की स्थापना करते समय समुचित वित्त प्रबन्ध के लिये वित्तीय आयोजन करना अत्यन्त आवश्यक होता है । किसी भी संस्था की भावी सफलता एवं असफलता वित्तीय आयोजन की सुदृढ़ता पर ही निर्भर करती है । यदि वित्तीय आयोजन पर्याप्त ज्ञान, अनुभव तथा दूरदर्शिता के आधार पर किया गया है । तो यह संस्था भविष्य के लिये वरदान साबित हो सकती है । यदि वित्तीय आयोजन अदूरदशिता, अपरिपक्य ज्ञान एवं अनुभवहीनता के आधार पर किया गया है । तो यह संस्था के भविष्य के लिये खतरा बन जाती है । इसीलिये यह आवश्यक है कि संस्था के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सोच विचार कर सही प्रकार से वित्तीय आयोजन किया जाये ।

१. आशय एवं आवश्यकता -

वित्तीय योजना का आशय किसी संस्था के लिये आवश्यक पूंजी की कुल राशि का पूर्वानुमान लगाना तथा उसके स्वरुप के सम्बन्ध में निर्णय लेने की प्रक्रिया से है । वित्तीय योजना एक बृहद शब्द है जिसके अर्न्तगत व्यवसाय की समस्त वित्तीय बातों का समावेश हो जाता है। सामान्यतया वित्तीय योजना में निहित समस्त बातों को निम्न तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

अ. पूंजीकरण -

अर्थात व्यवसाय के सुसंचालन के लिये आवश्यक पूंजी की मात्रा का अनुमान ।

ब. पूंजी संरचना -

अर्थात व्यवसाय में पूंजी का स्वरुप निर्धारण, अंश पूंजी, ऋण पूंजी का पारस्परिक अनुपात निर्धारण।

स. पूंजी का प्रशासन -

अर्थात पूंजी का उचित प्रबन्ध एवं प्रशासन करना तथा पूंजी सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण।

"गस्टेन वर्ग के अनुसार - "वित्तीय योजना का तात्पर्य किसी भी नई प्रवर्तित किये जा रहे व्यवसाय के प्रारंभिक सम्पत्ति-संगठन, वैधानिक संचालन, व्ययों, स्थायी और कार्यशील पूंजी की व्यवस्था, वर्तमान काल में आवश्यक पूंजी का उचित अनुमान लगाकर उसकी व्यवस्था करने तथा उसको प्राप्त करने के यथा सम्भव स्त्रोतों के सही विश्लेषण से है"।

वॉकर एवं बॉन के अनुसार - "वित्तीय आयोजन वित् कार्य से सम्बन्धित है जिसमें फर्म के वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों का निर्माण तथा वित्तीय प्रबिधियों का विकास सम्मिलित है।"

वित्तीय आयोजन एक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण वित्तीय प्रक्रिया है इसके दीर्घकालीन, मध्यकालीन तथा अल्पकालीन वित्तीय योजना के सभी पहलू उपक्रम की लाभोत्पादकता, उर्पाजन क्षमता तथा शोधन क्षमता को प्रभावित करते हैं। **जै. बेटी के शब्दों में,** "व्यवसाय में नकदी का पर्याप्त कोष तथा अनवरत प्रवाह अति आवश्यक है। हर समय व्यवसायिक फर्म को अपने दायित्वों का भुगतान करने में समर्थ होना चाहिये। चाहे विस्तार की स्थिति हो, प्रतिस्पर्धा का वातावरण हो नये उत्पादन का प्रश्न हो अथवा आधुनिकीकरण का प्रश्न हो, फर्म को वित्त की आवश्यकता रहती है और पर्याप्त वित्त की समयानुकूल व्यवस्था करने के लिये वित्तीय आयोजन आवश्यक है।" संक्षिप्त में वित्तीय योजना की आवश्यकता अंग्राकित विन्दुओं से स्पष्ट की जा सकती है-

१. पूंजी की सुरक्षा -

पर्याप्त वित्तीय आयोजन से संस्था को अपनी पूंजी की सुरक्षा करने में बहुत सहायता मिलती है। आधुनिक समय में मशीन तथा अन्य उत्पादन संयत्र नये अविष्कारों के कारण बहुत ही

जल्दी कालातीत हो जाते हैं । सम्पत्तियों का बहुत बड़ा भाग निकट भविष्य में ही बेकार हो जाता है । अत: उनमें विनियोजित पूंजी का अधिकतम लाभ उठाने के लिये यह अत्यंत आवश्यक होता है कि पूर्व नियोजिन किया जाये ।

२. संचालन क्रियाओं में मितव्ययता तथा समन्वय -

वित्तीय योजना का एक मुख्य लाभ है जटिल संचालन क्रियाओं में मितव्ययता लाना और अपव्यय दूर करना । नवीनतम तकनीकी अविष्कार, कर की उंची दरें,ब्याज दरों में वृद्वि और गला काट प्रतिस्पर्धा इत्यादि बातें संस्था के प्रबन्धकों को इस बात के लिये विवश करती है कि वे व्यवसाय को विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करें और यह सब कुछ वित्तीय योजना के माध्यम से ही सम्भव होता है ।

३. मूल्य स्तर में परिवर्तन -

एक व्यवसायिक संस्था गतिशील आर्थिक वातावरण में कार्य करती है जिसमें मूल्य स्तर में तेजी से वृद्वि हो रही है । ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही है कि सम्पत्तियों की प्रतिस्थापन लागत उनकी मूल लागत से काफी अधिक हो । अत: प्रबन्धकों को भविष्य के लिये मशीनों की सुरक्षा का प्रश्न ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि उनका बढ़े हुए मूल्य पर प्रतिस्थापन भी महत्वपूर्ण है । इसके लिये जिस अतिरिक्त वित्त की आवश्यकता होती है, वह उचित वित्तीय नियोजन करके ही उपलब्ध किया जा सकता है ।

४. संस्था की सफलता -

व्यवसायिक संस्था में सम्पन्न किया जाने वाला कार्य उत्पादन तथा वितरण आदि सभी उपक्रियाओं की सफलता या असफलता को प्रभावित करता है । इसीलिये यह आवश्यक है कि हर वित्तीय क्रिया को सुव्यवस्थित तरीके से नियोजित किया जाये ।

५. सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार -

भारत में निजी क्षेत्र के व्यावसायिक संगठनों के लिये तो वित्तीय योजना का महत्व सार्वजनिक क्षेत्र के तीव्र विस्तार के कारण और अधिक बढ़ गया है । इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थान भी निजी संस्थान की तरह ही वित्तीय संस्थाओं तथा बैकों

से वित्तीय सहायता प्राप्त करने लगे हैं। इसीलिये पहले की तरह निजी क्षेत्र के उद्योगों को सरलता पूर्वक आर्थिक सहायता नही मिलती है। अव उन्हें सार्वजनिक क्षत्र के उपक्रमों से इस बारे में प्रतिस्पर्धा करनी होती है। ऐसी स्थिति में अपने वित्तीय आयोजन को अधिक से अधिक सार्थक बनाने की आवश्यकता है जिससे वे पहले से ही अपनी वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगा सके और उचित ब्याज दर पर तथा पर्याप्त मात्रा में आवश्यकतानुसार वित्त प्राप्त कर सकें।

जब किसी व्यवसायिक संस्था के लिये आवश्यक वित्त की मात्रा निर्धारित कर ली जाती है तो उसके स्त्रोतों पर भी विचार करना आवश्यक होता है। वित्तीय निर्णय लेना प्रबन्धकों का एक महत्वपूर्ण निर्णय है। यह वित्तीय निर्णय ही पूंजी संरचना को निश्चित करता है। कई बार पूंजी संरचना तथा पूंजीकरण को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। लेकिन इन दोनों में मौलिक रुप से पर्याप्त अन्तर है। पूंजीकरण के अर्न्तगत पूंजी की कुल मात्रा का निर्धारण किया जाता है, जबकि पूंजी संरचना में पूंजीकरण के बाद की क्रिया आती है। इसमें विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों, जैसे समता अंश, पूर्वाधिकार अंश, ऋण पत्र इत्यादि के परस्पर अनुपात को निर्धारित किया जाता है। **गस्टेनवर्ग के अनुसार** "वस्तुत: पूंजीकरण का तात्पर्य पूंजी की मात्रा को निश्चित करने तथा पूंजी संरचना का आशय पूंजी के स्वरुप या प्रकार को निश्चित करने से है।"[१]

पूंजी संरचना के अर्न्तगत यह निश्चित किया जाता है कि कुल पूंजी का कितना भाग ऋणपत्रों के रुप में हो, कितना भाग समता अंशों के रुप में तथा कितना भाग पूर्वाधिकार अंशों के रुप में हो। जहां एक तरह पूर्वाधिकार अंशों पर एक निश्चित दर से लाभांश देना ही होता है वहीं दूसरी ओर समता अंशों पर लाभांश देना हमेशा आवश्यक नहीं होता। इस प्रकार पूर्वाधिकार अंश तथा समता अंश के बीच उचित अनुपात एवं समन्वय की आवश्यकता होती है जिससे पूंजी संरचना को सुदृढ़ बनाये रखा जा सके। व्यवसायिक संस्था द्वारा कई बार ऋणपत्रों के द्वारा भी पूंजी संरचना में आवश्यकतानुसार लोच तथा समन्वय लाने का कार्य किया जाता है। किसी व्यावसायिक संस्था को अधिक संतुलित एवं अनुकूलतम पूंजी संरचना की आवश्यकता अग्रांकित कारणों से होती है-

१. पूंजी लागत को कम रखने के लिये -

पूंजी लागत से आशय ऋणपत्रों पर ब्याज तथा अंशों पर दिये जाने वाले लाभांश दर से होता है। जब कोई संस्था अपने पूंजी ढांचे की संरचना करती है और पूंजी एकत्रित करती है तो

---

(1) प्रबन्धकीय लेखांकन अनुसार - जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल पृ0क्र0-59

उसका मुख्य उददेश्य यही होता है कि उसकी पूंजी लागत कम से कम रहे। ऐसी स्थिति में प्रबन्धकों को चाहिये कि वे विभिन्न पूंजी ढांचों का लागत की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करें तथा इसके बाद ही न्यूनतम लागत वाले पूंजी ढांचे का चयन करें।

२. जोखिम को कम करने के लिये -

व्यावसायिक क्रियाओं में अनेक प्रकार की जोखिम रहती हैं, जैसे व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा की जोखिम, व्यापार चक्र, क्रय शक्ति में कमी, करों की दर में वृद्धि,ब्याज की दर में वृद्धि, प्राकृतिक प्रकोप, अंशों के मूल्य में होने वाले उच्चावचन इत्यादि। ये सभी बातें कम्पनी के पूंजी ढांचे को प्रभावित करती हैं। अत: प्रबन्धकों को पूंजी ढांचे की संरचना करते समय इन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

३- समता अंश पूंजी पर प्रत्याय में वृद्धि के लिये -

समता अंशधारी ही कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं तथा वे ही विनियोग की वास्तविक जोखिम भी सहन करते हैं। इसीलिये उनके हितों की रक्षा करना प्रबन्ध का महत्वपूर्ण कर्तव्य होता है। यह तभी सम्भव होता है जबकि कम्पनी को नियमित रुप ये निश्चित एवं समुचित आय हो। तभी प्रबन्धक ऋण पूंजी पर निश्चित दर से ब्याज, पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश देने के बाद समता अंशधारियों को समुचित लाभांश वितरित कर सकते हैं।

४. अधिकतम नियंत्रण के लिये -

पूंजी ढांचा इस प्रकार बनाया जाना चाहिये कि संस्था का प्रबन्ध एवं नियंत्रण समता अंशधारियों के हाथों में सुरक्षित रहे। यह उसी स्थिति में सम्भव है जबकि मताधिकार रहित पूंजी तथा मताधिकारयुक्त पूंजी का अनुपात ठीक हो।

५. लचीलापन लाने के लिये -

पूंजी ढांचे को बनाते समय प्रबन्धक यह ध्यान रखते हैं कि उसमें आवश्यक लोच बनी रहे जिससे आवश्यकता पड़ने पर कम से कम समय में, कम असुविधा के साथ, कम परिवर्तन करके दोहराया जा सके एवं परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जा सके।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की वित्तीय योजना एवं पूंजीकरण -

१. ग्वालियर रेयान -

ग्वालियर रेयान औद्योगिक इकाईयों में पिछले तीन वर्षो अर्थात १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः १०२९ करोड़ रुप, १२०६.०१ करोड़ रु० तथा १४६५.२४ करोड़ रु० की पूंजी विनियोजित रही है। प्रथम वर्ष की तुलना में दूसरे वर्ष में १७.१९ प्रतिशत अधिक तथा द्वितीय वर्ष की तुलना में तीसरे वर्ष में २१.४९ प्रतिशत अधिक पूंजी लगी रही है। यदि प्रथम वर्ष से तीसरे वर्ष की तुलना करते हैं तो यह ४२.३८ प्रतिशत अधिक है यदि हम पूंजी वृद्धि की तुलना संस्था की बिक्री से करते हैं तो यह प्रथम वर्ष की तुलना में तीसरे वर्ष ५२.१२% अधिक रही है। इसी प्रकार हम लाभों की तुलना करते हैं तो इसी अवधि के लाभ कर, ब्याज तथा मूल्यह्वास घटाने के बाद ११४.७६ प्रतिशत अधिक रहे हैं। यह पूंजी वृद्धि की तुलना में लगभग २.७ गुना अधिक है। इससे कम्पनी की लाभदायकता में वृद्धि स्पष्ट रुप से दिखाई देती है।

२. जे० के० टायर -

इस औद्योगिक संस्था में पिछले तीन वर्षो अर्थात १९९१-९२, १९९२-९३ तथा १९९३-९४ में क्रमशः २१६.०२ करोड रुपये ४११.२७ करोड़ रुपये तथा ४८१.१२ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ९०.३९ प्रतिशत अधिक है। दूसरे वर्ष की तुलना में तीसरे वर्ष में १६.९८ प्रतिशत अधिक है। यदि हम प्रथम वर्ष की तृतीय वर्ष की पूंजी से तुलना करते हैं। तो यह १२२.७२ प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार यदि हम पूंजी वृद्धि की तुलना संस्था के विक्रय से करते हैं तो यह प्रथम वर्ष की तुलना में ६१.५२ प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार इसके लाभ कर ब्याज एवं मूल ह्वास घटाने के बाद प्रथम वर्ष की तुलना में तीसरे वर्ष में ४७.७५ प्रतिशत ही है। लाभों में कमी का मुख्य कारण ब्याज में अधिक वृद्धि रहा। इस प्रकार संस्था की पूंजी की तुलना में लाभों में काफी कमी आई है। जिससे कम्पनी की अक्षमता दिखाई देती है।

३. गोदरेज -

इस व्यावसायिक संस्था में पिछले तीन वर्षो अर्थात १९९१-९२, १९९२-९३ तथा १९९३-९४ में क्रमशः १४८.४७ करोड़ रुपये १८२.२२ करोड़ रुपये तथा १५२.९६ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष २२.७ प्रतिशत अधिक है। दूसरे वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष १६.०६ प्रतिशत कम है। जिसका मुख्य कारण ऋण पूंजी में कमी होना रहा है। यदि प्रथम वर्ष की पूंजी की तुलना तृतीय वर्ष की पूंजी से की जाती है तो यह ३.० प्रतिशत अधिक है। यदि हम संस्था में पूंजी वृद्धि की तुलना व्यवसाय के विक्रय से करते हैं तो यह प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में लगभग २२ प्रतिशत कम है। इस प्रकार यदि पूंजी की तुलना लाभों से करें तो ये प्रथम वर्ष की तुलना में १४८.४ प्रतिशत अधिक है। जो कि पूंजी वृद्धि ३.० प्रतिशत से बहुत अधिक है। इस वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण पूर्व वर्ष के लाभों का समायोजन करना रहा है। यहां विशेष बात यह है कि संस्था के विक्रय में २२ प्रतिशत कमी हुई है। इसके विपरीत संस्था के लाभों में १४८.४ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। संस्था के विक्रय में कमी संस्था के क्रियाकलापों पर प्रश्नचिन्ह लगाती है।

४. पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) -

इस कम्पनी में पिछले तीन वर्षो की १९९१-९२, १९९२-९३, १९९३-९४ अवधि में क्रमशः १९१.३६ करोड़, २०५.७७ करोड़ रुपये २०५.७८ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ७.५३ प्रतिशत अधिक है, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ०.०१ प्रतिशत अधिक है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ७.५४ प्रतिशत अधिक है। यदि हम संस्था में पूंजी वृद्धि की तुलना व्यवसाय के विक्रय से करते हैं तो यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष ४२.१ प्रतिशत अधिक है, द्वितीय वर्ष की तृतीय वर्ष में ३४.४४ प्रतिशत अधिक है और प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष का विक्रय ९१.६१ प्रतिशत अधिक रहा। इसी प्रकार इसके लाभ, कर, ब्याज तथा मूल ह्रास काटने के बाद, प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ३७ प्रतिशत कम, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में २४.९ प्रतिशत कम तथा प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ५२.६७ प्रतिशत कम रही है। लाभों में इस कमी का मुख्य कारण ब्याज एवं मूल ह्रास में अधिक वृद्धि रहा है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि संस्था में पूंजी विनियोजन में तो

वृद्धि हुई है तथा इसके विपरीत लाभों में बहुत कमी आई है। इस स्थिति से स्पष्ट होता है कि प्रबन्धकीय स्तर पर कार्य ठीक ढंग से नही हो रहा है।

५. कैडबरीज -

इस व्यावसायिक संस्था में पिछले तीन वर्षों की अवधि में वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३, १९९३-९४ में क्रमशः ३१.२६ करोड़ रुपये, ३३.१८ करोड़ तथा ३५.९९ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष ६.१४ प्रतिशत अधिक द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ८.४७ प्रतिशत अधिक रही है। यदि प्रथम वर्ष की विनियोजित पूंजी से तृतीय वर्ष के पूंजी विनियोजन से तुलना करते हैं तो यह १५.१३ प्रतिशत अधिक रही है। यदि हम संस्था में पूंजी वृद्धि की तुलना संस्था के विक्रय में वृद्धि से करते हैं तो वह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १०.५ प्रतिशत अधिक द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ८.२ प्रतिशत अधिक तथा प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष १९.६ प्रतिशत अधिक रहा है। संस्था के लाभ, कर ब्याज तथा मूल्य ह्रास काटने के बाद प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष ६३ प्रतिशत कम, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ५३४.५ प्रतिशत अधिक तथा प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १३४.११ प्रतिशत अधिक रहे हैं। द्वितीय वर्ष के लाभ में कमी का मुख्य कारण ब्याज एवं मूल्य ह्रास में अधिकता रहा है। इसी प्रकार यदि हम पूंजी विनियोजन की तुलना संस्था में अर्जित लाभों से करते हैं तो वह काफी अधिक है। इससे संस्था की कार्यक्षमता मालूम होती है। प्रबन्धकों ने वित्तीय नियोजन कुशल ढंग से किया है।

६. ग्वालियर दुग्ध संघ -

इस सहकारी मर्यादित संस्था में पिछले तीन वर्षो अर्थात १९९१-९२, १९९२-९३, तथा १९९३-९४ में क्रमशः १४.७५ करोड़ रुपये, १७.२६ करोड़ रुपये तथा १८.३९ करोड़ रुपये की कुल पूंजी विनियोजित रही है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १७.०२ प्रतिशत अधिक, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ६.५४ प्रतिशत अधिक तथा प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में २४.६८ प्रतिशत अधिक रही है। यदि हम संस्था में पूंजी वृद्धि की तुलना संस्था के विक्रय से करते हैं तो वह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष ३०.६ प्रतिशत अधिक, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष ५७.१३ प्रतिशत अधिक, तथा प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १०५.२४ प्रतिशत

अधिक रहा है। इसी प्रकार यदि हम पूंजी विनियोजन की तुलना संस्था द्वारा अर्जित लाभों से करते हैं तो देखते हैं कि यह संस्था अपने स्थापन वर्ष से ही हानि में चल रही है और इसकी हानियों में लगातार वृद्धि होती जा रही है उसका सबसे महत्वपूर्ण कारण संस्था द्वारा ऋणों पर बहुत अधिक मात्रा में ब्याज का भुगतान करना तथा स्थायी संपत्तियों पर मूल्य ह्रास अधिक लगाना रहा है। इसके साथ ही इसके संचालन व्ययों में भी वृद्धि हो रही है। अध्ययन अवधि में लगातार क्रमशः १९.१ करोड़ रुपये की हानि, १९.२५ करोड़ रुपये की हानि तथा ३०.१४ करोड़ रुपये की हानि रही है। संस्था में पूंजी में वृद्धि होती रही है और दूसरी तरफ हानि भी बढ़ रही है। अध्ययन करने से मालूम होता है कि यह हानि संस्था द्वारा किये जाने वाले विक्रय से काफी अधिक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्था ऋणों पर ब्याज चुकाने के लिये ऋण लेती रही है। इस प्रकार यह संस्था अपना कार्य अच्छे ढंग से नही कर रही है। इसकी वित्तीय योजना अक्षमता एवं अकुशलता से बनाई गयी है।

ग्वालियर रेयान इकाई में पूंजी संरचना को निम्नांकित तालिका द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

तालिका

ग्वालियर रेयान में पूंजी संरचना[४.१] (करोड़ रूपयों में)

वर्ष	कुल विनियोजित पूंजी	समता अंश पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	दीर्घकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	अल्पकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियो-जित पूंजी के साथ प्रतिशत
१९९१-९२	१०२९.१	६०.५	५८८	९०५.३५	८७.९७	८३.३१	६.१५
१९९२-९३	१२०६०१	६७.४४	५.५९	१०३१.७९	८५.५५	१०६.७८	८८६
१९९३-९४	१४६५.२४	६७.४४	४.६०	१०८४८४	७४०४	३१२.९८	२१.३६

(4.1) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0- 136

जे० के० टायर इकाई में पूंजी संरचना को निम्नांकित तालिका द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है—

तालिका

जे० के० टायर में पूंजी संरचना[४.२] (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	कुल विनियोजित पूंजी	समता अंश पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	दीर्घकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	अल्पकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियो-जित पूंजी के साथ प्रतिशत
१९९१-९२	२१६०२	१४०४	६.५	१७६८७	८१८८	२५.११	११.६
१९९२-९३	४११.२७	१८.५६	४.५१	३६४.६०	८८.६५	२८.११	६.८
१९९३-९४	४८१.१२	१९.८७	४.१३	३६४.६०	७५.७८	९६.६	२०.१

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की पूंजी संरचना एवं पूंजी स्त्रोतों का विश्लेषण

१. ग्वालियर रेयान -

इस व्यावसायिक संस्था में पिछले तीन वर्षो अर्थात १९९१-९२, १९९२-९३, तथा १९९३-९४ में कुल विनियोजित पूंजी क्रमशः १०२९.१ करोड़ रुपये, १२०६.१ करोड़ रुपये तथा १४६५.२४ करोड़ रुपये रही है। इससे से इसी अविध में समता अंश पूंजी क्रमशः ६०.५ करोड़ तथा ६७.४४ करोड़ रुपये विनियोजित रही है। यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः ५.८८ प्रतिशत, ५.५९ प्रतिशत, एवं ४.६० प्रतिशत है। इस अवधि में संस्था में दीर्घकालीन ऋण पूंजी क्रमशः ९०५.३५ करोड़ रुपये, १०३१.७९ करोड़ रुपये तथा १०८४.८४ करोड़ रुपये विनियोजित रही है जो कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः ८७.९७ प्रतिशत, ८५.५५ प्रतिशत, एवं ७४.०४

(4.2) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0 47।

प्रतिशत है। यह तृतीय वर्ष में अपेक्षाकृत कम रही है क्योंकि यहां अल्पकालीन ऋण पूंजी का भाग क्रमशः ६.१५ प्रतिशत, ८.८६ प्रतिशत एवं २१.३६ प्रतिशत रहा है। इस प्रकार इस संस्था में दीर्घकालीन ऋण पूंजी की मात्रा सर्वाधिक रही है। संस्था में जो समता अंश पूंजी विनियोजित रही है। उस पर प्रति अंश अर्जित आय क्रमशः १७.५२, २०.४२ रु० तथा ३३.७९ रु० रही है। प्रति अंश अर्जित आय में वृद्धि को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रबन्धकों ने पूंजी संरचना बुद्धिमता पूर्ण ढंग से की है।

२. जे० के० टायर -

इस कम्पनी में पिछले तीन वर्षों अर्थात १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः २१६.०२ करोड१ रुपये, ४११.२७ करोड़ रुपये तथा ४८१.१२ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है। इसमें से इसी अवधि में समता अंश पूंजी का भाग क्रमशः १४.०४ करोड़ रुपये, १८.५६ करोड़ रुपये तथा १९.८७ करोड़ रुपये रहा है। यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः ६.५ प्रतिशत, ४.५१ प्रतिशत एवं ४.१३ प्रतिशत है। इसी अवधि में संस्था में दीर्घकालीन ऋण पूंजी क्रमशः १७६.८७ करोड़ रुपये, ३६४.६० करोड़ विनियोजित रही है। यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः ८१.८८ प्रतिशत, ८८.६५ प्रतिशत एवं ७५.७८ प्रतिशत है। प्रथम वर्ष की तुलना में दूसरे एवं तीसरे वर्ष में अधिक मात्रा में दीर्धकालीन ऋण पूंजी लगायी गयी है। इसी अवधि में संस्था में अल्पकालीन ऋण पूंजी क्रमशः २५.११ करोड़ रुपये, २८.११ करोड़ रुपये एवं ९६.६ करोड़ रुपये विनियोजित रही है। यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः ११.६ प्रतिशत, ६.८ प्रतिशत २०.१ प्रतिशत है। इस प्रकार तृतीय वर्ष में सर्वाधिक अल्पकालीन ऋण पूंजी का प्रयोग किया गया है। यदि कुल विनियोजित पूंजी के बारे में देखते हैं तो मालूम होता है कि संस्था में दीर्घकालीन ऋण पूंजी का विनियोजन अधिक किया है। संस्था में जो समता अंश पूंजी विनियोजित रही है उस पर इसी अवधि में प्रति अंश अर्जित आय क्रमशः ९.४३ रु० ४.२२ रु० तथा २.११ रु० रही है। प्रति अंश अर्जित आय में लगातार कमी को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रबन्धकों ने पूंजी संरचना में कहीं कमी रखी है अर्थात किन्ही कारणों से पूंजी संरचना अधिक प्रभावी नहीं बन पाई है। जिसका असर यह होता है कि संस्था की बाजार में एवं विनियोक्ताओं में ख्याति नही रह पाती और विनियोग और विनियोक्ता कम्पनी के अंशो के प्रति उत्साहवर्धक नहीं होते।

गोदरेज इकाई में पूंजी संरचना को निम्नांकित तालिका द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है—

तालिका

गोदरेज में पूंजी संरचना [४.३] (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	कुल विनियोजित पूंजी	समता अंश पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	दीर्घकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	अल्पकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियो-जित पूंजी के साथ प्रतिशत
१९९१-९२	१४८.४७	४.३२	२.९१	४७.५८	३२.०५	९६.५७	६५.०४
१९९२-९३	१८२.२२	२५.९२	१४.२२	३९.०६	२१.४३	११७.२४	६४.३४
१९९३-९४	१५२.९६	३२.९६	२१.५५	१६.९३	११.१	१०३.०७	६७.३८

३. गोदरेज -

इस संस्था में पिछले तीन वर्षो की अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३, एवं वर्ष १९९३-९४ में क्रमशः १४८.४७ करोड़ रुपये, १८२.२२ करोड़ रुपये तथा १५२.९६ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है। इस विनियोजित पूंजी में से इसी अवधि में क्रमशः ४.३२ करोड़ रुपये, २५.९२ करोड़ रुपये तथा ३२.९६ करोड़ रुपये की समता अंश पूंजी विनियोजित रही है, यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः २.९१ प्रतिशत, १४.२२ प्रतिशत एवं २१.५५ प्रतिशत है। इस प्रकार तीसरे वर्ष में समता अंश पूंजी का सर्वाधिक प्रतिशत रहा है। इसी अवधि में दीर्घकालीन ऋण पूंजी क्रमशः ४७.५८ करोड़ रुपये ३९.०६ करोड़ रुपये तथा १६.९३ करोड़ रुपये विनियोजित रही है यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः ३२.०५ प्रतिशत, २१.४३ प्रतिशत एवं ११.१ प्रतिशत है। इसमें हम यह देखते हैं कि संस्था दीर्घकालीन ऋण पूंजी की मात्रा क्रमशः कम करती रही है जिससे इन पर दिये जाने वाले ब्याज में भी कमी हुई है। इसी अवधि में अल्पकालीन ऋण पूंजी क्रमशः ९६.५७ करोड़ रुपये, ११७.२४ करोड़ रुपये, तथा १०३.०७ करोड़ रुपये विनियोजित रही है। यह कुल

(4.3) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पु0क्र0 ।।2

विनियोजित पूंजी का क्रमशः ६५.०४ प्रतिशत, ६४.३४ प्रतिशत तथा ६७.३८ प्रतिशत है । इस प्रकार इस संस्था में अल्पकालीन ऋण पूंजी सर्वाधिक मात्रा में विनियोजित रही है । संस्था में जो समता अंश पूंजी विनियोजित रही है उस पर इसी अवधि में प्रति अंश अर्जित आय क्रमशः २३५.७५ रु०, ११.५४ रु० तथा ७.६४ रु० रही है । संस्था के समता अंश प्रथम वर्ष में १०० रु० के हिसाब से थे, दूसरे वर्ष कमानी ने प्रति एक अंश पर पांच अंश बोनस के रुप में जारी किये हैं जिससे कम्पनी की समता अंश पूंजी में पांच गुना वृद्धि हो गई । तृतीय वर्ष संस्था के लाभों में कमी के कारण प्रति अंश अर्जित आय कम रही है । इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि संस्था के प्रबन्धकों ने पूंजी संरचना पर विशेष ध्यान नहीं दिया है । जिसका परिणाम प्रति अंश अर्जित आय में कमी के रुप में देखने को मिलता है । इसका नुकसान विनियोक्ता अथवा अंश धारी को सहन करना होता है ।

४. पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) -

इस संस्था में अध्ययन अवधि, पिछले तीन वर्षो अर्थात १९९१-९२, १९९२-९३, एवं १९९३-९४ में क्रमशः १९१.३६ करोड़ रुपये, २०५.७७ करोड़ रुपये तथा २०५.७८ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है । इस वनियोजित पूंजी में से इसी अवधि में क्रमशः २७.८५ करोड़ रुपये ,२७.८६ करोड़ रुपये तथा २७.८७ करोड़ रुपये समता अंश पूंजी विनियोजित रही हैं । यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः १४.५५ प्रतिशत, १३.५४ प्रतिशत, एवं १३.५४ प्रतिशत है । यह कुल विनियोजित पूंजी का बहुत छोटा हिस्सा है । इसी अवधि में दीर्घकालीन ऋण पूंजी क्रमशः १२३.१६ करोड़ रुपये, ११६.९३ करोड़ रुपये एवं ११८.४४ करोड़ रुपये विनियोजित रही है । यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः ६४.३६ प्रतिशत ,५६.८३ प्रतिशत एवं ५७.५६ प्रतिशत है । इस प्रकार संस्था ने प्रथम वर्ष में अधिक दीर्घकालीन ऋण पूंजी का प्रयोग किया है उसके बाद के वर्षो में इसमें कमी आई है । इसी अवधि में अल्पकालीन ऋण पूंजी क्रमशः ४०.३५ करोड़ रुपये, ६०.९८ करोड़ रुपये, एवं ५९.५६ करोड़ रुपये विनियोजित रही है । यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः २१.१ प्रतिशत, २९.६४ प्रतिशत एवं २८.९४ प्रतिशत है । इस प्रकार संस्था ने दीर्घकालीन ऋण पूंजी का अधिक प्रयोग किया है । संस्था में इसी अवधि में विनियोजित समता अंश पूंजी पर प्रति अंश अर्जित आय क्रमशः ११.८५ रु०, ७.४७ रु० एवं ६.६१ रुपये रही है । प्रति अंश अर्जित आय में कमी शुद्ध लाभों में कमी के कारण हुई है । इससे यह ज्ञात होता है कि संस्था के प्रबन्धकों ने पूंजी संरचना में कहीं त्रुटि की है जिससे प्रति अंश अर्जित आय में लगातार कमी हो रही है । इसका नुकसान संस्था

के मालिकों(अंशधारिया) को सहन करना होता है । इससे संस्था के अंशों के मूल्यों में कमी आती है जिससे विनियोजकों को पूंजीगत हानि उठानी पड़ती है ।

पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) इकाई में पूंजी संरचना को निम्नांकित तालिका द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है—

तालिका

पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) में पूंजी संरचना[४.४] (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	कुल विनियोजित पूंजी	समता अंश पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	दीर्घकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	अल्पकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियो-जित पूंजी के साथ प्रतिशत
१९९१-९२	१९१.३६	२७८५	१४.५५	१२३.१६	६४.३६	४०.३५	२१.१
१९९२-९३	२०५.७७	२७८६	१३.५४	११६.९३	५६८३	६०.९८	२९.६४
१९९३-९४	२०५.७८	२७८७	१३.५४	११८.४४	५७.५६	५९.५६	२८.९४

कैडबरीज इकाई में पूंजी संरचना को निम्नांकित तालिका द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है—

तालिका

कैडबरीज में पूंजी संरचना [४.५] (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	कुल विनियोजित पूंजी	समता अंश पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	दीर्घकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	अल्पकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियो-जित पूंजी के साथ प्रतिशत
१९९१-९२	३१.२६	८.४	२६८७	१४.५९	४६.६७	८.२७	२६.५
१९९२-९३	३३.१८	१२.४	३७.३७	८८	२६.५२	११८९	३५८३
१९९३-९४	३५.९९	१२.४	३४.४५	३.२१	२५८९	२०.३८	५६.६२

(4.4) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0 467
(4.5) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0 पृ0क्र0 -226

५. कैडबरीज -

इस संस्था में अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ तथा १९९३-९४ में कुल विनियोजित पूंजी क्रमशः ३१.२६ करोड़ रुपये, ३३.१८ करोड़ रुपये तथा ३५.९९ करोड़ रुपये रही है। इसी अवधि में इसमें से समता अंश पूंजी क्रमशः ८.४ करोड़ रुपये, १२.४ करोड़ रुपये, १२.४ करोड़ रुपये विनियोजित रही है। यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः २६.८७ प्रतिशत,३६.३६ प्रतिशत एवं ३४.४५ प्रतिशत है। द्वितीय वर्ष में समता अंश पूंजी का अधिक भाग रहा हैं। इसी अवधि में दीर्घकालीन ऋण पूंजी क्रमशः १४.५९ करोड़ रुपये, ८.८ करोड़ रुपयें एवं ३.२१ करोड़ रुपये विनियोजित रही है। यह कुल विनयोजित पूंजी का क्रमशः ४६.६७ प्रतिशत, २६.५२ प्रतिशत एवं २५.८९ प्रतिशत है। दीर्घकालीन ऋण पूंजी में प्रतिवर्ष कमी आती रही है। जिससे संस्था पर ब्याज का भार कम हुआ है। इसी अवधि में अल्पकालीन ऋणपूंजी क्रमशः ८.२७ करोड़ रुपये, ११.८९ करोड़ रुपये तथा २०.३८ करोड़ रुपये विनियोजित रहे हैं। यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमशः २६.५ प्रतिशत, ३५.८३ प्रतिशत, एवं ५६.६२ प्रतिशत है। इस प्रकार कुल विनियोजित पूंजी में अल्पकालीन ऋण पूंजी में प्रति वर्ष वृद्धि हो रही है, इससे संस्था को उसी अवधि के लिये ब्याज का भुगतान करना पड़ता है जिस अवधि के लिये यह ऋण लिया है। इसी अवधि में संस्था में लगी समता अशं पूंजी पर प्रति अंश अर्जित आय क्रमशः ४.४१ रुपये, १.१० रुपये एवं ७.०० रुपये रही है। दूसरे वर्ष में मूल्यह्रास तथा ब्याज में अधिक वृद्धि के कारण संस्था के लाभों में बहुत अधिक कमी आई है। जिससे प्रति अंश अर्जित आय में भी कमी हुई है। यदि द्वितीय वर्ष के प्रति अंश अर्जित आय को अपवाद मान लिया जाये तो हम यह कह सकते हैं कि संस्था लगातार अपने लाभों में वृद्धि कर रही है जिससे प्रति अंश अर्जित आय में वृद्धि हुई है। जिसका लाभ संस्था के मालिकों (अंश धारियों)को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप में मिला है। अंशों के मूल्य में वृद्धि होने से उनकी पूंजीगत लाभों में वृद्धि हुई है। संस्था के प्रति विनियोक्ताओं का विश्वास बढ़ा है। इससे हम यह कह सकते हैं कि संस्था के प्रबन्धकों ने पूंजी संरचना में अपनी योग्यता एवं कार्यक्षमता को प्रदर्शित किया है।

ग्वालियर दुग्ध संघ में पूंजी संरचना को निम्नांकित तालिका द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है—

तालिका

ग्वालियर दुग्ध संघ में पूंजी संरचना[४६] (करोड़ रुपये में)

वर्ष	कुल विनियोजित पूंजी	समता अंश पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	दीर्घकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियोजित पूंजी के साथ प्रतिशत	अल्पकालीन ऋण पूंजी	कुल विनियो-जित पूंजी के साथ प्रतिशत
१९९१-९२	१४.७५	४८.९६ लाख रु०	३.३२	११.५९	७८.५८	२.६७	१८.१
१९९२-९३	१७.२६	५४.३८ लाख रु०	३.१५	१२.७५	७३.८७	३.९६	२२.९४
१९९३-९४	१८.३९	४६.८५ लाख रु०	२.५५	१६.१७	८७.९३	१.७६	९.५७

६. ग्वालियर दुग्ध संघ - इस व्यावसायिक संस्था में अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश: १४.७५ करोड़ रुपये, १७.२६ करोड़ रुपये तथा १८.३९ करोड़ रुपये की कुल पूंजी विनियोजित रही है। इसमें से इसी अवधि में अंश पूंजी क्रमश: ४८.९६ लाख रुपये, ५४.३८ लाख रु० तथा ४६.८५ लाख रुपये विनियोजित रही है। यह कुल विनियोजित पूंजी का क्रमश: ३.३२ प्रतिशत, ३.१५ प्रतिशत एवं २.५५ प्रतिशत है। इस प्रकार संस्था की कुल विनियोजित पूंजी में अंश पूंजी का भाग नगण्य ही है। इसी अवधि में दीर्घकालीन ऋण पूंजी क्रमश: ११.५९ करोड़ रुपये, १२.७५ करोड़ रुपये, तथा १६.१७ करोड़ रुपये विनियोजित रही है यह कुल विनियोजित पूंजी का ७८.५८ प्रतिशत, ७३.८७ प्रतिशत एवं ८७.९३ प्रतिशत है। इस प्रकार संस्था में दीर्घकालीन ऋण पूंजी का बहुत बड़ा भाग विनियोजित रहा है इस ऋण पर संस्था को बहुत बड़ी मात्रा में ब्याज का भुगतान करना पड़ता है। इसी अवधि में अल्पकालीन ऋण पूंजी क्रमश: २.६७ करोड़ रुपये, ३.९६ करोड़ रुपये, तथा १.७६ करोड़ रुपये विनियोजित रही है। यह संस्था की कुल विनियोजित पूंजी का क्रमश: १८.१ प्रतिशत, २२.९४ प्रतिशत तथा ९.५७ प्रतिशत

(4.6) ग्वालियर दुग्ध संघ सहकारी मर्यादित ग्वालियर- वार्षिक प्रतिवेदन - 28 अक्टू0 1995

है । इस प्रकार संस्था में अल्पकालीन ऋणों का कम ही प्रयोग किया है । जहां तक प्रश्न संस्था द्वारा अर्जित लाभों का है । जब से संस्था बनी है तभी से संस्था हानि में चल रही है । अध्ययन अवधि के तीन वर्षो में उसे क्रमशः १.९१ करोड़ रुपये, १.९२ करोड़ रुपये तथा ३.०२ करोड़ रुपये की हानि हुई है । इस हानि में सबसे बड़ा भाग ऋणों पर ब्याज का है । पिछले तीन वर्षों में संस्था ने क्रमशः १.२२ करोड़ रुपये, १.५६ करोड़ रुपये, १.८६ करोड़ रुपये के ब्याज का भुगतान किया गया है । ब्याज के बाद जिस मद पर अधिक खर्च हुआ है वह है मूल्य ह्रास, इस मद पर काफी धनराशि व्यय की गई है । पिछले तीन वर्षों में संस्था ने इस मद पर क्रमशः ३.६४ लाख रुपये, ३.३२ लाख रुपये ४.७९ लाख रुपये व्यय किये हैं । अध्ययन करने पर मालूम होता है कि ब्याज का भुगतान करने के लिये ऋण लिया गया है । पूंजी के रुप में छोटी सी राशि लगी हुई है । वह हानियों में समाप्त हो चुकी है । प्रबन्धकों ने संस्था की पूंजी संरचना सही ढंग से नहीं की है । इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता है ।

पंचम अध्याय

वित्तीय विवरणों का विश्लेषण

१- प्रमुख वित्तीय विवरण - अवधारणा एवं महत्व

२- वित्तीय विश्लेषण की प्रमुख तकनीकें

अ- अनुपात विश्लेषण

ब- समविच्छेद बिन्दु तकनीक

स- रोकड़ एवं कोष प्रवाह विश्लेषण

३- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में विश्लेषण की उपरोक्त तकनीकों का उपयोग

किसी भी राष्ट्रीय की प्रगति में वहां के व्यापार तथा उद्योग मापक यन्त्र माने जाते हैं। विज्ञान के साथ-साथ इन क्षेत्रों में भी उन्नित होती जा रही है। उद्योग एवं वाणिज्स के क्षेत्र में प्रगित के कारण लेखा पुस्तकों के महत्व को भुलाया नहीं जा सकता है। लेखा पुस्तकों को रखने का उद्देश्य केवल उसके दिन-प्रतिदिन के व्यवहारों के लिखने तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसके आधार पर व्यापार की सफलता का मूल्यांकन भी किया जाता है। आधुनिक युग में व्यवसाय मात्र एकाकी या साझेदारी न होकर संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल तक जा पहुंचा है। प्रत्येक विनियोक्ता अपना धन विनियोजित करने से पूर्व उस सम्बन्धित व्यवसाय की स्थिति से भलीभांति परिचित हो जाना चाहता है जिससे उसे जोखिम की संभावना न्यूनतम हो। आधुनिक व्यावसायिक प्रणाली में सभी प्रमण्डलों द्वारा लेखों को प्रकाशित किया जाता है जिससे अंशधारी तथा विनियोक्ता उससे अपने उद्देश्य पूर्ति में सफल हो सकें।

प्रमुख वित्तीय विवरण-अवधारणा एवं महत्व

वित्तीय विवरण किसी व्यवसायिक संस्था के लिये एक निशिचत अविध के अन्त में बनाये गये अन्तिम लेखे होते हैं। इन वित्तीय विवरणों से उस अवधि में संचालित व्यापार के सकल तथा शुद्ध परिणामों की जानकारी प्राप्त की जाती है और उस अवधि के अन्त में संस्था की वित्तीय स्थिति जानी जाती है। इन वित्तीय विवरणों में (क) चिट्ठा ,(ख) लाभ हानि खाता ,(ग) संचालकों का प्रतिवेदन,(घ) अंकेक्षक प्रतिवेदन तथा अध्यक्षीय भाषण तैयार किये जाते हैं। लेकिल व्यवहार में चिट्ठा या वित्तीय स्थति का विवरण और लाभहानि खाता या आय विवरण को ही सम्मिलित रुप से वित्तीय विवरण कहते हैं। इन विवरणों के अतिरिक्त वित्तीय विवरणों के सहायक के रुप में अनेक अनुसूचियां भी तैयार करनी होती हैं। उदाहरण के लिये स्थायी सम्पित्तियों की अनुसूची , संचयों की अनुसूची, देनदारों की अनुसूची, लेनदारों की अनुसूची,निर्मित वस्तु की लागत अनुसूची,निर्माणी, प्रशासनिक तथा विक्रय व्ययों की अनुसूची इत्यादि । इन अनुसूचियों वित्तीय विवरणें का विश्लेषण करने में मदद् मिलती है। इसलिये इन अनुसूचियों को भी वित्तीय विवरणें का ही भाग माना जाता है। वित्तीय विवरणें का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है-

(क) चिट्ठा -

चिट्ठा या स्थिति विवरण किसी निशिचत तिथि को एक व्यवसाय की वित्तीय स्थति का विवरण है इसमें व्यवसाय की सम्पित्तयां, दायित्व, पूंजी,संचय तथा अन्य खातों के शेषों को प्रदर्शित किया जाता है। इसके अन्तर्गत हिसाबी वर्ष के अन्त में सभी आगम खातों को व्यापार तथा लाभहानि खाते में हस्तातिंरत करके शेष बच रहे खातों के शेष को दिखाया जाता है । इन खातों में अनेक स्थायी तथा अस्थायी सम्पत्तियों से भूमि, भवन, विनियोग, स्कन्ध, बैंक में रोकड़ हस्तस्थ रोकड़ ,विभिन्न देनदार तथा लाभ हानि खाते की हानि, जिसका नाम शेष होता है,दायी ओर सम्पत्ति पक्ष में दिखाये जाते हैं। पूंजी, विभिन्न ऋण , संचय,कोष , विभिन्न दायित्व एवं लाभहानि खाते का जमा शेष होता है, बायीं ओर दायित्व पक्ष में दिखाये जाते हैं। चिट्ठे में दोनों तरफ का योग बराबर हो जाता है। चिट्ठे के द्वारा यह जाना जाता है कि व्यवसाय की वर्तमान स्थिति क्या है। चिट्ठा व्यवसाय की आर्थिक स्थति का विवरण किसी एक निश्चित तिथि को प्ररुतुत करता है। चिट्ठा के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा जो विचार व्यक्त किये गये हैं उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं

फ्रांसिस आर०स्टीड के अनुसार , " यह किसी विशेष अवसर पर चालू व्यवसाय की आर्थिक अवस्था का चित्र हैं। [१]"

क्रापर के शब्दों में ," स्थिति विवरण , लाभा लाभ लेखे में सभी आगम मदों को बंद करने के बाद बचे हुये प्रपंजी आधिक्यों का वर्गीकृत "सिक्षिप्तीकरण है।"[२]

हावर्ड तथा अप्टन के अनुसार ," यह ऐसा प्रविवरण है जो उधम की सम्पत्ति के मूल्य तथा इन सम्पत्तियों के विरुद्ध उत्तगर्णो तथा स्वामियों के दावे की सूचना देता है ।"[३]

चिट्ठे की मदों के वर्गीकरण द्वारा किसी संस्था के विशेष वर्ष की सम्पत्तितयों एवं दायित्वों से सबंधित अनुपातों की उसी प्रकार के अन्य वर्षों के अनुपात या दूसरी संस्था अथवा उद्योग के अनुपातों से तुलना की जा सकती है। इस उद्देश्य से चिट्ठे की विभिन्न मदों को उचित आधार पर वर्गीकृत करके निशिचत क्रम में रखा जाता है। कम्पनी अधिनियम के अनुसार सभी मदों को सम्पत्तियों एवं दायित्वों में विभाजित किया जाता है। विशलेषण तथा निर्वाचन के उद्देशय से चिट्ठा

(1) प्रबन्धकीय लेखांकन - जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल - पृ0क्र0- 169
(2) - तदैव - पृ0क्र0- 169
(3) - तदैव - पृ0क्र0 - 169

की विभिन्न मदों का वर्गीय इस सिद्धान्त पर कि कुल सम्पत्तियों का मूल्य दायित्व तथा स्वामियों के स्वत्व के बराबर होता है, निम्न प्रकार किया जा सकता है ।

(अ) सम्पत्तियां- १- चालू सम्पत्तियां, २- स्थायी सम्पत्तियां ३- अमूर्त सम्पत्तियां, ४- अन्य सम्पत्तितयां, ५- स्थगित व्यय

(ब) दायित्व- १- चालू दायित्व, २- दीर्घकालीन दायित्व

(स) स्वामियों का स्वत्व - १- अंश पूंजी २- संचय व आधिक्य ।

(अ) सम्पत्तियां-

सम्पत्तियों को किसी संस्था के स्वामित्व में सम्पादित भावी हित लाभों वाली मूर्त वस्तुएं अथवा अमूर्त अधिकारों के रुप में परिभाषित किया जा सकता है । सभी सम्पत्तियों को चिट्ठा में तरलता अथवा स्थायित्व के क्रम में दर्शाया जाता है । इन सम्पत्ति को समान विशेषताओं के आधार पर विभिन्न वर्गो में रखा जाता है । सम्पत्तियों को विश्लेषण की दृष्टि से जिन वर्गों में विभक्त किया गया है उनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है -

१- चालू सम्पत्तियां-

चालू सम्पत्तियों को चक्रशील सम्पत्तियां भी कहा जाता है क्यों कि इनके स्वरुप परिवर्तन का चक्र चलता ही रहता है । जैसे निर्मित सामग्री की बिक्री से रोकड़ प्राप्त की जाती है, रोकड़ से पुनः कच्चा माल खरीदा जाता है तथा कच्चेमाल से पुनः निर्मित माल तैयार किया जाता है इसके वाद निर्मित माल बेचकर पुनः निर्मितमाल तैयार किया जाता है इसके बाद पुनः रोकड प्राप्त करली जाती है । इन सम्पत्तियों के अर्न्तगत १- हस्तस्थ रोकड तथा बैंक शेष, २- प्राप्यिवपज, ३- देनदार ,४- स्कन्ध ,५- विक्रय योग्य प्रतिभूतियां ,६- अग्रिम भुगतान इत्यादि सम्मलित किया जाता है ।

२- स्थायी सम्पत्तियां -

स्थायी सम्पत्तियां व्यवसाय के संचालन में प्रयुक्त अपेक्षाकृत स्थायी प्रकृति की सम्पत्तियां होती है जो कि निर्मित माल की तरह बिक्रय के लिये नहीं होती है । इन्हें पूंजीगत सम्पत्तियां भी कहां जाता है स्थायी सम्पत्तियों को दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है । क- मूर्त स्थायी सम्पत्तियां तथा , ख- अमूर्त सम्पत्तियां , मूर्त स्थायी सम्पत्तियों के अर्न्तगत उन्हें सम्मिलित किया जाता है । जिन्हें प्रत्यक्ष रुप से देखा जा सकता है । जैसे - १- भूमि , २- भवन ,३- प्लान्ट एवं मशीनरी , ४- फर्नीचर एवं फिक्चर्स तथा ५- कार्यालय इत्यादि ।

३- अमूर्त सम्पत्तियां -

अमूर्त सम्पत्तियों के अन्तर्गत उन सम्पत्तियों को सम्मिलित किया जाता है जिनका कोई भैतिक स्वरुप नही होता है । इनका आशय वास्तव में उन अधिकारों एवं सुविधाओं से है जिनके कारण एक व्यवसाय दूसरे व्यवसाय की तुलना में अधिक लाभ कमाने की स्थिति में होता है । इन सम्पत्तियों का मूल्य व्यवसाय कि लाभार्जन शक्ति पर निर्भर करता है । इन सम्पत्तियों के अन्तर्गत १- ख्याति , २- स्वत्वाधिकार एवं व्यौपार चिन्ह , ३- प्रतिलिप्तयाधिकार , लाईसेन्स व अधिकार को सम्मिलित किया जाता है ।

४- अन्य सम्पत्तियां -

ऐसी सम्पत्तियां जो उपरोक्त तीनों वर्गो में किसी के अन्तर्गत नहीं आती वे इस वर्ग में रखी जाती है अर्थात स्थायी सम्पत्तियों एवं चालू सम्पत्तियों में कुछ ऐसी मदें होती है जिन्हें लेखाकार या विशलेषक स्थायी या चालू वर्ग में न रख कर इस वर्ग में रखते हैं। ऐसी सम्पत्तियों में १ विनियोंग विक्रय योग्य प्रतिभूतियों को छोड़कर २- गैर व्यापारिक देनदार , ३- सम्पत्ति संवर्धन या ऋणपत्र शोधन हेतु अलग रखी गई राशि इत्यादि को सम्मलित किया जाता है।

५- स्थगित व्यय -

कुछ व्यय इस प्रकार होते है जिनका लाभ व्यवसायिक संस्था को केई वर्षो तक प्राप्त होता रहता है। जबकि वास्तव में ये किसी प्रकार की सम्पत्ति नही होती क्योंकि न तो इनसे नकद धनराशि ही प्राप्त की जा सकती है और न ही संस्था के समापन पर कुछ प्राप्त हो सकता है। भविष्य में ये सम्पत्तियां भी व्यय हो जाती है जिन्हें लाभ हानि खाते से अपलिखित कर दिया जाता है। इस प्रकार ये व्ययों में १- प्रारम्भिक व्यय, २- अंश व ऋण पत्रों के निर्गमन का व्यय, ३- लाभ हानि खाते का नाम शेष इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

(ब) दायित्व-

दायित्वों से आशय उस राशि से है जिनके लिये संस्था स्वामियों के अतिरिक्त वाहरी व्यक्तियों की ऋणी है। व्यावसायिक संस्थाओं में सम्पत्तियो का अर्थ प्रबन्धल विभिन्न स्रोतों से किया जाता है। उदाहरण के लिये वित्तीय संस्थाओं, बैंकों व ऋणपत्रों के द्वारा व्यावसायिक संस्थायें दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करती हैं । अल्पकालीन ऋण माल व सेवाओं के उधार क्रय के रुप में हो

सकता है। ऐसे बाहरी स्रोत जिनसे एक संस्था उधार लेती है , दायित्व कहलाते हैं। कोषों की सामायिकता के आधार पर इन्हें दो भागों में बांटा गया है- १- चालू दायित्व ,२- दीर्घकालीन दायित्व

१- चालू दायित्व -

एक विश्लेषक के दृष्टिकोण से चालू दायित्व वे सभी अल्पकालीन आभार होते हैं जो कि सामान्यतया एक वर्ष की अवधि में वाजिव एवं देय होते हैं । इसके साथ ही इन दायित्वों का शोधन चालू सम्पत्तियों को रोकड़ में परिवर्तित करके अथवा नये चालू दायित्वों के सृजन के द्वारा किया जाता है इन दायित्वों को अल्पकालीन दायित्व भी कहां जाता है इस तरह के दायित्व व्यवसाय में दिन- प्रतिदिन के व्यवहारों के कारण उत्पन्न होते है। चालू दायित्वों के अर्न्तगत् १- देय विपत्त ,२- लेनदार, ३- बैंक अधिविकर्ष , ४- एक वर्ष की अवधि में शोधनीय ऋण, ५- अदत्त व्यय , ६- देय लाभांश इत्यादि को सम्मलित किया जाता है।

२- दीर्घकालीन दायित्व-

ऐसे दायित्व जिनका भुगतान दीर्घकाल में किया जाता तथा जिनके भुगतान के लिये चालू सम्पत्तियों की आवश्यकता नहीं होती, इस श्रेणी के अर्न्तगत आती हैं। ये दायित्व भी सम्पत्तियों पर प्रभार के आधार पर सुरक्षित तथा असुरक्षित दो प्रकार के होते हैं । इस प्रकार के दायित्वों में १- ऋणपत्र या बाण्ड्स २- बधंक पर ऋण , ३- दीर्घकालीन बैंक ऋण आदि को सम्मलित किया जाता है।

(स) स्वामियों का स्वत्व -

व्यवसाय के स्वामी अंशधारी होते हैं, अत: स्वामित्व हित कम्पनी की सम्पत्तियों एवं उसके साधनों में अंशधारियों के कुल हित की राशि को प्रदर्शित करता है । अर्थात् स्वामियों के स्वत्व को संस्था के साधानों का वह भाग माना जाता है जिसकी पूर्ति स्वामियों ने की है। इसे शुद्ध मूल्य भी कहा जाता है । इसकी गणना , कुल सम्पत्तियों में से ऋण एवं दयित्वों की राशि घटाने के वाद की जाती है। स्वामियों के स्वात्व में दो तत्व- १- प्रदत्त पूंजी , २- आधिक्य एवं संचय होते हैं ।

१- प्रदत्त पूंजी -

इसके अर्न्तगत अंशधारियों (स्वामियों) द्वारा प्रारम्भ में दिये गये कोषों को सम्मलित किया जाता है। इसमें समता अंश पूंजी तथा पूर्वाधिकार अंश पूंजी दोनों को लिया जाता है।

२- आधिक्य एवं संचय -

इसका आशय रोकी गई आयों से है । यह अंशधारियों से सम्बन्धित लाभों का वह भाग है जिसे उन्हें लाभांश के रुप में नहीं दिया गया बल्कि व्यवसाय में रोक लिया गया है अथवा पुन: विनियोजित कर दिया गया है । इसके अर्न्तगत आयगत संचय , पूंजीगत संचय, अन्य संचय, अन्य अवितरित लाभ जो लाभांश के रुप में वितरण योग्य हो, सम्मलित किया जाता है । चिट्ठे को दो बिधियों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है- १- क्षैतिज प्रारुप, २- उदगृ प्रारुप ।

(ख) लाभहानि खाता -

चिट्ठे के द्वारा किसी निशिचत तिथि को व्यवसाय की वित्तीय स्थिति को स्पष्ट किया जा सकता है । यह वित्तीय स्थिति उस रुप में कैसे पहुंची , इससे स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक व्यवसायिक लेन-देन का सम्पत्तियों एवं दायित्वों पर तुरन्त व प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और उनमें परिवर्तन हो जाता है । इस परिवर्तन को तत्काल् मापना सम्भव नहीं होता क्योंकि चिट्ठा तो एक विशेष तिथि को ही तैयार किया जाता है । यद्यपि दो अवधियों के चिट्ठों का विशलेषण करके वर्ष भर के सामूहिक परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है परन्तु प्रत्येक लेन-देन के प्रभाव का ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता । इस कभी को लाभ-हानि खाते के द्वारा पूरा किया जा सकता है ।

लाभ हानि खातें में एक लेखांकन अवधि की आयों की उनके अर्जन हेतु किये गये व्ययों से तुलना की जाती है तथा आय और व्ययों के अन्तर को उस अविध का शुद्ध लाभ अथवा हानि माना जाता है । आयों के अर्न्तगत उस अवधि की वास्तविक आयों में उन आयों को जो उपार्जित हो गई हैं किन्तु प्राप्त नहीं हुई है एवं जो प्राप्त हो गई है लेकिन कमाई नहीं गई हैं, का समायोजन किया जाता है । ठीक इसी प्रकार व्ययों में भभ् टछत्त एवं पूर्वदत्त व्ययों तथा गैर नकद व्ययों जैसे स्थायी सम्पत्तियों पर ह्रास , डूबत ऋण सचंय ,छूट आदि को भी समायोजित किया जाता है । अत: लाभ हानि खाता एक वित्तीय विवरण है जो किसी संस्था की एक लेखांकन अवधि के आगम एवं व्ययों को प्रस्तुत करता है तथा आय का व्यय पर आधिक्य अथवा व्यय का आय पर आधिक्य दर्शाता है । लाभ हानि खाता किसी से संस्था की एक विशेष अवधि के आगम एवं व्ययों का संक्षिप्त सारांश दर्शाता है और संस्था की लाभदायकता मापता है ।

लाभ हानि खाते का प्रारुप विभिन्न उद्योगों की प्रकृति एवं व्यवसायिक हित की भिन्नता के आधार पर भिन्न-भिन्न रुप में तैयार किया जाता है । सामान्यतया परम्परागत रुप से किसी संस्था के लाभा-हानि खाते को " T" के आधार में तैयार किया जाता है । इसे दो भागों - १- लाभ हानि खाता तथा, २- लाभा हानि नियोजन खाता , में विभाजित किया जाता है । लेकिन विश्लेषण के उद्देश्य से इसे चार भागों १- उत्पादन खाता, २- व्यापार खाता ,३- लाभाहानि खाता, ४- लाभहानि नियोजन खाता, में विभाजित किया जाता है । उत्पादन खाते से उत्पादन लागत, व्यापार खाते से सकल लाभ, लाभ-हानि खाते से शुद्ध लाभ तथा लाभ-हानि नियोजन खाते से लाभों के समायोजन से सम्बन्धित सूचनायें प्राप्त की जाती हैं। किसी भी व्यापारिक संस्था द्वारा लाभ हानि खाते का कोई भी प्रारुप रखा गया हो लेकिन इसमें संस्था की आय तथा व्यय की मदों को उचित शीर्षकों में वर्गीकृत करके दिखाया जाना चाहिये जिससे वे प्रबन्धकों के लिये अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सकें । इसके साथ ही संस्था की गतिविधयों का परिणाम स्पष्ट रुप से प्रदर्शित कर सकें ।

(ग) - संचालकों का प्रतिवेदन-

चिट्ठा एवं लाभहानि खाते के अध्ययन से उन कारणों की जानकारी प्राप्त हो जाती है जो उनकी वित्तीय स्थिति व प्रगति को प्रभावित करते हैं, इनका कारण यह है कि इन दोनों विवरणों में संस्था की वित्तिया स्थिति तथा लाभार्जन शक्ति की प्रगति के बारे में अनेक महत्वपूर्ण सूचनायें भी होती हैं। लेकिन किसी व्यावसायिक संस्था के विकास पर वित्तीय घटकों के अतिरिक्त अनेक सामाजिक, राजनैतिक व अनार्थिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है जिनका उल्लेख चिट्ढा एवं लाभ हानि खाते में नहीं होता है । संचालकों के प्रतिवेदन में इस प्रकार के कारणों का संस्था के विकास एवं प्रगति पर पड़ने वाले प्रभाव का पर्याप्त उल्लेख किया जाता है ।

भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा २१७(१) के अनुसार"१ कम्पनी की स्थिति विवरण के साथ संचालकीय प्रतिवेदन नत्थी करना आवश्यक होता है । संचालकीय प्रतिवेदन अन्तिम लेखों का एक आवश्यक अंग होता है, विश्लेषण कर्ता के लिए एक महत्वपूर्ण प्रलेख होता है तथा इससे व्यवसाय से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण बातों की सुचना मिलती है । संचालकों के प्रतिवेदन में निम्न बातों का समावेश होता है ।

(१) कम्पनी के व्यापार की स्थिति,

(२) संचालक मण्डल द्वारा विभिन्न कोषों में ले जाई जाने वाली प्रस्तावित राशि,

(३) लाभांश के रूप में वितरित की जाने वाली धनराशि की सिफारिश

(४) पिछले संचालकीय प्रतिवेदन से इस वित्तीय वर्ष के अन्त तक महत्वपूर्ण परिवर्तन जैसे- (अ) कम्पनी अथवा कम्पनी की सहायक कम्पनी के व्यापार की प्रकृति में हुये परिवर्तन, (ब) अंकेक्षक की रिपोर्ट में प्रदर्शित आपत्तिजनक बातों का स्पष्टीकरण इत्यादि ।

संचालक के प्रतिवेदन पर स्थिति विवरण में हस्ताक्षर करने वाले सभी संचालकों के हस्ताक्षर का होना आवश्यक होता है । यदि सभी संचालक यह अधिकार संचालक मण्डल के अध्यक्ष को दे देते हैं तो अध्यक्ष के हस्ताक्षर की पर्याप्त समझे जा सकते हैं ।

(घ) अंकेक्षक प्रतिवेदन-

एक अंकेक्षक की नियुक्ति, कम्पनी के अंश धारियों द्वारा कम्पनी के हिसाब- किताब की जांच करने के लिये, की जाती है । कम्पनी के कार्यो के सम्बन्ध में अंकेक्षक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता हैं । कभी- कभी अंकेक्षक की नियुक्ति संचालकों के द्वारा की जाती है । कम्पनी अधिनियम की धारा २२७(२) के अनुसार २, अंकेक्षक को स्वयं के द्वारा जांचे गये हिसाब- किताब और प्रत्येक चिट्ढा, लाभ हानि खाता तथा उके साथ नत्थी किये गये प्रलेखों के सम्बन्ध में जो कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्तुत किये जाते हैं, अपना प्रतिवेदन देना होता है । यह प्रतिवेदन अंकेक्षक प्रतिवेदन कहलाता है । इसके अन्तर्गत अग्रांकित पांच बातों का उल्लेख रहता है-

(१) उसकी सम्मति में उसको प्रापत सूचना व स्पष्टीकरण के अनुसार कम्पनी के खाते कम्पनी अधिनियम १९५६ के द्वारा वांछित सूचना देते हैं तथा (अ) कम्पनी का चिट्ढा उसके वित्तीय वर्ष के अन्त की आर्थिक स्थिति का एवं (ब) लाभ हानि खाता, वित्तीय वर्ष के लाभ और हानि का सच्चा और उचित चित्र प्रस्तुत करता है अथवा नहीं ।

(२) उसने वे सभी सूचनायें और स्पष्टीकरण प्राप्त कर लिये हैं जो उसकी जानकारी एवं विश्वास के लिये अंकेक्षण कार्य के लिये आवश्यक थी ।

(३) उसकी राय में कम्पनी ने कम्पनी अधिनियम के अनुसार, उचित पुस्तकें रखी हैं या नहीं और कम्पनी की जिन शाखाओं का उसने निरीक्षण नहीं किया है, उसने उचित विवरण प्राप्त हो गये हैं

(४) किसी शाखा के हिसाब किताब सम्बन्धी रिपोर्ट जिसे धारा २२८ के अनुसार कम्पनी अंकेक्षक के अतिरिक्त किसी अन्य अंकेक्षक के द्वारा अंकेक्षित किया गया है, उनको प्राप्त हुई है अथवा नहीं और अंकेक्षक ने अपनी रिपोर्ट तैयार करते समय किस प्रकार उसका प्रयोग किया है ।

(५) कम्पनी का चिट्ढा तथा लाभ हानि खाता उसकी पुस्तकों, खातों एवं विवरणों के अनुरूप हैं या नहीं ।

इसके अतिरिक्त अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में एक विवरण उक्त बातें के सम्बन्ध में भी देना होगा जो किन्द्रीय सरकार के द्वारा कम्पनी (संशोधित) अधिनियम १९६५ की धारा २२७(४A) के अन्तर्गत निर्धारित किया गया है । इसके अनुसार केन्द्रीय सरकार किसी भी कम्पनी को साधारण अथवा विशेष आदेश के द्वारा निश्चित बातों का विवतरण अंकेक्षण रिपोर्ट में सम्मलित करने की कह सकती है ।

(ड़) अध्यक्षीय भाषण

कम्पनी अधिनियम द्वारा, कम्पनी की साधारण सभा में अध्यक्ष भाषण दे यह अनिवार्य नहीं किन्तु वर्तमान समय में यह परम्परा बन गई है कि अन्य अन्तिम लेखों के साथ- साथ साधारण सभा में अध्यक्ष भाषण देता है । कम्पनी द्वारा गत वर्ष में अपना व्यापार किसी प्रकार संचालित किया है, कितनी तथा किस- किस क्षेत्र में प्रगति हुई है, कम्पनी के सामने क्या- क्या कठिनाईयां उपस्थित हुई हैं भविष्य में कम्पनी की क्या क्या कठिनाईयां हो सकती है ।तथा उन्हें किस प्रकार दूर करने का प्रयास किया जायेगा इत्यादि बातों की सूचना अध्यक्ष के भाषण से मिल सकती है ।

वास्तव में अध्यक्ष का भाषण उस संख्या का ही वर्णन नहीं होता बल्कि वह उस विशिष्ट उद्योग या देश की औद्योगिक स्थिति का एक चित्रण होता है। संस्था की उन्नति, प्रगति तथा कठिनाईयां इत्यादि जो भी बातें साधारण सभा में रखी जाती है । वे अप्रत्यक्ष रूप में उसी प्रकार के उद्योग के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन करते हैं । अत: इससे कई महत्वपूर्ण सूचनायें ,जैसे कम्पनी की प्रगति , कम्पनी की आर्थिक स्थिति , भविष्य में कम्पनी की रुपरेखा इत्यादि , प्राप्त हो जाती है ।ये सूचनायें वार्षिक लेखों से नहीं मिल पाती हैं। इसकी उपयोगिता इतनी अधिक होती है कि इसे विभिन्न समाचार पत्रों में छपाया जाता है एवं विज्ञापित किया जाता है जिससे उद्योग की प्रगति से

जहां एक ओर जनता में उसके अंशों को खरीदने की रुचि पैदा की जा सकें तथा दूसरी ओर इससे प्रजातांत्रिक व्यवस्था में अपनी तथा उद्योग की कठिनाइयां जनता और सरकार के सामने प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त होता है ।

किसी व्यावसायिक संस्था के वित्तीय विवरणों में विभिन्न व्यक्ति एवं संस्था रुचि रखते हैं, वित्तीय विवरण उन सभी के लिये भिन्न-भिन्न रुप में कार्य करते हैं। इनके महत्व का संक्षित्व विवेचन व्यक्तियों के सम्बन्ध में इस प्रकार है।

१- प्रबन्धकों के लिये -

प्रबन्ध को सुचारु रुप से अपनी क्रियाओं को सम्पादित करने के लिये अनेक प्रकार की विश्वसनीय तथा सही सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। इन सूचनाओं के अभाव में प्रबन्ध न तो कोई योजना बना सकता है और न ही संचालन एवं नियंत्रण का कार्य प्रभावी ढंग से निभा सकता है। इन विवरणों से उसे ज्ञात होता है कि व्यवसाय में निहित पूंजी का किस प्रकार से क्षमता पूर्वक प्रयोग हो सकता है, किस प्रकार से साख सम्बन्धी प्रमाप निशिचत किये जा सकते हैं तथा किस प्रकार वित्तीय स्थिति में सुधार किया जा सकता है । इस प्रकार वित्तीय विवरणों से प्रबन्धकों को लाभ कमाने में , सुदृढ़ वित्तीय स्थिति बनलाने में संचालन पर नियंत्रण करने में, बहुत अधिक सहायता मिलती है।

२- बैंकों के लिये -

बैंकिग व्यवसाय में लाभ-दर की मात्रा कम होने के कारण बैंक ऋण प्रदान करते समय बहुत सावधानी एवं सतर्कता बरतता है। बैंक ऋण देते समय यह विश्वास प्राप्त करना चाहता है कि ग्राहाकों को दिये गये ऋण न केवल पूर्ण रुप से प्राप्त हो जायेंगे बल्कि भुगतान तिथि पर प्राप्त हो जायेंगे । अत: बैंक ऋण देते समय अपने ग्राहक की वित्तिय स्थिति, विशेषरुप से साथ, शोधन क्षमता , लाभार्जन शक्ति इत्यादि के सम्बन्ध में विश्लेषणात्मक सूचना प्राप्त करना चाहता है। ये सूचनायें बैंको को वित्तीय विवरणें से प्राप्त हो जाती हैं। इस तरह वित्तीय विवरण बैंकों को अपने ग्राहक की साख विश्लेषण में सहायता देते हैं। आधुनिक युग में ग्राहकों की संख्या में वृद्धि तथा बैंकों की शाखाओं में वृद्धि से ग्राहक एवं बैकों के सम्बन्ध अवैयक्तिक होते जा रहे हैं। इतना ही नहीं बल्कि वर्तमान में बैंक न केवल अल्पकालीन ऋण प्रदान करते हैं बल्कि सामयिक मांगों के अनुसार

दीर्घकालीन ऋण भी प्रदान करने लगे हैं । ऐसी स्थिति में बैंक केवल यही नहीं जानना चाहता कि ग्राहक की स्थिति क्या है बल्कि ग्राहक की भावी योजनाओं व विकास के सम्बन्ध में भी ज्ञान प्राप्त करना चाहता है । इसके लिऐ बैंक केवल साख विश्लेषण ही नहीं वल्कि ग्राहक की नीति व योजना का विश्लेषण भी करता है । इस विश्लेषण के लिये आवश्यक सूचनायें वित्तीय विवरणों से प्राप्त होती है । इस प्रकार वित्तीय विवरण बैंक की ऋण देने के सम्बन्ध में निर्णय लेने में सहायक होते हैं ।

३- व्यापारिक ऋणदाताओं के लिये-

व्यापारिक ऋण से आशय एक व्यापारी द्वारा दूसरे व्यापारी को उधार माल-क्रय में स्थगित भुगतान की सुविधा प्रदान करना होता है। व्यापारिक ऋण के सम्बन्ध में लाभ मात्रा दर बैंकिग व्यवसाय की अपेक्षा अधिक होती है, इसके साथ ही व्यापारिक ऋणदाता का दृष्टिकोंण बैंक से भिन्न होता है। व्यापारिक ऋण देने का मुख्य उद्देश्य ग्राहक को ऐसा अवसर प्रदान करना होता है जिससे कि वह उधार पर खरीदे हुये माल का विक्रय करके ऋण का भुगतान कर सके । व्यापारिक ऋणदाता की सदैव यह कोशिश होती है कि उसके यहां अधिक से अधिक नये ग्राहक आयें और पुराने ग्राहक पहले की अपेक्षा अधिक माल खरीदें । इसी व्यवस्था से वह अधिक लाभ कमाने में सफल हों सकता है। लेकिन बैंक सदैव दिये गये ऋण पर ही ब्याज प्राप्त करता है। बैंक और व्यापारिक ऋणदाता के लाभ में इस अन्तर के कारण ही व्यापारिक ऋणदाता द्वारा प्रयुक्त साख प्रमाप बैंक द्वारा प्रयुक्त साख प्रमाप से कम व नीचा होता है। वर्तमान में प्रतियोगिता में क्रमश: वृद्धि होने के कारण व्यापारिक ऋण पर प्राप्त होने वाले लाभ की दर में भी कमी होती जा रही है इसीलिये व्यापारिक ऋणदाता भी यह अनुभव करने लगा है कि ग्राहकों की वित्तीय स्थिति की जांच अवश्य करनी चाहिये । ग्राहक की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ और संतोषजनक है, इसका पता लगाने के लिये वित्तीय विवरण महत्वपूर्ण सूचनायें उपलब्ध कराते हैं।

४- विनियोक्ता के लिये -

वित्तीय स्थिति के प्रित विनियोक्ता का जो दष्टिकोण है वह बैंक व व्यापारिक ऋणदाता से भिन्न ही होता । एक बार व्यापारिक संस्था से सम्बन्ध स्थापित कर लेने के बाद उसका हित दीर्घकालीन हो जाता है यदि विनियोक्ता अंशधारी के रुप में है तो उसका हित संस्था से जीवन पर्यन्त बना रहता है। यह वित्तीय विवरणों के आधार पर न केवल वर्तमान वित्तीय स्थिति व लाभार्जन क्षमता तथा प्रगति के विषय में ही जानकारी प्राप्त करता है बल्कि पूंजी- संरचना में भावी

परिवर्तन,भावी योजनायें, भावी विकास की सम्भावनायें आदि के विषय में ठोस राय प्राप्त करना चाहता है। इन सभी तथ्यों के विषय में पर्याप्त सूचना वित्तीय विवरणों से ही प्राप्त हो सकती है। यदि विनियोजक्ता ऋण पत्रधारी है तो उसका हित सीमित होता है। वह वित्तीय विवरणों का अध्ययन इस दृष्टि से करता है कि उसे इस बात का विश्वास हो जाये कि शोधन तिथि आने पर ऋणपत्रों का भुगतान संस्था द्वारा किया जा सकेगा। दूसरे शब्दों में, वह संस्था की दीर्घकालीन शोधन क्षमता के बारे में ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। कुछ सीमा तक वह संस्था की लाभार्जन शक्ति में भी रुचि रखता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिये वित्तीय विवरण काफी महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि उसी आधार पर ये व्यक्ति अपनी धारणा तथा रुचि के विषय में ठोस अनुमान लगा सकते हैं।

वित्तीय विश्लेषण की प्रमुख तकनीकें-

वित्तीय विवरण तथा लेखे सामान्य व्यावसायिक उद्देश्य से निर्मित किये जाते हैं यदि उन्हें उसी रुप में रहने दिया जाये तो उससे कोई भी निष्कर्ष प्रकट नहीं होते। लेकिन जब उन लेखों एवं विवरणों का विशलेषण तथा निर्वचन किया जाता है तब उनसे अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। सर्वप्रथम वित्तीय विवरणों तथा लेखों को उपयुक्त भागों में वर्गीकृत किया जाता है जिससे उन्हें सरलता पूर्वक समझा जा सके। इस क्रिया को वित्तीय विश्लेषण कहा जाता है। वित्तिय विश्लेषण के बाद निर्वचन का कार्य किया जाता है। जिसके अन्तर्गत विश्लेषण द्वारा सरलीकत समंकों का आलोचनात्मक परीक्षण किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। वास्तव में विश्लेषण तथा निर्वचन से ऐसे घनिष्ट रुप से सम्बद्ध क्रियायें हैं जिन्हें व्यावहारिक रुप से अलग करना सम्भव नहीं है, इसीलिये इन दोनों ही शब्दों कों व्यावहारिक रुप में एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। **फिने तथा मिलर के अनुसार,** "वित्तीय विश्लेषण में निशिचत योजनाओं के आधार पर तथ्यों को विभाजित करने,परिस्थितियों के अनुसार उसकी वर्ग रचना करने तथा सुविधजनक सरल पठनीय एवं समझने योग्य रुप में इन्हें प्रस्तुत करने की क्रियायें सम्मलित होती हैं।"[१]

किसी व्यवसाय की आर्थिक स्थिति तथा लाभार्जन क्षमता का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसके वित्तीय विवरणों की मदों में क्षैतिज अथवा लम्बवत/ विश्लेषण का अध्ययन करने के लिये

---

(1) प्रबन्धकीय लेखांकन - जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल पृ0क्र0 193

जिन उपायों का प्रयोग किया जाता है उन्हें वित्तीय विश्लेषण की तकनीक कहा जाता है। वित्तीय विश्लेषक द्वारा ऐसी अनेक तकनीकों का प्रयोग किया जाता है लेकिन जिन प्रमुख तकनीकों का प्रयोग बहुतायत से होता है वे अग्रांकित हैं।

अ- अनुपात विश्लेषण

ब- समविच्छेद बिन्दु तकनीक

स- रोकड़ एवं कोष प्रबाह विश्लेषण

इन तकनीकों का विस्तृत विवेचन इस प्रकार है -

(अ) अनुपात विश्लेषण -

किसी व्यवसाय को प्रभावित करने वाली आतंरिक तथा बाह्य घटनाओं, उसके परिचालन से सम्बन्धित व्यवहारों, परिचालन के परिणामों, पूर्व निर्धारित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को सूक्ष्म तथा सारांश रुप में प्रस्तुत करने के लिये अनुपात विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। साधारण शब्दों में जब दो संस्थाओं का परिमाणात्मक सम्बन्ध इस प्रकार ज्ञात किया जाये जिससे कि एक संख्या का दूसरी संख्या से सम्बन्ध दृष्टिगत होता हो तो इसे अनुपात कहते हैं। वित्तीय अनुपात का आशय वित्तीय विवरणों की किन्हीं दो या अधिक मदों के मध्य संख्यात्मक संबंध से होता है। जबकि अनुपात विश्लेषण विवरणों की मदों तथा मदों के समूह में सम्बन्ध निर्धारण एवं प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया है। यह सम्बन्ध लाभ-हानि खाते की दो मदों के बीच अथवा चिट्ठे की दो मदों के बीच अथवा एक चिट्ठा तथा दूसरी लाभहानि खाते की मद के बीच स्थापित किया जा सकता है। अनुपात को अग्रांकित तीन रुपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

१- अनुपात -

अनुपात दो संख्याओं के बीच सीधा तुलनात्मक सम्बन्ध बतलाने की एक विधि है। उदाहरण के लिये यदि व्यवसाय की चालू सम्पत्तियां १०,००,००० रु० की तथा चालू दायित्व ५,००,००० रु० के हैं तो चालू सम्पत्ति एवं चालू दायित्व का अनुपाल १०,००,००० , ५,००,००० या २:१ है।

२- दर -

इसके अर्न्तगत संखाओं के मध्य सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिये यह कहा जाता है कि पहली संख्या दूसरी संख्या का कितना गुना है। ऊपर दिये गये उदाहरण में चालू सम्पत्तियां

१०,००,००० रु० की एवं चालू दायित्व ५,००,००० रु० के हैं, अत: ऐसी स्थिति में यह कहा जायेगा कि चालू सम्पत्तियां चालू दायित्व से दो गुना है ।

३- प्रतिशत :-

इसके अन्तर्गत दो मदों के सम्बन्ध को सैकड़ो के रुप में व्यक्त किया जाता है । उपर्युक्त् उदाहरण में चालू सम्पत्ति १०,००,००० रु० की हैं तथा चालू दायित्व ५,००,००० रु०के हैं, जिसे प्रतिशत के रुप में यह कहा जायेगा कि चालू दायित्व चालू सम्पत्तियों के ५०% हैं ।

वित्तीय विवरणों में प्रदत्त व्यावसायिक तथ्यों का अपने आप में कोई महत्व नहीं होता है । ये एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं । अत: उनके आधार पर कोई भी उचित निष्कर्ष तब तक नहीं निकाला जा सकता जब तक कि विभिन्न मदों के मध्य अन्तर्सवंध स्थापित न किया जाये । अनुपात इस उद्देश्य को पूरा करते हैं । इन अनुपातों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर व्यवसाय की प्रगित अथवा अवनति के बारे में अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं । इन अनुपातों की सहायता से बड़े - बड़े अंकों को सरल व संक्षितप्त करना संभव हो जातात है, जिससे इनमें निहित अर्थों को आसानी से समझा जा सकता है । अनुपातों के आधार पर संस्था से सम्बन्ध रखने वाले बाहरी पक्ष तथा विनियोक्ता, अंशधारी , पूर्तिकर्ता तथा लेनदार आदि को संस्था की आर्थिक स्थिति की सम्पूर्ण जानकारी मिल जाती है । प्रबन्ध के लिये भी अनुपातों का प्रयोग उसके महत्वपूर्ण कार्यो जैसे- पूर्वानुमान , नियोजन, समन्वय, नियंत्रण तथा संवहन में सहायता पहुंचाता है । अनुपात विश्लेषण से विभिन्न पक्षकारों को, तरलता की स्थिति, दीर्घकालीन शोधन क्षमता, परिचालन कुशलता तथा लाभ दायकता, कार्यकुशलता की तुलनात्मक स्थिति , व्यवस्थापिक प्रवृति की स्थिति , बजट एवं नियंत्रण की सफलता, प्रतिमानों की स्थापना आदि के बारे में महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त हो जाती हैं ।

(ब) सम-विच्छेद बिन्दु तकनीक -

आधुनिक युग में किसी भी व्यावसायिक संस्था की सफलता का माप उसके द्वारा अर्जित लाभ की मात्रा होती है । इसीलिये लगभग सभी संस्थाओं का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है । लाभ की यह मात्रा अनेक तत्वों से प्रभावित होती है । इसके अर्न्तगत वस्तु की लागत, विक्रय की मात्रा तथा विक्रय मूल्य प्रमुख होते हैं । इन तत्वों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । जो लागत उत्पादन मात्रा पर निर्भर करती है तथा उत्पादन मात्रा अन्य बातों के साथ-साथ वस्तु के

विक्रय मूल्य एवं उसकी मांग पर निर्भर करती है जबकि लाभ वस्तु के विक्रय मूल्य एवं लागत पर निर्भर करता है । इस तरह हम यह कह सकते हैं कि किसी वस्तु की उत्पादन मात्रा , लागत, लाभ व विक्रय मूल्य में गहरा सम्बन्ध होता है । जब कोई लेखापाल उत्पादन के किसी भी स्तर पर इन तत्वों का विश्लेषण करके इनमें आपस में सम्बन्ध स्थापित करता है । तो उसे लागत-मात्र-लाभ विश्लेषण कहते है । यह सम-विच्छेद विश्लेषण भी कहलाता है क्यों कि उत्पादन का एक स्तर ऐसा भी होता है जहां कुल लागत एवं कुल विक्रय मूल्य बरावर होता है। अत: समविच्छेद विश्लेषण किसी व्यावसायिक संस्था की विक्रय मात्रा के संबंध में उसकी आगमों एवं लागतों का विश्लेषण करके विक्रय के विभिन स्तरों पर लाभ की स्थिति का अध्ययन करने की तकनीक है । **केलर तथा फरेरा के अनुसार,** " किसी कम्पनी या किसी इकाई का सम बिच्छेद बिन्दू विक्रय आय का वह स्तर है जो इसकी स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के बराबर हों ।"[१] लागत मात्रा-लाभ संबंध का अध्ययन करने के लिये अग्रांकित विधियों का प्रयोग किया जाता है-

(१) अंशदान-

अंशदान विक्रय मूल्य एवं विक्रय की सीमांत लागत का अन्तर होता है । यह एक प्रकार का कोष है जिसका उपयोग पहले स्थिर व्ययों की पूर्ति करने में किया जाता है तथा शेष व्यवसाय के लाभ का भाग होता है । इस प्रकार स्थिर लागतों एवं लाभों का योग भी अंशदान कहलाता है । इसे सूत्र के रुप में निम्नुसार व्यक्त किया जा सकता है-

(अ) अंशदान = विक्रय - परिवर्तनशील लागत

अथवा

(ब) अंशदान = स्थिर लागत् + लाभ

(२) लाभ-मात्रा अनुपात -

विक्री में होने वाले परिवर्तनों के कारण लाभ की मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह जानने के लिये लाभ-मात्रा अनुपात का अध्ययन किया जाता है । यह अंशदान का विक्रयमूल्य से अनुपात है जिसे प्रितशत के रुप में भी व्यक्त किया जाता है । इसे लाभ-मात्रा अनुपात के स्थान पर अंशदान विक्रय अनुपात भी कहा जाता है । साधारणतया लाभ-मात्रा अनुपात की गणना समविच्छेद बिन्दु व सुरक्षा उपांत के साथ की जाती है । लाभ-मात्रा अनुपात की गणना निम्न सूत्रों के माध्यम से की जाती है-

---

(1) प्रबन्धकीय लेखांकन - जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल - पृ0क्र0 508

(अ) $$\text{लाभ - मात्रा अनुपात} = \frac{\text{अंशदान}}{\text{विक्रय}} \times 100$$

(ब) $$\text{लाभ - मात्रा अनुपात} = \frac{\text{विक्रय - परिवर्तशील लागत}}{\text{विक्रय}} \times 100$$

(स) $$\text{लाभ - मात्रा अनुपात} = \frac{\text{स्थिर लागत} + \text{लाभ}}{\text{विक्रय}} \times 100$$

(द) $$\text{लाभ मात्रा अनुपात} = १ - \frac{\text{परिवर्तनशील लागत}}{\text{विक्रय}} \times 100$$

३- समविच्छेदन बिन्दु -

किसी व्यावसायिक संस्था में सम-विच्छेद बिन्दु क्रियाशीलता विक्रय मात्रा का वह बिन्दु होता है जहां कुल आगम और कुल व्यय बराबर होते हैं, इस बिन्दु पर न तो लाभ होता है और न हानि होती है। अर्थात् यह विक्रय की वह मात्रा है जिसमें परिवर्तनशील लागतों को घटाने के बाद शेषराशि स्थिर लागतों के बराबर होती है। इस बिन्दु से कम उत्पादन होने पर व्यवसाय में हानि होने लगती है तथा अधिक उत्पादन करनें पर लाभ होता है। इसकी गणना निम्नांकित सूत्रों के माध्यम से की जा सकती है।

१- $$\text{सम-विच्छेद बिन्दु} = \frac{\text{स्थिर लागतें}}{\text{प्रति इकाई अंशदान}} \quad \text{(इकाईयों में समविच्छेद बिन्दु)}$$

२- $$\text{सम-विच्छेद बिन्दु (मूल्य में)} = \frac{\text{स्थिर लागतें} \times \text{प्रति इकाई विक्रय मूल्य}}{\text{अंशदान प्रति इकाई}}$$

३- $$\text{सम विच्छेद बिन्दु (मूल्य में)} = \frac{\text{स्थिर लागतें} \times \text{कुल विक्रय}}{\text{कुल विक्रय - कुल परिवर्तनशील व्यय}}$$

४- $$\text{सम विच्छेद बिन्दु (मूल्य में)} = \frac{\text{स्थिर लागतें}}{\text{लाभ - मात्रा अनुपात}}$$

सम विच्छेद विश्लेषण किसी व्यवसायिक संस्था के लाभों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। इसके अन्तर्गत सम विच्छेद बिन्दु तथा सुरक्षा सीमा के आधार पर व्यवसायिक दशाओं के प्रत्याशित परिवर्ततों पर अर्थात विक्रय, लागत व्यवहार आदि परिवर्तनों पर संस्था की लाभार्जन क्षमता की जांच की जा सकती है। प्रबन्धकीय दृष्टिकोण से सम विच्छेद विश्लेषण कां अत्याधिक

प्रयोग होता है । इसके द्वारा प्रबन्धक अनेक निर्णय लेने में सफल होते हैं, जैसे - १- विभिन्न विक्रय मात्राओं पर लाभ की गणना, २- इच्छित लाभ कमाने हेतु विक्रय राशि का निर्धारण,३- अनुमानित व्ययों की पूर्ति हेतु आवश्यक विक्रय मात्रा की गणना,४- विक्रय मूल्यों में कमी होने पर आवश्क विक्रय की मात्रा , ५- लागतों में परिवर्तनों के प्रभाव को दूर करने हेतु विक्रय मात्रा या विक्रय मूल्य में परिवर्तन, ६- लाभ-कारकों में परिवर्तन के प्रभावों का अध्ययन, ७- अनुकूलतम विक्रय मिश्रण का निर्धारण, ८- अन्त: फर्म तुलना, ९- सर्वाधिक लाभप्रद विकल्पों का चयन इत्यादि ।

(स) रोकड़ एवं कोष प्रवाह विश्लेषण-

किसी भी व्यवसाय में यह जानना आवश्यकता होता है कि किन-किल साधनों से कितनी रोकड़ आई है तथा किन-किन साधनों पर रोकड़ व्यय हुई है । अत: रोकड़ के आगमन तथा बिहर्गमन का ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यवसाय में एक विवरण तैयार किया जाता है जिसे रोकड़ प्रवाह विवरण कहते हैं। यह विवरण किन्हीं दो अविधयों के बीच व्यवसाय के रोकड़ शेष में हुये परिवर्तन के कारणों की व्याख्या करता है । रोकड़ प्रवाह विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक संस्था के रोकड़ साधनों का किस प्रकार उपयोग किया गया है । इसी के आधार पर भविष्य के रोकड़ सम्बन्धी अनुमान लगाकर उसके आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती है । इस प्रकार रोकड़ प्रवाह विवरण अल्पकालीन वित्तीय परिवर्तनों की जांच करने की एक महत्वपूर्ण तकनीक है । रोकड़ प्रवाह विवरण, वित्तीय नीतियों के नियोजन एवं समन्वय में सहायता प्रदान करते हैं, नियंत्रण में सहायक होते हैं, आंतरिक वित्तीय प्रबन्ध में सहायक होते हैं, रोकड़ परिवर्तनों की जानकारी देते हैं, अल्पकालीन वित्तीय निर्णयों में सहायता करते हैं ।

रोकड़ प्रवाह विवरण में रोकड़ के आने तथा रोकड़ के जाने का वर्णन किया जाता है । इसके अन्तर्गत एक ओर उन सभी साधनों का वर्णन किया जाता है जिनसे रोकड़ व्यवसाय में आती है और दूसरी ओर उन सभी साधनों का वर्णन किया जाता है जिन पर रोकड़ व्यय की जाती है । व्यवसाय में जिन साधनों से रोकड़ आती है उनमें ,अंशपूजी ,स्थायी व चालू दायित्वों में वृद्धि , सम्पत्तियों में कभी, संचालन क्रियाओं से आय इत्यादि, साधन प्रमुख हैं । व्यवसाय में जिन प्रमुख मदों पर रोकड़ का भुगतान किया जाता है वे रोकड़ के उपयोग कहलाते हैं, इसके अन्तर्गत , सम्पत्तियों में वृद्धि अथवा क्रय, अंशपूंजी में कमी या भुगतान व्यवसाय संचालन एवं असंचालन सम्बन्धी भुगतान आदि, मदें सम्मलित होती हैं ।

कोष प्रवाह विवरण किसी व्यावसायिक संस्था के वित्तीय संचालन का एक प्रतिवेदन होता है, जिसमें यह स्पष्ट किया जाता है कि विगत अवधि में कितनी मात्रा में तथा किन-किन साधनों से कोषों की व्यवस्था की व्यवसाय में की गई है तथा इस प्रकार प्राप्त कोषों का कौन-कौन सी मदों में उपयोग किया गया है ।

फाउल्के के अनुसार, " कोषों के साधनों और उपयोगों का विवरण दो तिथियों के बीच किसी व्यावसायिक संस्था की वित्तीय स्थिति में होने वाले परिवर्तनों को प्रदर्शित करने की एक तकनीकी विधि है ।"[१]

कोष का आशय शुद्ध कार्यशील पूंजी से होता है इसलिये कार्यशील पूंजी में परिवर्तन करने वाली सभी व्यावसायिक मदें कोष् में सम्मिलित की जाती हैं । जो व्यावसायिक मदें कार्यशील पूंजी में वृद्धि करती हैं, उन्हें कोष का साधन तथा जो मदें कार्यशील पूंजी में कमी करती हैं उन्हें कोष का उपयोग माना जाता है । अध्ययन की सुबिघा के लिये कोष के साधन एवं उपयोग को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया हैं:-

कोष के साधन एवं उपयोग

कोष के साधन	कोष के उपयोग
१- परिचालन से लाभ	१- परिचालन से हानि
२- दीर्घकालीन दायित्वों की वृद्धि	२- दीर्घकालीन दायित्वों में कमी
(१)- दीर्घकालीन ऋण ,	(१) दीर्घकालीन ऋणों का भुगतान
(२)- ऋणपत्र निर्गमन	(२) ऋणपत्रों का शोधन
३- पूंजी कोष में वृद्धि	३- पूंजी कोष में कमी
(१) अंशों का निर्गमन	(१)- पूर्वाधिकार अंशों का शोधन
(२) रोकी गई अर्जनें	(२) लाभांश का भुगतान
४- स्थायी सम्पत्तियों का विक्रय	४- स्थायी सम्पित्तयों का क्रय
(१) दीर्घकालीन विनियोग	(१) दीर्घकालीन विनियोग
(२) भूमि ,भवन ,संपत्र इत्यादि	(२) भूमि,भवन संयत्र इत्यादि
(३) ख्याति,एकरच इत्यादि	(३) ख्याति,एकस्व इत्यादि
५- गैर व्यापारिक प्राप्तियां (१) विनियोगों से आय, प्राप्त लाभांश आदि	५- गैर व्यापारिक भुगतान
	(१) गबन से हानि, हर्जाना इत्यादि
(२) दान,उपहार इत्यादि ।	(२) दान इत्यादि

(1) प्रबन्ध लेखांकन - एम0आर0 अग्रवाल - पृ0क्र0 253

कोष प्रबाह विवरण एक निशिचंत अवधि में कार्यशील पूंजी में हुये परिवर्तनों को ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से बनाया जाता है । इसकी सहायता से अनेक ऐसे मूल प्रश्नों के उत्तर दिये जा सकते हैं जो केवल वित्तीय विवरण के आधार पर सम्भव नहीं होते हैं। इसलिये व्यवसाय के अल्पकालीन ऋणदाता,बैंकर ,अंशधारी तथा प्रबन्धकों को इससे अनेक महत्वपूर्ण सूचनायें उपलब्ध होती हैं जिनमें उनकी रुचि होती है । कोष प्रवाह विवरण से, व्यवसाय की वर्तमान वित्तीय स्थिति की सुदृढ़ता का निर्धारण सम्भव हो जाता है ,प्रभावी वित्तीय नियोजन एवं अनुमानित बजट निर्माण में सहायता मिलती है, बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने में सहायता मिलती है, संस्था में रुचि रखने वाले पक्षकारों को प्रबन्धकीय नीतियों की जानकारी मिलती है, चिट्ठा तथा लाभहानि खाते की तुलना करने में सहायता मिलती है, व्यावसायिक समस्याओं को जानने में भी सहायता मिलती है, अर्थशास्त्रीय विश्लेषण भी सम्भव हो जाता है ।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में विश्लेषण की उपरोक्त तकनीकों का उपयोग -

(१) ग्वालियर रेयान -

इस संस्था द्वारा लाभदायकता अनुपातों के अन्तर्गत जिन अनुपातों का प्रयोग किया गया है उनमें संचालन लाभ ह्रास , ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व / संचालन आय (प्रतिशत में) अध्ययन अवधि अर्थात् वर्ष १९१-९२, १९२-९३ तथा १९९३-९४ में क्रमशः १८.४७ प्रतिशत ,१५.१५प्रतिशत, एवं १७.५५ प्रितशत रहा है । कर/ करके पूर्व लाभ का अनुपात क्रमशः ३१.०६ प्रतिशत १०.६० प्रतिशत , ८.९० प्रतिशत रहा है कर चुकाने के बाद लाभ /संचालन आय का अनुपात क्रमशः ८.६० प्रतिशत , ९.४९ प्रतिशत तथा १२.१४ प्रतिशत रहा है । संचालन लाभ ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व/ उत्पादित पूंजी विनियोजित अनुपात क्रमशः २५.४६ प्रतिशत १०.४५ प्रतिशत एवं १८.९४ प्रतिशत रहा है । ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व लाभ/विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमशः २०.०५ प्रतिशत, ११.४८ प्रतिशत तथा १८.८३ प्रतिशत रहा है। कर चुकाने के बाद लाभ/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः २१.७५ प्रतिशत ,१५.९६ प्रतिशत तथा २१.५२ प्रतिशत रहा है । दंतिकरण अनुपात के अन्तर्गत कुल ऋण/ शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः २.०३ गुना, १.३२ गुना एवं

१.३२ गुना रहा है। दीर्घकालीन ऋण/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः १.८६ गुना, १.२० गुना तथा १.०२ गुना रहा है।

(२) जे०के० टायर -

इस संस्था द्वारा लाभदायक अनुपातों के अन्तर्गत जिन अनुपातों का प्रयोग किया गया है उनमें संचालन लाभ ह्रास,ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व/संचालन आय अनुपात अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ तथा १९३-९४ में क्रमशः २०.७० प्रतिशत,१९.०९ प्रतिशत एवं ११.२० प्रतिशत रहा है कर/ कर के पूर्व लाभ का अनुपात नहीं निकाला गया है। कर चुकाने के बाद के लाभ /संचालन आय का अनुपात क्रमशः ४.०५ प्रतिशत, १.४२ प्रतिशत एवं १.२१ प्रतिशत रहा है। संचालन लाभ ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व/उत्पादित विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमशः १०.१० प्रतिशत ,९.९२ प्रतिशत एवं ९५७ प्रतिशत रहा है। ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व के लाभ/विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमशः १०.९२ प्रतिशत , ९.०२ प्रतिशत एवं ८.९४ प्रतिशत रहा है। कर चुकाने के बाद लाभ/ शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः ५.३३ प्रतिशत ,२.०७ प्रतिशत एवं २.६१ प्रतिशत रहा है। दंतिकरण अनुपातों के अन्तर्गत कुल ऋण /शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः ०.८१ गुना १.३७ गुना एवं ०.९३ गुना रहा है। दीर्घकालीन ऋण/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः ०.७१ गुना, १.२७ गुना एवं १.७५ गुना रहा है ।

(३) गोदरेज-

इस संस्था द्वारा लाभदायकता अनुपातों के अर्न्तगत जिन अनुपातों का प्रयोग किया गया है उनमें संचालन लाभ ह्रास,ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व । संचालन आय अनुपात अध्ययन अवधि वर्ष १९९१-९२,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः ७.२० प्रतिशत, ०.६८ प्रतिशत एवं १०.३६ प्रतिशत रहा है । कर/कर चुकाने के पूर्व लाभ अनुपात क्रमशः ०.४९ प्रतिशत ,०.१७ प्रतिशत एवं १८.५२ प्रतिशत रहा है। कर चुकान के पश्चात् लाभ/संचालन आय अनुपात क्रमश २.१२ प्रतिशत, ७.८९ प्रतिशत एवं ६.७१ प्रतिशत रहा है। संचालन लाभ कर एवं ब्याज चुकाने के पूर्व/उत्पादित विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमशः १८.२९ प्रतिशत,३.२३ प्रतिशत ऋणात्मक,एवं १८.६४ प्रतिशत रहा है।ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व लाभ/विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमशः २१.४५ प्रतिशत , २६.८४ प्रतिशत, एवं १८.८८ प्रतिशत रहा है। कर चुकाने के पश्चात् लाभ/शुद्ध

सम्पत्ति अनुपात क्रमश: १९.२९ प्रतिशत, ३६.७५ प्रतिशत एवं १३.१७ प्रतिशत रहा है। दन्तिकरण अनुपातों के अन्तर्गत कुल ऋण / शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमश: २.७३ गुना , १.९२ गुना एवं ०.६२ गुना रहा है: दीर्घकालीन ऋण/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमश: ०.९० गुना, ३६.७५ गुना एवं १३.१७ रहा है।

(४) पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) -

इस संस्था द्वारा लाभ दायकता अनुपातों के अन्तर्गत जिन अनुपातों का प्रयोग किया गया है उनमें संचालन लाभ ह्रास , ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व/संचालन आय अनुपात अध्ययन अवधि वर्ष १९९१-९२ , १९९२-९३ एवं वर्ष १९९३-९४ में क्रमश: २०.५१ प्रतिशत, १५.२८ प्रतिशत एवं १२.६० प्रतिशत रहा है। कर/कर चुकाने के पूर्व लाभ क्रमश: ४.३५ प्रतिशत, १०.३४ प्रतिशत , एवं १८.७३ प्रतिशत रहा है । कर चुकाने के पश्चात् लाभ/ संचालन आय अनुपात क्रमश: ११.७९ प्रतिशत, ५.२५ प्रतिशम एवं २.९३ प्रतिशत रहा है। कर एवं ब्याज चुकाने के पूर्व के संचालन आय/उत्पादित विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमश: १७.१८ प्रतिशत १३.७२ प्रतिशत एवं १५.६५ प्रतिशत रहा है। कर एवं ब्याज चुकाने के पूर्व के लाभ । विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमश: १७.५ प्रतिशत, १४.३९ प्रतिशत एवं १५.२८ प्रतिशत रहा है। कर चुकाने के पश्चात लाभ /शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमश: २४.४२ प्रतिशत, १४.२१ प्रतिशत एवं १०.२८ प्रतिशत रहा है। दंतिकरण अनुपातों के अन्तर्गत कुल ऋण / शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमश: १.२१ गुना , १.२२ गुना एवं १.२८ गुना रहा है। दीर्घकालीन ऋण /शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमश: ०.९१ गुना, ०.८० गुना एवं ०.७४ गुना रहा है।

(५) कैडबरीज -

इस संस्था द्वारा लाभदायकता अनुपातों के अन्तर्गत जिन अनुपातों का प्रयोग किया गया है उनमें संचालन लाभ ह्रास , ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व/ संचालन आय अनुपात अध्ययन अविध वर्ष १९९१-९२ ,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश: ९.८३ प्रतिशत ५.०४ प्रतिशत एवं ४.७३ प्रतिशत रहा है । कर/कर चुकाने के पूर्व लाभ अनुपात क्रमश: ५२.५३ प्रतिशत ,४७.५७ प्रतिशत एवं ३५.६२ प्रतिशत रहा है। कर चुकाने के बाद लाभ । संचालन आय अनुपात क्रमश २.६० प्रतिशत , ०.८७ प्रतिशत एवं ५.०९ प्रतिशत रहा है। ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व संचालन लाभ

/उत्पादित विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमशः २३.२० प्रतिशत , ५.१५ प्रतिशत एवं ५.४९ प्रतिशत रहा है । ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व लाभ / विनियोजित पूंजी अनुपात क्रमशः २३.८४ प्रतिशत , ९.९२ प्रतिशत एवं १८.८२ प्रतिशत रहा है । कर चुकाने के बाद लाभ/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः १३.८१ प्रतिशत, २.०७ प्रतिशत एवं १२.२९ प्रतिशत रहा है । दन्तिकरण के अनुपातों के अन्तर्गत कुल ऋण / शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः ०.८५ गुना ,०.३१ गुना एवं ०.३३ गुना रहा है। दीर्घकालीन ऋण/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात क्रमशः ०.५४ गुना ०.१३ गुना एवं ०.०५ गुना रहा है ।

(६) ग्वालियर दुग्ध संघ -

इस संस्था ने अपने स्थापन काल से ही कोई भी लाभ अर्जित् नहीं किया है इसलिये संस्था द्वारा इस प्रकार के अनुपातों का प्रयोग नहीं किया गया है ।

षष्ठम् अध्याय

लागत लेखा तकनीकें

१- बजिटंग - अवधारणा एवं महत्व

२- प्रमाप लागत एवं प्रबन्धकीय उपयोग

३- सीमान्त लागत एवं प्रबन्धकीय निर्णय

४- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में वजटिंग, प्रमाप लागत तथा सीमांत लागत तकनीकों का उपयोग एवं मूल्यांकन

लागत लेखांकन, लेखांकन की एक विशिष्ट शाखा है जिसका प्रयोग प्रमुख रुप से निर्माण तथा सेवा प्रदान करने वाली संस्थाओं द्वारा किया जाता है। इसमें उत्पादन तथा विक्री से सम्बधित व्ययों का ऐसा विश्लेषण तथा वर्गीकरण किया जाता है जिससे उत्पादित वस्तु तथा प्रदान की जाने वाली सेवा की प्रति इकाई लागत सही-सही मालूम हो सके। लागत लेखे लागतों पर नियंत्रण रखने में तथा प्रबन्धकों द्वारा विभिन्न प्रभावी तथा महत्वपूर्ण निर्णय लेने में अत्यधिक योगदान देते हैं ।

आई०सी०एम०ए० लन्दन - ने लागत लेखांकन को परिभाषित करते हुये लिखा है कि, "उस बिन्दु से , जहां पर व्यय किया गया है अथवा किया गया माना गया है, लागत केन्द्रों तथा लागत इकाईयों से अन्तिम सम्बन्ध स्थापित करने तक की लागत के लिये लेखा करने की प्रक्रिया को लागत लेखांकन कहते हैं। इसके विस्तृत प्रयोग में, सांख्यिकीय समंकों की तैयारी, लागत नियन्त्रण की पद्धतियों का प्रयोग तथा कार्यान्वित अथवा नियोजित क्रियाओं की लाभकारिता सम्मलित हो जाती है।"[१]

व्यवसाय कई प्रकार के होते हैं तथा उनका हिसाब - किताब भी उस व्यवसाय की प्रक्रंति के अनुसार अलग-अलग रखा जाता है। लेकिन लेखांकन पद्धति अलग-अलग होने पर भी उन सभी व्यवसायों में लेखांकन करने का सिद्धान्त एक ही लागू होता है। जैसे,वित्तीय लेखांकन के अन्तर्गत हम एक ही प्रकार की पुस्तकें तथा खाते इस प्रकार से नहीं रख सकते जो एक बैंक, रेलवे कम्पनी, थोक व्यापारी अथवा फुटकर व्यापारी को एक समान ही उपयुक्त हों। उसी तरह से लागत लेखांकन पद्धति में हम कोई एक ऐसी पद्धति नहीं अपना सकते हैं जो मशीन, साबुन , तेल अथवा कोयले के उत्पादन में एक ही प्रकार से लागू हो सके। इसीलिये लागत लेखांकन की विंभिन्न पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है।

लागत लेखा तकनीकें:-

लागत लेखा तकनीकों का विस्तृत विवरण निम्नानुसार है -

बजटिंग- अवधारणा एवं महत्व -

आधुनिक गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा के इस युग में प्रत्येक व्यवसायी को सफलता प्राप्त करनें के लिये कम से कम लागत पर अच्छी से अच्छी वस्तुओं का उत्पादन करना पड़ता है । इसी स्थिति में

---

(1) परिव्यय लेखांकन - एम0एल0 अग्रवाल- पृ0क्र0 -6

कोई भी संख्या अधिकतम लाभ अर्जित करनें में सफल हो सकती है। इसके लिये यह आवश्यक होता है कि भविष्य में उत्पादित होने वाली वस्तु की लागत का समुचित नियोजन तथा प्रभावी नियन्त्रण रखा जावें । इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विभिन्न व्यक्तियों ,विभागों, क्रियाओं तथा साधनों में उचित समन्वय स्थापित किया जायें । इस तरह के तीन , आधारभूत कार्य -नियोजन , समन्वय एवं नियन्त्रण है । इन कार्यो को सफलता पूर्वक सम्पादित करनें के लिये बजटिंग तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

बजट एक निश्चित अवधि के लिसे किसी व्यवसायिक सांस्था की कुछ अथवा समस्त् क्रियाओं के सम्बन्ध में क्रमवद्ध आधार पर एक नियोजित भावी आवश्यकताओं का पूर्वानुमान होता है अर्थात इसमें भविष्य की क्रय -विक्रय, आय-व्यय इत्यादि की योजनायें बनाकर समस्त क्रिय-कलापों का निर्धारण किया जाता है। बजट के द्वारा व्यवसाय की अनिशितताओं को दूर करके अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने का - प्रयास किया जाता है। **प्रो० सेण्डर्स के शब्दों में,** " किसी विशिष्ट भावी अवधि से सम्बन्धित व्यावसायिक क्रियाओं की विस्तृत योजना को बजट कहते हैं, इसके साथ-साथ लेखाकरण की ऐसी पद्धति अपनाई जाती है जिससे योजना पर पूर्ण नियंत्रण रह सकें।"[१]

जॉर्ज आर० टेरी के अनुसार " बजट भविष्य की आवश्यकताओं का अनुमान है जो एक उपक्रम की ,एक समय की निशित अवधि के लिये कुछ या सभी गतिविधियों को सम्मिलत करता हुआ क्रमबद्ध आधार के अनुसार व्यवस्थित है ।"[२]

बजट एक प्रकार से प्रबन्ध की इच्छाओं की अभिव्यक्ति है। बजट संस्था की नीतियों एवं योजनाओं का पथप्रदर्शन है। इसका मुख्य उद्देश्य नियोजन तथा संस्था की क्रियाओं को समय-समय पर नियोजित करने में मदद देना होता है । बजट संदेश-वाहन का प्रभावी साधन होता है तथा बजट के माध्यम से प्रबन्ध तथा प्रशासन अपनी नीतियों को संगठन तक पहुंचाने में सफल होता है। बजट नियंत्रण का उद्देश्य संस्था के कार्यो को मितव्ययिता एवं कुशलता से संचालित करके उपलब्ध साधनों में तालमेल स्थापित करना है। बजट प्रबन्ध की नियंत्रण प्रक्रिया को प्रभावी बनाता है तथा व्यवसाय से सम्बन्धित सामग्री, श्रम तथा वित्तीय साधनों पर कुशल नियंत्रण की व्यवस्था प्रदान करता है।

---

(1) प्रबन्धकीय लेखांकन - जे0 के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल पृ0क्र0 8.5
(2) - तदैव - पृ0क्र0 8.5

बजट नियंत्रण लागतों की नियंत्रित करके लाभों की अधिकतम करने के लिये प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी उपकरण बन गया है। इसके माध्यम से निरीक्षण ,शोध नियोजन,निर्णय तथा नियंत्रण जैसे माध्यमों से पूर्व निर्धारित लक्ष्यों से उत्पन्न विचलनों में सुधार किया जा सकता है। यह संगठन संरचना में दोषों को स्पष्ट करता है तथा व्यर्थ के व्ययों पर नियंत्रण करता है । इस तरह बजट नियंत्रण नियोजन में सुधार करता है, समन्वय में मदद देता है तथा नियंत्रण में सहायक होता है। अग्रांकित विन्दुओं के माध्यम से बजट के महत्व को स्पष्ट किया जा सकता है-

१- पूर्व नियोजन का लाभ -

प्रबन्धक को बजट प्रणाली व्यापार की भावी योजनाओं पर पहले से ही विचार करने के लिये प्रोत्साहित करती है, जिससे प्रबन्धक व्यापार की भावी समस्याओं के प्रति पहले से ही जागरुक हो जाता है। इस प्रणाली में बजट काल प्रारम्भ होने से पहले ही व्यवसाय की नीतियों तथा कार्यक्रमों पर विचार-विमर्श किया जाता है। जिससे भविष्य के लिये योजनायें बनाने में मदद् मिलती है।

२- व्यावसायिक क्रियाओं में स्थायित्व -

इसमें व्यावसायिक क्रियाओं सामयिक तथा मौसमी परिवर्तनों से दूर करके व्यावसायिक चक्रों के दुष्प्रभाव से बचाने के उद्देश्य से बजट की विभिन्न अवधियों में विभाजित कर दिया जाता है। इस प्रकार व्यावसायिक क्रियाओं में स्थायित्व लाने में मदद् मिलती है।

३- उद्देश्यों का स्पष्टीकरण-

इस प्रणाली के अर्न्तगत प्रत्येक व्यवसायिक क्रिया के उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं। संस्था के कर्मचारियों को अपने कार्य क्षेत्र , कार्यमात्रा तथा अधिकार सीमा के संदर्भ में कोंई भ्रम नहीं रहता है। व्यवसाय को सुचारु रुप से चलाने के लिये यह आवश्यक है कि इन बातों का स्पष्टीकरण हो जाये।

४- साधनों का सही उपयोग-

बजट नियंत्रण प्रणाली में व्यावसायिक संस्था के साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग किया जाता है । सामग्री, श्रय तथा अन्य व्ययों के अपव्यय की सम्भावना बहुत ही कम हो जाती है । इसका परिणाम यह होता है। कि उत्पादन लागत में कमी आ जाती है। कार्यो के लक्ष्य तथा कर्मचारियों के

अधिकार एवं दायित्व स्पष्ट हो जाने से प्रत्येक कर्मचारी सीमित साधनों में अधिकतम प्रतिफल प्राप्त करने का प्रयास करता है ।

५- अधिकार, कर्तव्य तथा दायित्वों का निर्धारण-

पूरे व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं को विभिन्न विभागों के मध्य स्पष्ट वितरित कर दिया जाता हैं तथा प्रत्येक विभाग की क्रियाओं का विभिन्न अधिकारियों तथा कर्मचारियों में आंबटन कर दिया जाता है । इस व्यवस्था से प्रत्येक अधिकारी तथा कर्मचारी को अपने अधिकारों तथा दायित्वों की जानकारी हो जाती है । जिससे उन्हें अपना कार्य उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से पूरा करने में सहायता मिलती है ।

६- प्रभावपूर्ण समन्वय -

बजट नियंत्रण तकनीक के अन्तर्गत व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं, विभागों तथा कर्मचारियों के कार्यो में प्रभावपूर्ण सहयोग तथा समन्वय स्थापित करने में सहायता मिलती है, जिससे संस्था की कार्यक्षमता बढ़ने के साथ-साथ प्रत्येक कर्मचारी तथा अधिकारी के मन में एक निशिचत उद्देश्य की प्राप्ति की भावना सदैव बनी रहती है ।

७- सूचनाओं के आदान- प्रदान को प्रोत्साहन-

इस व्यवस्था के अन्तर्गत सूचना के पारस्परिक विनिमय को प्रोत्साहन मिलता है । एक विभाग का कार्य दूसरे विभाग पर आधारित होने के कारण सूचनाओं का आदान-प्रदान अनिवार्य हो जाता है । जैसे- विक्रय विभाग को यह मालूम करना होता है कि उत्पादन विभाग कितना उत्पादन करने की योजना बना रहा है । उसी आधार पर बिक्रय का कार्य किया जायेगा ।

८- श्रम-प्रबन्ध के मधुर संबन्ध -

बजट नियंत्रण प्रणाली के अन्तर्गत आधुनिक युग में श्रम एवं प्रबन्धक के मध्य झगड़े का कारण बोनस, पारिश्रमिक तथा अन्य सुविधओं का आयोजन होता है । बजट नियंत्रण से प्राप्त तथ्यों से श्रमिकों को अवगत करवाकर उन्हें संतुष्ट करना सम्भव हो जाता है । प्रबन्ध , व्यवसाय की वास्तविक स्थिति से बजट के द्वारा कभी भी अवगत करा सकता है और श्रम-प्रबन्ध के मधुर सम्बन्ध बने रह सकते हैं ।

९- मिल-जुल कर कार्य करने की भावना-

इस प्रणाली के अन्तर्गत सभी विभागों के बजट एक- दूसरे से सम्बन्धित होते हैं तथा सभी का एक ही उद्देश्य होता है । इससे सहयोग तथा मिल-जुलकर कार्य करने की भावना को प्रोत्साहन मिलता है । जैसे उत्पादन विभाग में जो कार्य होता है उससे क्रय-विक्रय विभागों का घनिष्ट सम्बन्ध होता है ।

१०- विस्तृत नियंत्रण सम्भव -

बजट नियंत्रण प्रणाली में उत्तरदायित्वा के निर्धारण तथा वस्तविक निष्पादन की बजट से लगातार तुलना होते रहने से प्रबन्धक संस्था की क्रियाओं पर प्रभावी नियंत्रण करने में सफल हो पाता है । इस व्यवस्था से त्रुटि की प्रकृति तथा उत्तरदायी व्यक्ति का पता लग जाता है जिससे अवांछनीय प्रवृत्तियों का शीघ्र ही निवारण कर दिया जाता है

११- संगठन व्यवस्था को मजबूत करना-

इस प्रणाली द्वारा प्रबन्ध को संगठन के सुदृढ़ तथा दुर्बल बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । प्रबन्धक को कुशल पर्यवेक्षकों, श्रमिकों इत्यादि की जानकारी के आधार पर संगठन को मजबत बनाना तथा दुर्बलताओं में सुधार लाना सम्भव हो जाता है ।

१२- प्रमाप लागत में सहायता-

किसी भी व्यावसायिक संस्था में प्रमाप लागत विधि के अन्तर्गत समस्त कार्यो की प्रमाप लागतें पूर्व निर्धारित कर दी जाती हैं। बजट नियंत्रण प्रणाली के प्रयोग से वास्तविक लागतों को प्रमाप लागतों के अनुसार नियंत्रित करने में सहायता मिलती है ।

१३- लेखांकन विभाग की कार्यक्षमता में वृद्धि -

बजट बनाने के लिये पिछले बर्षो के लेखों के विस्तृत आंकड़ों की आवश्यकता होती है जिसे लेखांकन विभाग निरंतर तैयार करता रहता है। इस व्यवस्था से लेखांकन विभाग की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है तथा प्रबन्ध को वह आवश्यक समंक उपलब्ध कराता रहता है ।

१४- व्यवसाय के पक्ष को प्रस्तुत करना-

इस प्रणाली के अन्तर्गत जो तथ्य अथवा जानकारी तैयार की जाती है उनकी सहायता से व्यवसायी सरकार, व्यापारिक समितियों तथा कर अधिकारियों के सामने अपने पक्ष को मजबूती के साथ प्रस्तुत कर सकता है और व्यवसाय के हितों को सुरक्षित रख सकता है ।

प्रमाप लागत एवं प्रबन्धकीय उपयोग -

आधुनिक गलाकाट प्रतिस्पर्धा के इस युग में प्रत्येक व्यवसायी का प्रमुख उद्देश्य अपने सीमित साधनों से अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है । ऐसा करने के लिये आवश्यक होता है कि वह न्यूनतम लागत पर अधिकतम तथा श्रेष्ठतम किस्म का उत्पादन तैयार करें । इसके लिये सभी प्रकार के अपव्ययों को समाप्त करके सस्ते से सस्ते मूल्य पर उत्पादन किया जाना नितांत आवश्यक होता है । अर्थात वस्तु तथा प्रक्रिया की लागत पर प्रभावी एवं निरंतर नियंत्रण आवश्यक होता है । प्रमाप लागत निधि के द्वारा इस कार्य को समभव वनाया जा सकता है । प्रमाप लागत विधि प्रमाण लागत के निर्धारण पर आधारित होती है । यह विभिन्न लागत तत्वों अर्थात् समग्री श्रम तथा उपरिव्ययों की बैज्ञानिक आधार पर दी हुई परिस्थितयों के अन्तर्गत एक निशिचत समय के लिये अनुमानित लागत है । इन लागतों को संस्थ की पिछली तथा वर्तमान उत्पादन क्रियाओं के अध्ययन तथा अवलोकन के बाद निर्धारित किया जाता है । ये लागतें दी हुई दशाओं पर आधारित होती हैं जिन्हें वास्तविक लागतों की कुशलता एवं अकुशलता की जांच के उद्देश्य से निश्चित किया जाता है ।

प्रमाप लागत विधि लागत नियंत्रण की एक तकनीक है । इस विधि के अर्न्तगत भविष्य में किये जाने वाले उत्पादन के प्रमाप लक्ष्य, औसत कार्यक्षमता तथा दक्षता के आधार पर , निशिचत किये जाते हैं । वास्तविक उत्पादन हो जाने के बाद वास्तविक लागत के विभिन्न अंगों तथा व्ययों की तुलना पहले से निशिचत किये गये प्रमापों से की जाती है, जिससे निर्धारित प्रमापों तथा वास्तविक परिणामों में विचरण का पता लग जाता है तथा प्रबन्ध इन कारणों को जानकर उनके निवारण हेतु उचित एवं प्रभावी उपाय कर सकता है । **सिविल गिलेस्पाप के शब्दों में** - " प्रमाप लागत का अर्थ सामान्यत: पूर्व निर्धारित क्रियात्मक लागत से लगाया जाता हैं जो विशिष्ट परिणाम, मूल्य तथा कार्य करने के स्तार को प्रदर्शित करने के लिये निकाली जाती है ।"[१] जे०आर०

---

(1) प्रबन्धकीय लेखांकन - जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल- पृ0सं0 687

बाटलीबॉय के अनुसार, " प्रमाप लागत से आशय ऐसी पूर्व निर्धारित लागतों से है जो कि उस समय प्राप्त होती है जबिक प्लाण्ट सामग्री एवं श्रम और नियंत्रण आदि का प्रयोग अधिक कार्यक्षमता के अन्तर्गत होता है, यह प्रयोग ऐसी दशाओं के अन्तर्गत होता है जो कि स्थितर और व्यावहारिक होती है और बहुत आदर्शवादी तथा अप्राप्य नहीं होती है ।"[२]

जहाँ तक प्रमाण लागतों के प्रबन्धकीय उपयोग का सम्बन्ध है वह आग्रांकित है-

१- प्रबन्धक उत्पादन तथा विक्रय को प्रभावित करने वाले लागत के सभी तत्वों पर नियंत्रण कर सकते है ।

२- प्रबन्धक प्रमाप लागतों के द्वारा संस्था में अधिकार प्रत्यायोजन को प्रभावी बनाने तथा संस्था के कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना जागृत कर सकते हैं ।

३- प्रबन्धक प्रमाण लागतों से उत्पादन के साधनों की कुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं ।

४- प्रबन्धक इस विधि से कर्मचारियों में लागत चेतना का विकास कर सकते हैं ।

५- प्रबन्धक प्रमाप लागतों की वास्तविक लागतों से तुलना करके परिचालन क्रियाओं की कुशलता को मापने तथा अपव्ययों और अकुशलता को रोकने में सफल हो सकते हैं ।

६- प्रबन्धक उत्पादन, लागत, विक्रय तथा लाभ में कमी या वृद्धि की जानकारी प्राप्त करने एवं पूर्वानुमान लगाने में सफल हो सकते हैं ।

७- प्रबन्धकों को इस प्रणाली द्वारा "अपवाद द्वारा प्रबन्ध " के सिद्धान्त को लागू करने में सहायता मिलती है ।

८- प्रमाप लागतों से प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर आगे देखने की प्रभावपूर्ण मानसिक दृष्टि का विकास होता है ।

प्रमाप लागत विधि का प्रमुख उद्देश्य लागतों को नियंत्रित करना होता है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रमापों को निर्धारित किया जाता है । इसके लिये लागत एवं व्ययों के प्रत्येक घटक की गहन जांच की जाती है । प्रमाप लागतों से प्रबन्ध को अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं जिनका प्रयोग नियोजन को प्रभावी वनाने में होता है । प्रमाप लागत विधि से इसके अतिरिक्त भी लाभ प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार हैं-

---

(2) प्रबन्धकीय लेखांकन- जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल पृ0क्र0 688

(१) लागतों में कमी एवं नियंत्रणः-

इस विधि में वास्तविक लागतों की प्रमाप लागतों से लगातार तुलना करते रहने के कारण बढ़ी हुई लागतों के कारणों का पता लगाया जा सकता है। सम्बन्धित उत्तरदायी व्यक्तियों से पूछताछ करके अपव्यय स्थलों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है और लागतों में कमी लाई जाती है। इस प्रकार सामग्री श्रम इत्यादि के अपव्यय को रोककर लागतों पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण सम्भव हो जाता है।

(२) निष्पादन के माप का आधार -

व्यवसाय के उत्पादन क्रियाओं की कुशलता को मापने के लिये प्रमाप लागत विधि सर्वोत्तम मापदण्ड का कार्य करती है। इसके अन्तर्गत वास्तविक लागत अंकों की प्रमापों से तुलना करके विचरण मालूम किये जाते हैं। इन विचरणों के आधार पर निष्पादन कुशलता तथा अकुशलता की जानकारी प्राप्त की जाती है। अनुकूल विचरण निष्पादन कुशलता तथा प्रतिकूल विचरण निष्पादन अकुशलता प्रकट करते हैं।

(३) उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग -

इस विधि के अन्तर्गत कम उत्पत्ति के कारणों की पूरी जानकारी मिल जाती है। इससे उत्पादक अपनी उत्पादन क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग करने में समर्थ हो जाता है। प्रत्येक विभाग के प्रमाप अलग-अलग निशिचत किये जाने के कारण प्रत्येक विभाग का अधिकारी इन प्रमापों को प्राप्त करने के लिये पूर्ण कार्यक्षमता से प्रयास करता है।

(४) वास्तविक लागत ज्ञात करने में सहायक - .

प्रमाप लागत विधि से लागत के किसी भी अंग अर्थात सामग्री, श्रम तथा उपरिव्यय इत्यादि की गणना आसानी से की जा सकती है यदि प्रमाप लागत तथा कार्यक्षमता का प्रतिशत दिया हुआ है।

$$\text{वास्तविक लागत} - = \frac{\text{प्रमाप लागत}}{\text{कार्यक्षमता का प्रतिशत}}$$

(५) श्रमिकों की कार्य-क्षमता का ज्ञान -

प्रमाप लागत विधि के अन्तर्गत श्रमिकों की कार्य क्षमता का ज्ञान आसानी से हो जाता है।

$$\text{श्रम कार्यक्षमता} = \frac{\text{प्रमाप मजदूरी}}{\text{वास्तविकता मजदूरी}}$$

(६) उत्पादन तथा मूल्य नीतियों का निर्धारण-

इस विधि के अन्तर्गत विस्तृत लागत लेखे नहीं रखे जाते । इनके आधार पर व्यवसायी आदर्श उत्पादन नीतियां निर्धारित कर सकता है। इसके साथ ही उत्पादन कार्य प्रारम्भ करने तथा टेंडर (निविदा) के लिये मूल्यों का अनुमान लगाने में भी इस विधि से सहायता मिलती है।

(७) कर्मचारियों में लागत चेतनाओं का विकास :-

प्रमाप लागत विधि के अन्तर्गत कर्मचारियों में लागत चेतना रहती है क्योंकि प्रत्येक कर्मचारी को यह भय बना रहता है कि कोई गड़बड़ी होने पर इसकी जानकारी प्रबन्ध को जायेगी, उसके लिये उसे दोषी ठहराया जायेगा। इस प्रकार संस्था का प्रत्येक कर्मचारी संचेत रहता है। इससे लागतों में कमी आती है। इसके साथ ही कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ती है।

(८) लागत लेखाविभाग की लागतों में बचत -

इस विधि के अन्तर्गत विस्तृत लेखे रखने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि विभिन्न कार्यो की लागत के सम्बन्ध में प्रमाप लागत पत्रक एक बार तैयार कर लिये जाते हैं । इन्ही के आधार पर सामग्री श्रम तथा अन्य व्ययों की व्यवस्था कर ली जाती है। इस प्रकार इस विधि में लागत लेखा विभाग का लिपिकीय श्रम व व्यय कम हो जाते हैं और लागत प्रक्रिया भी सरल हो जाती है।

(९) अधिकारों में प्रभावपूर्ण प्रत्यायोजन-

प्रमाप लागत विधि के अन्तर्गत विभिन्न लागत केन्द्रों की स्थापना की जाती है जिनके लिये निशिचत व्यक्ति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था से अधिकारों का प्रत्यायोजन प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि सम्बन्धित व्यक्ति का उत्तरदायित्व आसानी से निर्धारित किया जा सकता है।

(१०) तुलना एवं कर्मचारी प्रेरणा का स्थिर आधार-

यह विधि प्रत्येक कर्मचारी अथवा विभाग के एक अवधि के परिणामों की दूसरी अवधि के परिणामों से तुलना करने का भी आधार प्रदान करती है। इसके साथ ही यदि प्रमाप उचित हैं तो प्रत्येक कर्मचारी उन्हें प्राप्त करने तथा उत्पादन की किस्म को बनाये रखने का प्रयास करता है। जो कर्मचारी प्रमापों के अनुरुप या उससे अधिक कुशलता से कार्य करते हैं उन्हें अधिक लाभांश देकर प्रेरित किया जाता हैं।

(११) स्कन्ध मूल्यांकन में उपयोगी -

प्रमाप लागत विधि के अन्तर्गत स्कन्ध मूल्यांकन का कार्य सरल हो जाता है क्योंकि एक प्रकार की सामग्री के लिये एक ही मूल्य चार्ज किया जाता है। अत: स्टॉक रजिस्टर में केवल सामग्री की मात्रा का ही लेखा किया जाता है, मूल्य का नहीं । वर्ष के अन्त में स्कन्ध का मूल्यांकन शेष सामग्री की मात्रा को प्रमाप मूल्य से गुणा करके आसानी से किया जा सकता है।

(१२) लागत प्रतिवेदन एवं बजट में सहायक -

इस विधि में महत्वपूर्ण विचारों को दर्शाते हुये लागत प्रतिवेदन पत्रक समय पर प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है जिससे सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकें। इसलिये इस विधि से परिचालन तथ्यों का संवहन शीघ्रता से होता है। इसके साथ है इस विघि से बजट बनाने में भी सुविधा होती है क्योंकि प्रमाप लागतों के आधार पर ही सामग्री , श्रम व अन्य व्ययों के बजट तैयार किये जाते हैं।

सीमान्त लागत एवं प्रबन्धकीय निर्णय -

किसी वस्तु के उत्पादन में दो प्रकार के व्यय किये जाते हैं- १- स्थिर व्यय जो उत्पादन की मात्रा के परिवर्तन के साथ परिवर्तित नहीं होते , एवं २- परिवर्तनशील व्यय जो उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। स्थिर व्ययों की उपस्थिति से उत्पादन कम होने पर इन व्ययों का प्रति इकाई उत्पादन व्यय बढ़ जाता है तथा उत्पादन बढ़ाने पर प्रति इकाई उत्पादन व्यय घट जाता है। ऐसी स्थिति में उत्पादन अथवा बिक्री के विभिन्न स्तरों पर लागत कम अथवा अधिक होने से लाभ का बिक्री के साथ प्रतिशत भी निशिचत नहीं रहता है।

व्यवसाय के अन्तर्गत सीमान्त लागत विधि का अध्ययन आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। यह विधि अन्य विधियों जैसे उपकार्य लागत, प्रक्रिया लागत, परिचालन लागत इत्यादि की भांति न होकर लागत सूचनाओं को प्रदर्शित करने की एक विशेष प्रणाली है। यह लाभ नियोजन, लागत नियंत्रण तथा प्रबन्धकीय निर्णयों में सहायक होती है। इसमें परिवर्तनशील लागतों की ही वस्तु की लागत माना जाता है तथा स्थिर लागतों को अवधि की लागतें माना जाता है। इसलिये इस तकनीक में क्रियाओं या उत्पादों पर केवल परिवर्तनशील लागतों का ही भार डाला जाता हैं तथा स्थिर लागतें उस अवधि के लाभों से अपलिखित की जाती हैं जिसमें वे उदय होती हैं। वस्तु के बिक्रय मूल्य की तुलना परिवर्तनशील लागत से की जाती है त्था दोनों का अन्तर अंशदान कहलाता है। इस अंशदान में उस अवधि की स्थिर लागतों को घटाकर शुद्ध लाभ मालूम किया जाता है। वास्तव में सीमांत लागत उस लागत को कहते हैं जो एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन में लगती है। **डी०जोजेफ के अनुसार,** " सीमांत लागत वर्तमान उत्पादन स्तर से एक इकाई अधिक के उत्पादन के कारण कुल लागत में हुये परिवर्तन को निर्धारित करने की तकनीक हैं।"[१]

सीमांत लागत में मूल लागत तथा सम्पूर्ण परिवर्तनशील व्ययों को सम्मिलित किया जाता है। इनमें मूल लागत के निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि प्रत्यक्ष सामग्री की मात्रा सामग्री मांग पत्रों से तथा प्रत्यक्ष श्रम की राशि उपकार्यो के पत्रकों से प्राप्त की जा सकती है लेकिन अप्रत्यक्ष व्ययों का स्थिर तथा परिवर्तनशील भाग ज्ञात करना कठिन है। इनमें से कुछ व्यय ऐसे होते हैं जिनकों निशिचत रुप से स्थिर लागत अथवा परिवर्तनशील लागत का भाग माना जा सकता है। लेकिन कुछ व्यय ऐसे होते हैं जो उत्पादन के एक निशिचत स्तर तक स्थिर रहते हैं तथा बाद में बदलने लगते हैं। इन व्ययों में लागत के स्थिर तथा परिवर्तनशील दोनों तत्व सम्मलित रहते है। इन्हें अर्द्ध परिवर्तनशील व्यय कहा जाता है। सीमांत लागत के निर्धारण के लिये यह आवश्यक है कि ऐसे व्ययों में पाये जाने वाले स्थिर तथा परिवर्तनशील लागत तत्व प्रथक -प्रथक किया जाये। स्थिर लागत के भाग को स्थिर लागत में तथा परिवर्तनशील लागत के भाग को परिवर्तनशील लागत में जोड़ा जाये। इसके बाद सीमांत लागत प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष सामग्री, परिवर्तनशील व्यय तथा अर्द्ध परिवर्तनशील व्ययों का परिवर्तनशील भाग को जोडकर आसानी से मालूम की जा सकती है।

सीमांत लागत निर्धारण पद्धति व्यावसायिक प्रबन्ध के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इसका महत्व अग्रांकित लाभों से मालूम हो सकता है-

---

(1) प्रबन्धकीय लेखांकन - जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल पृ0 क्र0 478

(१) समझने में आसानी -

यह विधि समझने में सरल है । इसकी प्रक्रिया आसान है क्योंकि इसमें स्थायी लागतों को सम्मलित नहीं किया जाता है, जिससे उनके अनुभाजन तथा अवशोषण की समस्या उत्पन्न नहीं होती । इसे प्रमाप लागत के साथ जोड़ा जा सकता है ।

(२) लागतों में तुलना -

सीमांत लागत विधि में स्टॉक का मूल्यांकन सीमांत लागत पर किया जाता है। इससे स्थायी लागतों का एक हिस्सा स्टॉक के रुप में अगली अवधि में नहीं ले जाया जाता। इसलिये लागत एवं लाभ निष्प्रभाव नहीं होते तथा लागतों में तुलना सार्थक हो जाती है ।

(३) लाभनियोजन में सरलता -

सीमांत लागत विधि द्वारा लाभ तथा इसको प्रभावित करने वाले घटकों के मध्य आपसी संबंध का अध्ययन सम-विच्छेद बिन्दु, लाभ-मात्रा अनुपात इत्यादि तकनीकों द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है । इससे प्रबन्धकों को लाभ नियोजन में सरलता रहती है । प्रबन्धक इस विधि के कारण भविष्य की लाभ योजनायें बनाने में सफल होते हैं ।

(४) लागत नियंत्रण संभव -

इस विधि के अन्तर्गत लागतों को स्थिर तथा परिवर्तनशील में वर्गीकृत करके उनके स्वभाव का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है। लागतों के विभाजन से लागत नियंत्रण के लिये उत्तरदायित्व निशिचत किया जा सकता है । विभिन्न प्रबन्धकों को केवल उन्हीं लागतों के सम्बन्ध में सूचनायें दी जाती हैं जिनके लिये वे उत्तरदायी होते हैं । यह विधि उत्पादन तथा बिक्री की परिवर्तित परिस्थितियों में लागत व्यवहार का अध्ययन करके उनके नियंत्रण में सहयोग देती हैं ।

(५) विभिन्न परिवर्तनों का लागत पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी -

सीमांत लागत विधि के अन्तर्गत,उत्पादन या विक्रय मात्रा या विक्रय मिश्रण तथा उत्पादन या विक्रय पद्धति में किये जाने वाले परिवर्तनों का लागत एवं लाभ पर क्या प्रभाव पड़ेगा , इसकी जानकारी मिल जाती है । इससे प्रबन्धकों को नीति निर्धारण करने तथा निर्णय लेने में सहायता मिलती है ।

(६) प्रबन्धकीय निर्णयों में उपयोगी -

वर्तमान में प्रबंधकों को उत्पादन एवं विक्रय से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। इन सभी निर्णयों का मूलाधार न्यूनतम प्रयासों पर अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है। यह विधि प्रबन्धकों को इस निर्णयन के कार्य में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करती-हैं। इस विधि के द्वारा प्रबन्ध जिन समस्याओं के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं उनका वर्णन इस प्रकार है-

I- विक्रय मूल्य निर्धारित करना -

सामान्यतया किसी वस्तु का विक्रय मूल्य बाजार की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। लेकिन फिर भी उत्पाद का विक्रय मूल्य निर्धारित करना प्रबन्ध का महत्वपूर्ण कार्य है। सामान्य परिस्थितियों में विक्रय मूल्य का निर्धारण कुल लागत में उचित लाभ जोड़कर किया जाता है। अर्थात्

विक्रय मूल्य = परिवर्तनशील लागत + स्थिर लागत का अंश + लाभ

ऐसी विशेष परिस्थितियों में उन सभी प्रस्तावों को स्वीकार किया जा सकता है जिनका विक्रय मूल्य सीमांत लागत से कुछ अधिक हो जिससे अंशदान के रुप में स्थिर लागतों की कम या अधिक वसूली हो जाये। यहां यह ध्यान रखना होता है। कि विक्रय मूल्य किसी भी दशा में सीमांत लागत से कम न हो यदि ऐसा करना अनिवार्य ही हो जाये तो ऐसी स्थित में व्यवसाय को कुछ समय के लिये बंद किया जा सकता है।

II- विक्रय मूल्यों में परिवर्तन का प्रभाव -

गला काट प्रतिस्पर्द्धी की स्थिति में माल बेचने में कठिनाई के कारण विक्रय मूल्य में कमी करके विक्रय बढ़ाने के प्रस्ताव प्रबंधकों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं। विक्रय मूल्यों में कमी के ऐसे प्रस्तावों पर निर्णय लेते समय अनेक बातों पर विचार किया जाता है। उदाहरण के लिये मूल्यों में कमी से कितनी बिक्री बढ़ेगी, उत्पादन की वृद्धि का लागतों पर क्या प्रभाव पड़ेगा,लाभ पर क्या प्रभाव पड़ेगा इत्यादि। ऐसे प्रस्तावों को स्वीकृत करते समय यह प्रयास किया जाता है कि मूल्यों में कमी से होने वाली हानि को विक्रय में वृद्धि अथवा उत्पादन लागत में कमी से पूरा किया जाये जिससे व्यवसायिक संस्था का लाभ पूर्ववत् ही बना रहे।

III- अनुकूलतम उत्पाद मिश्रण का चयन :-

जब कोई व्यावसायिक संस्था एक से अधिक प्रकार का उत्पादन करती है तब प्रबन्धकों को अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये यह निर्णय लेना होता है कि विभिन्न वस्तुओं की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाये । ऐसा करने के लिये प्रबन्धक सबसे अधिक अंशदान वाले उत्पाद का उत्पादन अधिक तथा कम अंशदान वाले उत्पाद का उत्पादन कम करके एक सर्वोत्त्म उत्पाद मिश्रण का चयन कर सकते हैं ।

IV- उपयुक्त विक्रय - मिश्रण का चयन -

किसी व्यावसायिक संस्था के प्रबन्धक द्वारा विभिन्न वस्तुओं की इकाईयं किस अनुपात में बेची जायें जिससे उसका लाभ अधिकतम हो । इसका निर्णय उस विक्रय - मिश्रण पर किया जायेगा जहां कुल उपलब्ध अंशदान अधिकतम हो । यहां यह सम्भव है कि विक्रय मिश्रण में परिवर्तन वस्तु की मांग उत्पादन क्षमता, तथा अन्य सीमा कारकों से प्रभावित हो ।

V - विभाग अथवा उत्पाद बंद करना-

विभिन्न व्यवसायिक संस्थाओं में उत्पादन कार्य कई विभागों में चलता है तथा उनमें अनेक वस्तुओं का उत्पादन होता है । इन पर कुछ विभागों अथवा वस्तुओं पर कम लाभ प्राप्त होता है और कुछ पर कम / ऐसी स्थिति में प्रबन्धक यह निर्णय ले सकते हैं कि कम लाभप्रद विभाग या उत्पादन बंद करके अधिक लाभप्रद विभाग या उत्पादन बढ़ाया जाये, जिससे कुल लाभ में वृद्धि हो । इसी प्रकार कभी-कभी किसी वस्तु की मांग घट जाने के कारण किसी विशेष विभाग या वस्तु का उत्पादन बंद करने का भी निर्णय लेना पड़ता है । जिस विभाग या वस्तु का अंशदान न्यूनतम हो उसे बंद कर दिया जाता है लेकिन यदि किसी वस्तु की बिक्री सीमांत लागतों को ही पूरा नहीं कर पा रही है तथा विक्रय मूल्य में वृद्धि या सीमांत लागतों में कमी करना सम्भव नहीं है, तो उस वस्तु का उत्पादन बंद कर देना उचित है ।

VI - अल्पकाल के लिये व्यावसायिक क्रियाओं को स्थगित करना-

व्यावसायिक गति विधियों में कभी कभी ऐसी परिस्थितियां उपस्थित होती हैं जिनके कारण कुछ समय के लिये व्यवसायिक क्रियाओं को स्थगित करना पड़ता है जैसे - व्यापारिक मंदी , गलाकाल प्रतिस्पर्धा, अथवा अन्य प्रतिकूल कारण इत्यादि । यदि उत्पादन कुछ ही समय के लिये

स्थगित किया जाता है तो कुछ स्थिर व्ययों को रोका जा सकता है जैसे अस्थायी कर्मचारियों का वेतन इत्यादि । इन्हें बचाव योजन लागतें कहते हैं। लेकिन फिर भी कुछ स्थिर लागतें जैसे किराना, ब्याज , बीमा, स्थायी कर्मचारियों का वेतन इत्यादि पूर्ववत् ही रहते हैं, इन्हें बचाव अयोग्य लागतें कहते हैं। इसके अलावा व्यवसाय बंद करने तथा उसे कुछ दिनों पश्चात् पुन: चालू करने पर मशीनों के जीर्णोद्धार आदि पर कुछ अतिरिक्त व्यय और करने पड़ते हैं। इन्हें कारखाना बंद करने की अतिरिक्त लागतें कहते हैं। इस प्रकार कारखाने को अल्पकाल के लिये तब तक बंद नहीं किया जाना चाहिये जब तक कुछ अंशदान की राशि शुद्ध बचाव योग्य स्थायी लागतों से अधिक रहती हैं। अत: व्यवसाय को चालू रखने से होने वाली हानि उसे बंद करने से होने वाली हानि से अधिक हो, तभी कुछ समय के लिये उत्पादन बन्द करने का निर्णय लेना चाहिये अन्यथा उसे चालू रखना ही हितकर होता है।

VII- बनाओ अथवा खरीदो निर्णय -

एक व्यावसायिक संस्था कभी-कभी अपनी कार्यक्षमता का उपयोग करने के लिये उन पुर्जो को जिन्हें वह अब तक बाजार में खरीद रही है,स्वंय के कारखाने में निर्मित करने पर विचार कर सकती है। इस बारे में निर्णय लेने में सीमांत लागत विधि का उपयोग किया जाता है। ऐसा करते समय उसे दो तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना पड़ता है- (अ) उस वस्तु या पुर्जे का बाजार में मूल्य, तथा (ब) उसका स्वयं के कारखाने में निर्माण करने की सीमांत लागत। यदि उस वस्तु की सीमांत लागत बाजार मूल्य से कम आती है तो उसे स्वयं के कारखाने मे निर्मित करने का निर्णय करना चाहिये। इसके विपरीत यदि बाजार मूल्य कम है तो बाजार में क्रय करना उचित होगा। इसके साथ ही इस सम्बन्ध में सीमांत लागत के अतिरिक्त वस्तु की किस्म , नियमित आपूर्ति मांग में प्रत्याशित परिवर्तन, विश्वसनीय पूर्तिकर्ता इत्यादि तथ्यों को भी विचार में लाना चाहिये ।

VIII- किराये पर लेना या क्रय करना -

किसी व्यावसायिक संस्था में कभी कभी प्रबन्ध उत्पादन के लिये संयत्र अथवा भवन को किराये पर लेकर कार्य कर सकता है अथवा उसे क्रय करके । इनमें से उसे उस विकल्प का चयन करना चाहिये जो सबसे अधिक लाभप्रद हो । इसके लिये दोनों स्थितियों में त्याग एवं लागत का तुलनात्मक विश्लेषण करके मितव्ययी विकल्प को चुनना चाहिये ।

IX- नये उत्पाद का निमार्ण -

अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने वाली संस्था निष्क्रिय उत्पादन सुविधाओं का प्रयोग करने के लिये अथवा नया बाजार हतियाने के लिये नये उत्पादन का निर्माण कर सकती है। इस प्रकार के उत्पाद का निर्माण प्रारंम्भ किया जाये कि नहीं यह उस उत्पाद की लाभदायकता पर निर्भर करता है। यदि नये उत्पाद से स्थिर लागतों व लाभ के लिये कुछ योगदान मिलता है तो उसका उत्पादन लाभप्रद होगा अन्यथा नहीं। यह निर्णय सीमांत लागत विधि के द्वारा ही लिया जाता है।

X- आगे प्रक्रियांकन अथवा विक्रय -

कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जहां वस्तु अपनी पूर्णता प्राप्त करने के लिये दो या अधिक प्रक्रियाओं में होकर गुजराती है। मध्य की प्रक्रिया का उत्पादन भी बाजार में बिकता है। अतः ऐसी संस्थाओं के प्रबन्ध के सामने यह समस्या आती है कि वह अपने माल को निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं के पूरा करने के पश्चात् बेचे अथवा बीच में ही किसी प्रक्रिया के पूरा होने पर बेच दे। इस प्रकार की समस्या के बारे मे सही निर्णय निर्माण की प्रत्येक प्रक्रिया की अतिरिक्त लागतों की उस प्रक्रिया की अतिरिक्त आय से तुलना करके किया जाता है तथा अधिक लाभप्रद विकल्प का चुनाव कर लिया जाता है।

XI- उत्पादन अथवा अवशिष्ट का प्रक्रियांकन -

उत्पादन प्रक्रिया के दौरान प्राप्त उपोत्पाद को बिना प्रक्रियांकन किये हुये सीधा बाजार में बेचा जा सकता है अथवा इनका प्रक्रियांकन करके उसे अधिक उपयोगी बनाया जा सता है। इनमें से कौनसा विकल्प चुना जाये, इसके लिये बिना प्रक्रियांकन कुल लाभों की उपोत्पादों के प्रक्रियांकन के पश्चात् हुये कुल लाभों से तुलना की जाती है। इसका निर्णय करते समय प्रक्रियांकन हेतु अतिरिक्त संयत्र, कार्यशीलपूंजी की आवश्यकता तथा उपरिव्ययों को ध्यान में रखना होता है।

XII- सर्वाधिक लाभप्रद विक्रय विधि का चयन-

कोई भी उत्पादक अपने उत्पाद को थोक विक्रेताओं के माध्यम से ,फुटकर विक्रेताओं के माध्यम से अथवा सीधा उपभोक्ताओं को बेच सकता है। थोक विक्रेताओं के द्वारा बेचने पर विक्रय तथा वितरण व्यय कम करने होते हैं लेकिन माल कम कीमत में बेचना होता है। जबकि फुटकर

विक्रेताओं व सीधा उपभोक्ताओं को बेचने पर विक्रय-वितरण व्ययों में वृद्धि होती है लेकिन विक्रय मूल्य अधिक मिलता है। ऐसी स्थिति में चयन की समस्या उत्पन्न होती है कि किस विधि का प्रयोग किया जाये। सीमांत लागत विधि के माध्यमं से उस विक्रय विधि को चुना जाना चाहिये जिससे अंशदान अधिकतम हो जिससे उत्पादन के लाभ अधिकतम हो सकें।

XIII- संयत्र की प्रति स्थापना -

प्रबन्धकों के समक्ष एक संयत्र के स्थान पर दूसरे संयत्र को प्रतिस्थापित करने,श्रम के स्थान पर मशीन लगाने अथवा दो मशीनों में से सर्वोत्तम लाभप्रद मशीन का चयन करने की समस्या आती है। ऐसी स्थिति में जिस विकल्प पर अधिक लाभ होता है उसे चुन लिया जाता है।

XIV- व्यवसाय को स्थायी रुप से बंद करना -

किसी व्यवसाय मे किन्हीं प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उसके विनियोग पर उचित लाभ नहीं मिल रहा हो तथा निकट भविष्य में भी कोई सुधार की संभावना न हो तो उसे स्थायी रुप से बंद किया जा सकता है। ऐसा निर्णय व्यवसाय को चालू रखने पर होने वाली आय तथा व्यवसाय को बेचकर प्राप्त होने वाली राशि का अन्यत्र विनियोग करने पर प्राप्त होने वाली आय का तुलनात्मक अध्ययन करके ही लिया जाता है। यदि बाद वाली आय पहले विकल्प की आय से अधिक हो तो व्यवसाय को बदं करने का निर्णस लिया जाना चाहिये।

प्रमुख औद्योगिक इकाइयों में बजटिंग , प्रमाप लागत तथा सीमांत लागत तकनीकों का उपयोग एवं मूल्यांकन -

(१) ग्वालियर रेयान-

शोधार्थी को सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि इस संस्था द्वारा बजटिंग , तकनीक का उपयोग किया गया है जिससे विभिन्न व्यक्तियों, विभागों, क्रियायों तथा साधनों में उचित समन्वय किया गया है। नियोजन , समन्वय तथा नियंत्रण कार्यो को बजटिंग तकनीक का प्रयोग करके, सफलता पूर्वक सम्पादित किया गया है। बजटिंग के द्वारा ही लागतों को नियंत्रित करके लाभों को बढ़ाने में सहायता मिली है। बजटिंग के माध्यम से ही निरीक्षण , शोध नियोजन, निर्णयन एवं नियंत्रण द्वारा पूर्व निर्धारित लक्ष्यों से उत्पन्न विचलनों को दूर किया जा सकता है।

इस औद्योगिक संस्था द्वारा प्रमाप लागत तकनीक का उपयोग किया गया है । इस विधि के उपयोग से लागतों को नियंत्रित करने में संस्था को सफलता मिली है । इस तकनीक के प्रयोग से ही उत्पादन क्षमता का अधिकतम उपयोग किया जा सका है, श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सकी है, उत्पादन एवं मूल्य नीतियों का निर्धारण करने में सहायता मिली है, कर्मचारियों में लागत चेतनाओं का विकास करना सम्भव हुआ है, स्कन्ध मूल्यांकन का कार्य सरल हो सका है ।

इस इकाई द्वारा सीमांत लागत तकनीकों का भी उपयोग किया गया है जिससे लाभों के नियोजन में सफलता मिली है, लागतों को नियंत्रित किया जा सका है, विभिन्न परिवर्तनों का लागत पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी सम्भव हुई है,अनेक प्रबन्धकीय निर्णय सम्भव हो सके हैं इससे उत्पादन लागतों को घटाने में मदद मिली है तथा संस्था के लाभों में वृद्धि हुई है । इसका लाभ समाज के विभिन्न पक्षकारों जैसे उपभोक्ताओं , विनियोक्ताओं ,अंशधारियों को मिला है ।

(२) जे० के० टायर -

सर्वेक्षण द्वारा शोधार्थी को मालूम हुआ कि जे०के० टायर संस्था द्वारा बजटिंग तकनीक का उपयोग किया जाता है । बजटिंग प्रणाली के प्रयोग से संस्था की विभिन्न क्रियाओं में नियोजन, समन्वयन तथा नियंत्रण करने में सहायता मिली है । बजटिंग तकनीक के प्रयोग से ही लागतों को नियंत्रित करके लाभों में वृद्धि करने में सहायता मिली है । इसी के द्वारा संस्था में निरीक्षण, शोध नियोजन निर्णय एवं नियंत्रण द्वारा पहले से ही निश्चित किये हुये लक्ष्यों से उत्पन्न विचलनों को दूर करने में सहायता मिली है ।

इस निर्माणी संस्था द्वारा प्रमाप लागत तकनीक का उपयोग किया गया है । इस तकनीक के द्वारा संस्था में उत्पादन लागतों की नियंत्रित करने में सहायता मिली है । इसी तकनीक के माध्यम से संस्था में अधिकतम उत्पादन क्षमता का प्रयोग किया जा सका है, श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ाई जा सकी है, उत्पादन एवं मूल्य नीतियों का निर्धारण करने में सहायता मिली है । इसी के साथ संस्था में कार्यरत कर्मचारियों में लागत चेतनाओं का विकास करना सम्भव हुआ है ।

शोधार्थी को सर्वेक्षण करने से ज्ञात हुआ है कि इस इकाई द्वारा सीमांत लागत तकनीक का भी उपयोग किया गया है जिससे लाभों के नियोजन में सफलता सम्भव हुई है, लागतों को नियंत्रित किया जा सका है, विभिन्न परिवर्तनों का लागतों पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी सम्भव हुई है ।

इसी तकनीक के द्वारा अनेक प्रबन्धकीय निर्णय सम्भव हो सकें है । जिससे उत्पादन लागतों में कमी करना सम्भव हो सका है, जिससे संस्था के लाभों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है । और इसका लाभ समाज के अन्य वर्गो को भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से मिला है ।

(३) गोदरेज -

सर्वेक्षण द्वारा शोधार्थी को ज्ञात हुआ है कि इस निमार्णी संस्था द्वारा बजटिंग तकनीक का उपयोग किया गया है । जिससे संस्था में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों, विभागों ,क्रियाओं तथा साधनों में समन्वय स्थापित किया जा सका है । बजटिंग को संस्था की नीतियों तथा योजनाओं का पथ प्रदर्शक माना जाता है इसी से संस्था की विभिन्न क्रियाओं को नियोजित करने में सफलता मिली है । बजटिंग के माध्यम से ही संस्था के कार्यो को मितव्ययिता एवं कुशलता से संचालित करने में मदद मिली है । बजटिंग के द्वारा ही व्यवसाय से सम्बन्धित सामग्री ,श्रम तथा वित्तीय साधनों पर कुशल नियन्त्रण सम्भव हो सका है । जिससे संस्था को अपने लाभों में वृद्धि करनें में सहायता मिली है ।

शोधार्थी को सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि इस संस्था में प्रमाप लागत तकनीक का प्रयोग किया जाता है इस तकनीक से संस्था में उत्पादन की लागत पर नियंत्रण सम्भव होता है । इस तकनीक के प्रयोग द्वारा उत्पादन के साधनों की कुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि करनें में मदद मिली है, कार्यरत कर्मचारियों में लागत चेतना का विकास समभव हो सका है, परिचालन क्रियाओं की अकुशलता एवं अपव्यय को रोकने में सहायता मिली है, उत्पादन तथा विक्रय को प्रभावित करनें वाले लागत के सभी तत्वों पर नियंत्रण सम्भव हो सका है ।

सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात हुआ है कि इस उद्योगिक संस्था द्वारा सीमांत लागत तकनीक का प्रयोग किया जाता है । इस तकनीक के प्रयोग से संस्था को लाभों के नियोजन,लागत नियंत्रण , प्रबन्धकीय निर्णयों में सहायता मिली है । इस तकनीक के प्रयोग से लागतों में तुलना समभव हुयी है । विभिन्न परिवर्तनों के लागत पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी सम्भव हुयी है, अनेक प्रकार के प्रबन्धकीय निर्णय लिये जा सकें है जिसका लाभ संस्था को मिला है और लाभों को वढ़ाने में सफलता मिली है ।

(४) पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) -

सर्वेक्षण से शोधार्थी को ज्ञात हुआ है कि इस उद्योगिक संस्था में बजटिंग तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इस तकनीक को संस्था की नीतियों तथा योजनाओं का पद प्र्दशक माना जाता है जिससे संस्था की विभिन्न क्रियाओं को नियोजित किया जा सका है। संस्था में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों, विभागों, क्रियाओं ,साधनों मे समन्वय स्थापित किया जा सका है। इस तकनीक के द्वारा ही इस संस्था के कार्यो को मितव्ययिता पूर्वक एवं कुशलता से संचालित करनें में अधिक मदद मिल सकी है,बजटिंग के प्रयोग से ही व्यवसाय से सम्बन्धित श्रम, सामग्री, तथा वित्तीय साधनों पर कुशलता पूर्वक नियंत्रण किया जा सका है। इसका लाभ संस्था को मिला है और लाभों में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि सम्भव हुयी है ।

सर्वेक्षण के द्वारा शोधार्थी को ज्ञात हुआ है कि इस निर्माणी इकाई प्रमाप लागत तकनीक का प्रयोग किया जाता है इस तकनीक के प्रयोग से संस्था में किये जा रहे उत्पादन की लागत पर नियंत्रण सम्भव हो सका है। इस तकनीक के द्वारा उत्पादन के साधनों की कुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि करनें में मदद मिली है।

संस्था में कार्यरत कर्मचारियों में लागत चेतना का विकास सम्भव हो सका है। इस तकनीक के प्रयोग से परिचालन क्रियाओं की अकुशलता एवं अपव्यय को रोकने में काफी सीमा तक मदद मिली है, उत्पादन एवं विक्रय को प्रभावित करनें वाले लागत के सभी तथ्यों पर नियंत्रण किया जा सका है।

शोधार्थी को सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात हुआ है कि इस उद्योगिक इकाई द्वारा सीमान्त लागत तकनीक का प्रयोग किया जाता है। संस्था में इस तकनीक के प्रयोग से लाभों के नियोजन , लागत नियंत्रण, तथा प्रबन्धकीय निर्णयों में सहायता मिली है। इस तकनीक के द्वारा लागतों में तुलना सम्भव हो सकी है विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों के लागत पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी सम्भव हो सकी है, अनेक प्रकार के प्रबन्धकीय निर्णय उचित समय पर लिये गये है जिससे संस्था को आशा के अनुरुप लाभों में वृद्धि करनें में सफलता मिली है इसका लाभ समाज के विभिन्न वर्गो जैसे विनियोक्ताओं , आंशधारियों उपभोक्ताओं एवं सरकार को मिला है ।

(५) कैडवरीज -

सर्वेक्षण से शोधार्थी को ज्ञात हुआ है कि इस उद्योगिक इकाई द्वारा बजटिंग तकनीक का प्रयोग किया जाता है। बजटिंग तकनीक को किसी भी संस्था की नीतियों तथा योजनाओं का पद-प्रर्दशक माना जाता है इस तकनीक के द्वारा संस्था की विभिन्न क्रियाओं को नियोजित किया जा सका है। इसी तकनीक के प्रयोग से इस संस्था में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों, विभागों , क्रियाओं तथा साधनों में समन्वय स्थापित करने में मदद मिली है। बजटिंग प्रणाली द्वारा ही इस निर्माणी संस्था के कार्यो को मितव्ययिता पूर्वक तथा कुशलता से संचालित किया जा सका है। इस तकनीक के प्रयोग से ही संस्था से सम्बन्धित सामग्री , श्रम तथा वित्तीय साधनों पर कुशलता पूर्वक नियंत्रण किया जा सका है। इस बजटिंग तकनीक के प्रयोग का लाभ संस्था को मिला है। जिससे संस्था के लाभों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुयी है।

शोधार्थी को सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि इस औद्योगिक इकाई में प्रमाप लागत तकनीक का प्रयोग किया जाता है इस तकनीक के द्वारा संस्था में किये जा रहे उत्पादन की लागत पर नियंत्रण सम्भव हो सका है प्रमाप लागत तकनीक के प्रयोग से उत्पादन के साधनों की कुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि सम्भव हुयी है,इस संस्था में कार्यरत कर्मचारियों में लागत चेतना का विकास सम्भव हो सका है। इस प्रमाप लागत तकनीक के द्वारा ही परिचालन क्रियाओं के अपव्यय एवं अकुशलता को रोकने में मदद मिली है इसके साथ ही उत्पादन एवं विक्रय को प्रभावित करने वाले लागत के सभी तथ्यों को नियंत्रित करनें मे सफलता मिल सकी है जिससे संस्था के लाभों में वृद्धि सम्भव हुयी है।

सर्वेक्षण के दौरान शोधार्थी को यह भी ज्ञात हुआ है कि इस उद्योगिक संस्था द्वारा सीमान्त लागत तकनीक का प्रयोग किया जाता हैं। संस्था में सीमान्त लागत तकनीक के प्रयोग से लाभों के नियोजन , लागत नियंत्रण, तथा प्रबन्धकीय निर्णयों मे मदद मिली है इसी तकनीक के द्वारा लागतों में तुलना सम्भव हो सकी है, समय समय पर उचित प्रबन्धकीय निर्णय लिये जा सकें है, विभिन्न प्रकार की परिवर्तनों के लागतों पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी मिल सकी है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों से संस्था के लाभों में वृद्धि हुयी है।

(६) ग्वालियर दुग्ध संघ -

शोधार्थी को सर्वेक्षण करनें से ज्ञात हुआ है कि सहकारी क्षेत्र की इस संस्था में इस प्रकार की वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग न के वरावर किया गया है इस लिये संस्था अपने प्रारम्भ से ही हानि में चल रही है और लगातार हानियों में वृद्धि ही होती जा रही है। इससे उपरोक्त तकनीकों के महत्व का पता चलता है।

सप्तम अध्याय

प्रबन्ध सूचना प्रणाली

१- अवधारणा एवं महत्व

२- सूचना प्रणाली के उपकरण

३- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की सूचना प्रणाली का विश्लेषण एवं मूल्यांकन

प्रबन्ध सूचना प्रणाली-

प्रबन्ध सूचना प्रणाली प्रबन्धकीय लेखांकन का एक आवश्यक अंग है। आधुनिक व्यवसायिक संगठनों का जैसे जैसे आकार बढ़ता जाता है, उसके क्रिया कलापों पर नियंत्रण की समस्या में वःद्धि होती हाती है। बड़े आकार की व्यवस्था में नियन्त्रण व्यवस्था सुचारु रुप से क्रियान्वयन के अधिकार एवं उत्तरदायित्व का विभाजन भी किया जाता है। इन अधिकारों का प्रयोग किस क्षमतापूर्ण सीमा तक किया गया है अथवा दिये गये अधिकार को अधिकारी ने किस सीमा तक उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से निभाया है, इस बात की उपयुक्त सूचना अच्छे नियंत्रण के लिये आवश्यक होती है। समय समय पर अनेक आवश्यक सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न प्रबन्धकीय स्तरों की नीति - निर्धारण ,निर्णय- कार्य तथा नियंत्रण के लिये इन प्रतिवेदनों को भेजना आवश्यक होता है। बड़े आकार के व्यावसायिक संगठनों में अनेक पेचीदगी के कारण विभिन्न सूचनायें लिखित प्रतिवेदनों के रुप में प्रस्तुत की जाती हैं। इसके साथ ही ये प्रतिदिन विभिन्न ग्राफों एवं तालिकाओं के रुप में दिखाये जाते हैं। अधिकांश वर्ष के अन्त में ही बनाये जाते हैं लेकिन कुछ प्रतिवेदन साप्ताहिक मासिक या कभी कभी दैनिक भी बनाये जाते हैं।

अवधारणा एवं महत्व -

प्रबन्ध सूचना प्रणाली संचार की वह प्रक्रिया है जिसमें सूचनायें एकत्रित की जाती है,रखी जाती है तथा एक संगठन के रुप में नियोजन , संचालन तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित निर्णयन के लिये पुनः उपलब्ध करायी जाती है ।

आई०सी०डब्लू०ए० (लन्दन) के अनुसार - " प्रबन्ध सूचना प्रणाली वह प्रणाली है जिसमें परिभाषित समंक उन लोगों को सहायता पहुंचाने के लिये जो साधनों का उपयोग करनें के लिये उत्तरदायी है, संकलित परिनिर्मित एवं सम्प्रेषित किये जाते है।" [१]

हिन्गोरानी तथा रामनाथ के अनुसार , " प्रबन्ध सूचना प्रणाली प्रत्येक प्रबन्धकों को सम्पूर्ण समंकों तथा केवल उन समंकों को प्रदान करने की संगठित विधि है , जिसकी कि उसे अपने निर्णय के लिये आवश्यकता है जिस समय एवं रुप में उसे अपने कार्य को समझने एवं संम्पादित करने के लिये उनकी आवश्यकता होती है।"[२] इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रबन्ध सूचना प्रणाली में प्रबन्ध के

---

(1) प्रबन्धकीय लेखांकन - जे0के0 अग्रवाल एवं आर0के0 अग्रवाल - पृ0क्र0 993
(2) - तदैव - पृ0क्र0 994

विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये तथ्य एकत्रित किये जाते है, उन्हें काटछाँट या सूक्ष्म या विश्लेषित करते है तथा सम्बन्धित अधिकारियों को उपलब्ध करायें जाते है। उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे सम्बन्धित घटना की अनिशिचतता को दूर किया जा सकें या कम किया जा सकें। इन सूचनाओं को सामान्यत: प्रतिवेदनों द्वारा प्रदान किया जाता है। यह सूचना न केवल प्राप्तकर्ता की जानकारी में वृद्धि करती है बल्कि इसे नीति निर्धारण, निर्णयन तथा नियंत्रण में सहायता मिलती है।

प्रबन्ध सूचना प्रणाली को लेखांकन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। यदि किसी व्यावसायिक संस्था में प्रभावी प्रबन्ध सूचना प्रणाली नहीं है तो प्रबन्ध के लिये लेखांकन की कोई उपयोगिता नहीं मानी जाती है। आधुनिक युग में व्यावसायिक संस्थाओं का बढता हुआ आकार तथा उत्पादन की जटिलता के कारण प्रबन्ध महत्वपूर्ण तथ्यों की जांच, उनका विश्लेषण तथा समीभूत नहीं कर सकता। वह केवल इन प्रतिवेदनों एवं विवरण पत्रों के माध्यम से ही संस्था के सम्पूर्ण कार्य कलापों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। वास्तव में समस्त व्यवसायिक निर्णय इन्हीं प्रतिवेदनों के आधार पर लिये जाते हैं। प्रबन्ध सूचना प्रणाली का महत्व अग्रांकित लाभों से दृष्टिगत होता है-

(१) भविष्य की योजनायें बनाने में सहायक-

भूतकालीन आंकड़े तथा वर्तमान निष्पादनों की सयूचना नियोजन के लिये आवश्यक होती है। ये आंकड़े एवं तथ्य विभिन्न प्रतिवेदनों एवं विवरण पत्रों से ही उलब्ध होते हैं। भावी नियोजन संबंधी प्रतिवेदन जैसे बजट , सामान्य, व्यवसायिक दशाओं के पूर्वानुमानों इत्यादि के आधार पर प्रबन्ध व्यवसाय की भावी नीति निर्धारण करने में सफल होता हैं। अनेक प्रतिवेदनों के आधार पर ही प्रबन्ध व्यवसाय के प्रत्येक क्षेत्र जैसे उत्पादन व विक्रय मात्रा, उत्पादन विधियां, स्कन्ध, पूंजीगत विनियोग, वस्तु की किस्म आदि के बारे में नीति निर्धारण करता है। इसी लिये यहां यह कहना अनुचित न होगा कि कोई भी प्रबन्धक प्रभावी प्रतिवेदन प्रणाली के अभाव में नियोजन की रुप रेखा तैयार नहीं कर सकता।

(२) नियंत्रण में सहायक -

इस प्रणाली के माध्यम से प्रबन्ध को यह जानकारी मिल जाती है वास्तविक निष्पादन एवं पूर्व नियोजित लक्ष्यों में। कितना अन्तर है तथा व अन्तरों का क्या कारण है। इन सूचनाओं के

आधार पर वह प्रतिकूल विचरणों को दूर करने के लिये आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। आतंरिक प्रतिवेदनों के आधार पर व्यक्तिगत सर्वेक्षण तथा सम्बन्ध की अपेक्षा अधिक प्रभावी नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। वास्तव में ये प्रतिवेदन ही नियंत्रण का आधार होते हैं। प्रत्येक संचालन क्रिया की जानकारी होते ही असाधारण घटना को रोका जा सकता है। इनकी उपयोगिता तभी है जब इनके आधार पर प्रबन्ध समय कर उचित कार्यवाही करें क्यों कि ये प्रतिवेदन स्वयं कोई नियंत्रण नहीं हैं।

(३) अपवाद द्वारा प्रबन्ध में सहायक -

आधुनिक प्रबन्ध का "" अपवाद द्वारा प्रबन्ध " एक सिद्धान्त है, जिसका आशय यह है कि प्रबन्ध को सामान्य संचालन की दशा में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। केवल उन्हीं क्षेत्रों में तथा उसी समय हस्तक्षेप करना चाहिये जहां आवश्यकता हो अर्थात कोई क्रिया पूर्व नियाजित ढंग से न चल रही हो। प्रतिवेदन इस सिद्धान्त की क्रियान्विति में सहायक होती हैं, क्योंकि इन प्रतिवेदनों में अपवादात्मक एवं महत्वपूर्ण वातें स्पष्ट कर दी जाती है। जिससे प्रबन्ध अपना पूरा ध्यान इन समस्याओं के समाधान में लगा सकता है।

(४) बाह्य पक्षों के प्रति दायित्व का निर्वाह -

व्यावसायिक प्रक्रियाओं की सूचना केवल नियोजन तथा नियंत्रण की दृष्टि से ही प्रबन्धकों के लिये अनिवार्य नहीं है वल्कि वैधानिक रुप से ऐसी सूचनायें व्यवसाय के स्वामियों व ऋणदाताओं, जिन्हौंने व्यवसाय में धन लगाया है, दी जानी चाहिये। लेखांकन प्रतिवेदन प्रबन्धकों के इस दायित्व की पूर्ति में भी सहायक होते हैं। विभिन्न प्रकार के लेखांकन विवरण बाहरी पक्षकारों को संस्था की प्रगति के बारे में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। इससे संस्था की ख्याति में वृद्धि होती है।

(५) कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि -

प्रतिवेदन व्यवस्था सें संस्था के कर्मचारियों की कार्यकुशलता भी वढ़ती है। वे अपने-अपने कर्तव्य के प्रति संचेत रहते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि विभिन्न प्रतिवेदनों एवं विवरणों के माध्यम से उनके क्रिया कलापों की निरंतर प्रबन्ध को सूचना मिलती रहती है। अकुशलता की दशा में उन्हें उत्तरदायी ठहराया जा सकता हैं। वास्तव में प्रबन्ध इन्ही प्रतिवेदनों एवं विवरणें के आधार पर इनके कार्यो का मूल्यांकन भी करता हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि प्रबन्धकों के लिये अच्छी सूचना प्रणाली का वही महत्व है जो एक व्यक्ति के रक्त संचार का है। जिस प्रकार एक व्यक्ति को स्वस्थ्य रहने के लिये उसके शरीर में नियमित रक्त संचार होते रहना आवश्यक है , रक्त संचार में बाधा आने से व्यक्ति बीमार पड़ जाता है तथा रक्त संचार बन्ध हो जाने पर उसकी मृत्यु हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार अपने व्यवसाय को ठीक से चलाने के लिये नियमित संचार होते रहना आवश्यक है।

किसी व्यवसायिक संस्था में प्रबन्ध सूचना प्रणाली का संस्थापन एक आसान कार्य नहीं है। यह एक विशेष प्रकार का कार्य है । इसी लिये इस प्रणाली की संस्थापन में विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता होती हैं। इसके संस्थापन के लिये विभिन्न स्थल के प्रबन्धकों की सूचना सम्बन्धी वास्तविक आवश्यकताओं को पहचानना पड़ता है और यह मालूम करना होता है कि उन्हें प्राप्त करनें के लिये अच्छे साधन कौन कौन हैं।प्रबन्ध सूचना प्रणाली की संस्थापन में अंग्राकितचरण होते है-

१- सूचना सम्बन्धी आवश्यकताओं को मालूम करना

२- प्रबन्ध सूचना प्रणाली के उद्देश्यों की व्याख्या करना ।

३- सूचना के साधनों को स्पष्ट करना ।

४- तथ्यसंकलन तथा विधियन विधि का निर्धारण करना।

५- सूचना देने की विधि का निर्धारण करना ।

६- लागत लाभ विशलेषण करना।

७- मूल्यांकन करना ।

सूचना प्रणाली के उपकरण (प्रतिवेदन) -

प्रबन्ध लेखापाल का यह कर्तव्य हैं कि वह सम्बन्धित अधिकारियों को व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के तथ्यों को एकत्रित एवं विधियन करकें उचित समय पर प्रस्तुत करें । इसी स्थिति में प्रबन्धकगण उचित निर्णय लेकर नीति निर्धारित कर सकतें है। प्रबन्ध लेखापाल के इस कार्य को प्रतिवेदन देने का कार्य कहते है, यह कार्य कठिन तथा जटिल होता है । प्रबन्ध लेखापाल द्वारा इस कार्य का प्रतिपादन विभिन्न प्रतिवेदन तथा विवरण पत्रों के प्रस्तुतिकरण के द्वारा किया जाता हैं। इस प्रकार व्यवसाय के संचालन तथा विधि आंकड़ों के सम्बन्ध में सामायिक प्रतिवेदन तैयार करने तथा उन्हें सम्बन्धित प्रबन्ध अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करनें की क्रिया को

प्रबन्ध हेतु प्रतिवेदन कहते हैं। प्रबन्ध हेतु तैयार किये गयें लेखांकन प्रतिवेदनों को केई आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता हैं। प्रमुख वर्गीकरण इस प्रकार हैं-

१- उद्देश्य अथवा प्रयोगकर्ता के आधार पर-

(अ) आन्तरिक्त प्रतिवेदन (ब) बाह्य प्रतिवेदन

२- निहित सूचना तथ्य के आधार पर

(अ) परिचालन प्रतिवेदन (ब) वित्तीय प्रतिवेदन -

३- प्रकृति के आधार पर

(अ) उपक्रम प्रतिवेदन (ब) नियंत्रण प्रतिवेदन, (स) अन्वेषणात्मक प्रतिवेदन

४- क्रियाशीलता के आधार पर

(अ) व्यक्तिगत क्रियाशीलता प्रतिवेदन ,(ब) संयुक्त क्रियाशीलता का प्रतिवेदन

१- उद्देय अथवा प्रयोगकर्ता के आधार पर वर्गीकरण -

(अ) अन्तरिक्त प्रतिवेदन -

इस प्रकार के प्रतिवेदन प्रबन्धों को योजना वनाने, निर्देश देने, बजट वनाने समन्वय करनें एवं व्यवसायी क्रियाओं के नियत्रंण में संयोग देने के लिये प्रयोग किये जाते हैं। ऐसे प्रतिवेदनों में दी गयी सूचनायें उनका प्रारुप तथा भेजने का समय प्रयोगकर्ता की आवश्यकताओं पर निर्भर होता है। इन प्रतिवेदनों को पुन: तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैं-

(क) नैतिक सामान्य या अवधि प्रतिवेदन - ये प्रतिवेदन दैनिक क्रियाओं के अंग होते हैं तथा एक निशिचत अवधि से सम्बन्धित होते हैं। ये प्रतिवेदन व्यवसाय के उत्पादन, बजट, वित्तीय स्थिति, लागत, इत्यादि से सम्बन्धित होते हैं। जिनमें एक निशिचत अविधि से सम्बन्धित उत्पादन मात्रा, उत्पादन लागत,बजट तथा उससे होने वाला अन्तर लाभ हानि की मात्रा, व्यवसाय की स्थिति, प्रति इकाई लागत आदि से सम्बन्धित सूचनायें होती हैं।

(ख) विशिष्ट प्रतिवेदन - इस प्रकार के प्रतिवेदन किसी विशिष्ट नीति या समस्या से सम्बन्धित होते हैं। जब कभी प्रबन्ध के समक्ष कोई समस्या उत्पन्न होती है तब उसके लिये अनुसंधान आवश्यक होता है। इस अनुसंधान से प्राप्त तथ्य एवं सफारिशें जिस प्रतिवेदन में समाहित की जाती हैं, वह विशेष प्रतिवेदन कहलाता है। ऐसे प्रतिवेदनों की आवश्यकता उच्च्व प्रबंध

को विशेष निर्णय लेने, योजना बनाने, नीति निर्धारित करने तथा समस्या को सुलझाने के लिये होती है। ये प्रतिवेदन मुख्य रुप से उच्च प्रबन्ध द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं।

(ग) प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन- आधुनिक प्रबन्ध लेखा सूचनाओं द्वारा ही होता है। इन सूचनाओं के आधार पर ही प्रबन्ध अपने नियंत्रण, निर्देशन तथा समन्वय के कार्य को सम्पादित करता है। ये लेखा सूचना विभिन्न आंतरिक प्रतिवेदनों के रुप में दी जाती है। प्रबन्धकीय स्तर के आधार पर प्रतिवेदन तीन वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं-

१- उच्च स्तरीय प्रबन्ध अथवा संचालक मण्डल को प्रतिवेदन

२- मध्य स्तरीय प्रबन्ध का प्रतिवेदन

३- निम्नस्तरीय अथवा सुपरवाइजर स्तर के प्रबन्ध को प्रतिवेदन ।

(ब) बाह्य प्रतिवेदन -

ये प्रतिवेदन व्यवसाय में रुचि रखने वाले बाह्य व्यक्तियों के लिये तैयार किये जाते हैं जिससे वे व्यवसाय के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनायें प्राप्त करलें । बाह्य व्यक्तियों में अंशधारी ,ऋणपत्र धारी,लेनदार, सरकार, बैंक, स्कन्ध विपणि इत्यादि आते हैं। बाह्य उपयोग के लिये वनाये जाने वाले प्रतिवेदन अत्यन्त संक्षिप्त होते हैं लेकिन ये बहुत ही महत्वपूर्ण सूचनायें प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति या संस्था इस व्यवसाय में धन विनियोजित करते हैं, उन्हें कम्पनी की प्रगति, वित्तीय स्थिति आदि के बारे में समय-समय पर इनको सूचना देना आवश्यक होता हैं।

२- निहित सूचना तथ्य के आधार पर वर्गीकरण -

(अ) परिचालन प्रतिवेदन -

ये प्रतिवेदन व्यवसाय के संचालन परिणामों से सम्बन्धित होते हैं। इनमें उन वित्तीय सूचनाओं का समावेश होता है जो अन्तर विभागीय कुशलता तथा कुल उत्पादन का पुनरीक्षण एवं नियंत्रण करने में प्रयोग आती हैं। इन प्रतिवेदनों को बनाने में सीमांत लागत विधि का प्रयोग किया जाता है। इन प्रतिवेदनों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

(क) नियंत्रण प्रतिवेदन - ये प्रतिवेदन प्रबन्ध लेखांकन की नियंत्रण प्रक्रिया के आधार होते हैं। प्रत्येक व्यवसाय में नियंत्रण के लिये उत्तरदायित्व केन्द्रों की स्थापना की जाती है। इनमें

प्रत्येक केन्द्र के क्रियाकलापों पर नियंत्रण रखने के लिये प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं। इनमें वास्तविक निष्पादनों की बजटीय अथवा प्रमापों से तुलना करके विचरणों की सीमा एवं उनके कारणों को स्पष्ट किया जाता है।

(ख) सूचना प्रतिवेदन- व्यवसाय संचालन से सम्बन्धित तथ्यों एवं सूचनाओं को सरल तथा स्पष्ट रुप सें प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये बनाये जाने वाले प्रतिवेदन, सूचना प्रतिवेदन कहलाते हैं। इनमें दी गयी सूचनायें व्यवसाय की नीति एवं योजनाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। ये प्रतिवेदन भी तीन प्रकार के होते हैं- १- प्रवृति प्रतिवेदन ,२- विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन, ३- क्रियाशीलता प्रतिवेदन

(ब) वित्तीय प्रतिवेदन -

व्यवसाय की वित्तीय स्थिति से सम्बन्धित जो प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं, वित्तीय प्रतिवेदन कहलाते हैं। प्रबन्धकों ने अंशधारियों के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह किया है या नहीं,इसकी जानकारी इन प्रतिवेदनों में मिलती है। वित्तीय प्रतिवेदन परिचालन प्रतिवेदनों से भिन्न होते हुये भी आपस में सम्बन्धित होते हैं। जहां वित्तीय प्रतिवेदन वित्तीय स्थिति को स्पष्ट करता है वहीं परिचालन प्रतिवेदन व्यापार की आय पर प्रकाश डालता है। वास्तव में इन दोनों ही प्रतिवेदनों का साथ-साथ अध्ययन करना अधिक लाभप्रद होता है। इन प्रतिवेदनों के दो प्रकार होते हैं-

(१) स्थिर वित्तीय प्रतिवेदन,

(२)- गतिशील वित्तीय प्रतिवेदन।

३- प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण -

(अ) उपक्रम प्रतिवेदन -

इस प्रतिवेदन के द्वारा उपक्रम की सम्पूर्ण संचालन क्रिया या उसकी किसी विशिष्ट संचालन क्रिया की वित्तीय सूचना संस्था में रुचि रखने वाले वाहरी व्यक्तियों को दी जाती है। विभिन्न प्रकाशित लेखे तथा विवरण जैसे स्थिति विवरण, लाभा लाभ लेखा, संचालकीय प्रतिवेदन, अध्यक्षीय भाषण अंकेक्षक का प्रतिवेदन , आयकर रिटर्न, स्कन्ध विपणि को भेजे जाने वाले प्रतिवेदन इत्यादि इसी श्रेणी के प्रतिवेदन होते हैं।

(ब) नियंत्रण प्रतिवेदन -

नियंत्रण कार्य के लिये अनेक उत्तरदायित्व केन्द्रों की स्थापना की जाती है तथा प्रत्येक केन्द्र के लिये प्रथक नियंत्रण प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। ये प्रतिवेदन साप्ताहिक,पाक्षिक,मासिक, त्रैमासिक ,छ:माही या वार्षिक भी हो सकते हैं। इन प्रतिवेदनों का कोई निश्चित प्रारुप नहीं होता है।

(स) अन्वेषणात्मक प्रतिवेदन -

जब संस्था की किसी विशेष समस्या या परिस्थिति की जांच की जाती है तब जांच के दौरान तथ्यों के आधार जो प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं, उन्हें अन्वेषणात्मक प्रतिवेदन कहते हैं। इस प्रकार के प्रतिवेदन सामान्य प्रतिवेदनों के अर्न्तगत नहीं आते। इन प्रतिवेदनों में समस्या के कारणों का विश्लेषण किया जाता है तथा उसके समाधान के उपायों को प्रस्तुत किया जाता है।

४- क्रियाशीलता के आधार पर वर्गीकरण -

(अ) व्यक्तिगत क्रियाशीलता प्रतिवेदन -

इस प्रकार के प्रतिवेदन किसी एक उत्तरदायी अधिकारी के निर्देशन में सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं तक ही सीमित होते हैं।

(ब) संयुक्त क्रियाशीलता का प्रतिवेदन -

इस प्रकार के प्रतिवेदनों में सभी उत्तरदायी अधिकारियों के निर्देशन में सम्पादित की जाने वाली क्रिया के सामूहिक परिणामों को प्रदर्शित किया जाता है।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों की सूचना प्रणाली का विश्लेषण एवं मूल्यांकन -

१- ग्वालियर रेयान -

इस औद्योगिक संस्था में आधुनिकतम सूचना प्रणाली का उपयोग किया जा रहा दइसके अन्तर्गत आधुनिकतम यंत्रों जैसे कम्प्यूटर यंत्रों जैसे कम्प्यूटर, टैलीफोन , फैक्स इत्यादि का प्रयोग करके सूचनायें एकत्रित करने का कार्य किया गया है जिनका प्रयोग नियोजन संचालन तथा नियंत्रण से सम्बन्धित निर्णय में किया गया है। शोधार्थी को सर्वेक्षण के दौरान ज्ञात हुआ है कि सूचना प्रणाली के प्रयोग से संस्थास में भविष्य की योजनायें बनाने में सहायता मिली है, नियंत्रण में सहायक

रही है, वाह्य पक्षों के प्रति दायित्व निर्वहन में सहायक रही है, कर्मचारियों की कार्यकुशलता को बढ़ाने में मदद मिली है,अपवाद द्वारा प्रबन्धन में सहायता मिली है । इस औद्योगिक इकाई द्वारा अपने मुख्य कार्यालय विरलाग्राम, नागद (म०प्र०) तथा अन्य सहायक इकाईयों से कम्पूटर तथा आधुनिक उपकरणों की सहायता से सूचनाओं का आदान प्रदान होता रहता है ।

२- जे०के० टायर -

शोधार्थी को सर्वेक्षण के दौरान ज्ञात हुआ है कि इस औद्योगिक इकाई द्वारा आधुनिक सूचना प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है। पहले जो कार्य टेलीफोन या पत्राचार द्वारा होता था उसका स्थान कम्प्यूटर तथा फैक्स जैसे उपकरणों ने लिया है। सूचना प्रणाली का उपयोग नियोजन, नियंत्रण तथा संचालन से सम्बन्धित निर्णयन में किया जाता रहा है। यह इकाई सूचना प्रणाली के द्वारा अपने पंजीकृत कार्यालय कलकत्ता तथा अन्य सहायक इकाईयों से निरंतर सम्पर्क बनाये रखती है। इस प्रणाली के प्रयोग से भविष्य की योजनायें बनाने में सहायता मिलती है, नियंत्रण में सहायक हैं, बाहरी पक्षकारों के प्रति दायित्व निर्वहन में सहायक रही है, कर्मचारियों की कार्य कुशलता को बढ़ाने में मदद मिलती है, इसके साथ ही संस्था के विभिन्न विभागों में प्रभावी समन्वय स्थापित करने में सहायक हैं।

३- गोदरेज-

सर्वेक्षण के दौरान शोधार्थी को ज्ञात हुआ है कि इस निर्माणी इकाई द्वारा अधिक आधुनिक सूचना प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है,नये-नये उपकरण जैसे फैक्स, कम्प्यूटर , टेलीप्रिन्टर्स इत्यादि के आविष्कार से यह सम्भव हो सका है। संस्था द्वारा सूचना प्रणाली का उपयोग नियोजन, नियंत्रण एवं संचालन से सम्बन्धित निर्णयन में किया जाता रहा है। यह संस्था सूचना प्रणाली के द्वारा अपने पंजीकृत कार्यालय बम्बई एवं अन्य सहायक इकाईयों से निरंतर सम्पर्क स्थापित करती रहती है और सूचनाओं का आदान-प्रदान होता रहता है सूचना प्रणाली के प्रयोग से संस्था को भविष्य की योजनायें बनाने में मदद मिलती है, संस्था की गतिविधियों, नियंत्रण में सहायता मिलती है,संस्था को बाह्य पक्षकारों के प्रति दायित्व निर्वहन में सहायता मिलती है, संस्था के कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है जिसका लाभ अन्ततः संस्था को ही मिलता है,इसके साथ-साथ संस्था के विभिन्न विभागों में प्रभावी समन्वय स्थापित करने में सहायता मिलती है।

४- पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) -

शोधार्थी को सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि इस औद्योगिक संस्था द्वारा आधुनिकतम सूचना प्रणाली का उपयोग किया जाता है, इसके अन्तर्गत टेलीफोन, फैक्स, कम्प्यूटर तथा टेलीप्रिन्टर्स इत्यादि उपकरण सम्मलित हैं। यह संस्था सूचना प्रणाली के द्वारा अपने पंजीकृत कार्यालय कोचीन तथा अन्य सहायक इकाईयों से लगातार सम्पर्क बनाये रखती है और सूचनाओं का आदान-प्रदान करती रहती है। इस संस्था द्वारा सूचना प्रणाली का उपयोग नियोजन, नियंत्रण तथा संचालन से सम्बन्धित निर्णय लेने में किया जाता हैं। सूचना प्रणाली के उपयोग से संस्था को भविष्य की योजनायें बनाने में मदद मिलती है, संस्था की गतिविधियों पर नियंत्रण सम्भव हो जाता है, बाह्य पक्षकारों से सतत् सम्पर्क बना रहता है संस्था के कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है जिससे संस्था लाभान्वित होती है, इसके साथ ही संस्था को विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में सहायता मिलती है जिससे संस्था अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही है।

५- कैडबरीज-

सर्वेक्षण के दौरान शोधार्थी को बताया गया है कि इस सांस्था में अति आधानिक सूचना प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है इसके अन्तर्गत महत्वपूर्ण भूमिका कम्प्यूटर की रही है इसके साथ ही टेलीफोन, फैक्स टेलीप्रिन्टर्स इत्यादि उपकरण भी काम में आते हैं। यह संस्था सूचना प्राणाली के द्वारा अपने पंजीकृत कार्यालय बम्बई से लगातार सम्पर्क बनाये रहती है तथा सूचनायें एकत्रित होती रहती हैं। इसके साथ ही संस्था अपनी सहायक इकाईयों से भी सम्पर्क बनाये रखती है। इस संस्था द्वारा सूचना प्रणाली का उपयोग नियोजन, नियंत्रण एवं संचालन से सम्बन्धित निर्णयन में किया जाता है। सूचना प्रणाली के प्रयोग से संस्था को भविष्य की योजनायें बनाने में सहायता मिलती है, संस्था की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने में सहायता मिलती है, बाहरी पक्षों से सतत् सम्पर्क बना रहता है जिससे बाजार की गतिविधियों की जानकारी मिलती रहती है, संस्था में कार्यरत कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है जिसका लाभ भी संस्था को मिलता है इसके साथ ही संस्था को विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में सहायता मिलती है जिससे संस्था अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही है।

६- ग्वालियर दुग्ध संघ-

सर्वेक्षण के दौरान शोधार्थी को ज्ञात हुआ है कि सहकारी क्षेत्र की यह संस्था अपनी स्थापना के समय से ही हानि में चल रही है इसलिये सूचना प्रणाली के अन्तर्गत आधुनिक तकनीक का प्रयोग नहीं किया गया है क्योंकि आधुनिकतम तकनीक पर व्यय अधिक होता है इसीलिये संस्था में पुराने तरीके ही प्रचलित है, इसके अन्तर्गत पत्राचार , टेलीफोन इत्यादि आते हैं ।

अष्टम अध्याय

आय प्रबन्धन

१- आय का प्रबन्ध - अवधारणा एवं महत्व

२- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में लाभों का पुनर्विनियोजन

३- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में ह्रास प्रबन्धन

४- प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में विभिन्न संचय एवं कोषों का प्रबन्धन

५- लाभांश नीति से आशय एवं प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में इसका मूल्यांकन

आय प्रबन्धन

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है और यह महत्वपूर्ण उद्देश्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि उस व्यावसायिक संस्था में विनियोजित पूंजी का अधिकतम उपयोग करके उससे इतनी आय अर्जित की जा सकें कि उस पर उत्पादन के विभिन्न साधनों को पर्याप्त प्रत्याय देने के बाद भी पर्याप्त आय शेष रहे । व्यवसाय की आय का नियोजन एवं नियंत्रण का कार्य पूंजी एकत्रित करने से भी कठिन है क्योंकि व्यवसाय का भावी विकास इसी तथ्य पर निर्भर करता है कि संस्था के प्रबन्धक आय की व्यवस्था कितनी कुशलता से कर पाते हैं। किसी भी व्यावसायिक संस्था की भावी सफलता उसकी मजवूत आन्तरिक वित्तीय व्यवस्था पर निर्भर करती है। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य है जो एक ओर तो अंशधारियों द्वारा प्रदान की गई पूंजी को सुरक्षित रखता है तथा दूसरी ओर भावी विकास के लिये आन्तरिक पूंजी निर्माण भी करता है। पुराने समय में इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था लेकिन वर्तमान में प्रबन्धक इस ओर विशेष ध्यान देता है। आय के अच्छे प्रबन्ध को प्रबन्धकीय कुशलता का एक दीर्घकालीन मापदण्ड माना जा सकता है। यदि पारम्भिक पूंजी की पर्याप्त व्यवस्था व्यावसायिक संस्था की स्थापना का आधार है तो आपके कुशल प्रबन्ध को भावी प्रगति का एकमात्र आघार कहा जा सकता है।

आय का प्रबन्ध - अवधारणा एवं महत्व :-

आपका प्रबन्ध एक विस्तृत शब्द है और इसका अर्थ व्यवसाय में पूंजी का इस प्रकार नियोजन, समन्वय तथा नियंत्रण करना है कि उससे नियमित पर्याप्त तथा क्रमशः बढ़ती हुई दर से आय प्राप्त की जा सके। आपके प्रबन्ध में व्यवसाय के विभिन्न दायित्वों की पूर्ति और आन्तरिक पूंजी निर्माण भी अन्तर्निहित है। इस तरह संस्था के स्वामियों द्वारा प्रदत्त पूंजी को यथावत बनाये रखने, संचय एवं अन्य आवश्यक कोषों का निर्माण करने एवं स्वामियों को उचित दर से लाभांश वितरित करने के लिये आय का पर्याप्त प्रबन्ध आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार आय का प्रबन्ध एक अत्यन्त व्यापक कार्य पद्धति है और यह तभी सम्भव है जबकि प्रबन्धक व्यवसाय के प्रत्येक कार्य पर अपना प्रभावी नियंत्रण कायम रखे ।

किसी भी व्यावसायिक संस्था को सामान्यतया निम्नलिखित चार प्रकार के साधनों से आय हो सकती है-

(१) प्रमुख व्यवसाय से आय -

संस्था को सबसे अधिक आय उसके प्रमुख व्यवसाय से होती है प्रत्येक व्यावसायिक संस्था का एक नियमित व्यवसाय अवश्य होता है, इस व्यवसाय की प्रगति एवं सफलता में इसके नियमित व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय का सबसे अधिक महत्व होता है । इसीलिये व्यवसाय की स्थापना से पहले ही प्रबन्धकों को इस बात का अच्छी तरह से मूल्यांकन कर लेना चाहिये कि उसे नियमित व्यवसाय से कितनी आय प्राप्त हो सकेगी । इसके पश्चात् भी प्रबन्धकों को चाहिये कि वे इसमें वृद्धि के लिये सदैव प्रयत्नशील रहें । इस आय के सम्बन्ध में प्रबन्धकों को तीन तथ्यों पर विशेष ध्यान देना चाहिये - (क) पूंजी के अनुपात में पर्याप्त आय हो, (ख) आय में नियमितता एवं स्थिरता हो, (ग) आय तथा व्यय में पर्याप्त संतुलन हो ।

(२) सहायक व्यवसाय से आय-

संस्था मुख्य व्यवसाय के अतिरिक्त ऐसे कार्य भी कर सकती है जो उसके उद्देश्यों के अन्तर्गत हों । इस प्रकार के सहायक कार्यों का सम्बन्ध भी प्रमुख कार्यों से ही होता है । संस्था इन्हें प्रासंगिक रुप से प्रमुख व्यवसाय को सरल बनाने तथा मुख्य व्यवसाय की आय को बढ़ाने के लिये कर सकती है । ऐसी स्थिति में संस्था द्वारा अपना हिसाब - किताब इस प्रकार से रखा जाना चाहिये कि जिससे प्रमुख व्यवसाय तथा सहायक कार्यों से होने वाले आय-व्यय की गणना अलग - अलग की जा सके । एक सफल प्रबन्धक को चाहिये कि वह इस सहायक कार्य से भी इतनी आय अवश्य प्राप्त करले कि इसके व्यय पूरे हो जायें । अलग-अलग हिसाब रखने से संस्था हानि में चलने वाले व्यवसाय को छोड़ सकती है ।

(३) विनियोग से आय-

कभी-कभी व्यावसायिक संस्थायें अपने अतिरिक्त धन का विनियोग सरकारी तथा अन्य प्रतिभूतियों में करती हैं । ये विनियोग केवल उसी स्थिति में किये जाने चाहिये जबकि कम्पनि के पास ऐसे अतिरिक्त कोष हों जिनकी राशि का प्रयोग संस्था के अन्दर समुचित रुप से न हो सकता हो । ऐसे विनियोग सहायक कम्पनी के अंशों, सरकारी प्रतिभूतियों तथा अन्य कम्पनी के ऋणपत्रों में

किये जा सकते हैं। सहायक कम्पनियों मे विनियोग केवल उसी स्थिति में किये जाने चाहिये जब उनका नियंत्रण भी कम्पनी के हाथों में ही हो तथा कम्पनी उनकी नीतियों को प्रभावित करने की स्थिति में हो। अस्थायी विनियोग सरकारी अथवा अन्य ऐसी प्रतिभूतियों में हो सकता है जिन्हें आवश्यकता के समय बेचकर धन प्राप्त किया जा सकता है।

(४) विशिष्ट आय -

यह आय नियमित अथवा साधारण आय नहीं होती बल्कि विशेष अथवा असाधारण परिस्थितियों में ऐसी आय हो सकती है जैसे किसी स्थायी सम्पत्ति को बेचने पर प्राप्त होने वाली अतिरिक्त आय, अंशों के निर्गमन पर प्राप्त होने वाली प्रीमियम की राशि,अंशों के हरण अथवा समर्पण से होने वाली आय इत्यादि । ऐसी आय का उपयोग भी विशिष्ट उद्देश्यों के लिये करना चाहिये ।

आय की गणना व्यावसायिक संस्था की प्रबन्ध - क्षमता एवं कार्यकुशलता का उचित मापदण्ड मानी जा सकती हैं लेकिन याहं सवाल यह उठता है कि उचित आय क्या है ? सामान्यत: उचित आय वही हो सकती है जिसमें कोई व्यावसायिक संस्था अपनी आय में से संचालन व्यय घटाने के बाद कम से कम इतना शुद्ध लाभ बचा ले जिससे विभिन्न कोषों एवं करों के प्रावधान के बाद अंशधारियों को उचित लाभांश दिया जा सके। शुद्ध आय का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये विभिन्न अनुपातों का सहारा लिया जा सकता है जैसे लाभ एवं चुकता पूंजी का अनुपात, लाभ एवं कुल पूंजी का अनुपात, लाभ एवं कुल बिक्री का अनुपात इत्यादि। विभिन्न उद्योगों में अथवा एक ही उद्योग की विभिन्न संस्थाओं में प्रचलित अनुपातों की तुलना करके उचित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। आय की सही गणना का व्यवसाय में बहुत महत्व होता है। उचित सिद्धान्तों पर आधारित वित्तीय लेखें अंशधारियों को यह सूचित करते हैं कि संस्था के प्रबन्धक उनकी पूंजी का उचित प्रयोग कर रहे हैं या नहीं। इसके अतिरिक्त आय की सही गणना निम्न कारणों से भी विशेष महत्वपूर्ण हैं-

१- व्यावसायिक संस्थाओं पर भी व्यक्तियों की तरह आयकर लगता है, अत: कर दायित्व की गणना करने के लिये सही आय की गणना करना आवश्यक है।

२- प्रति अंश अर्जित आय की दर अंशों के बाजार मूल्य को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

३- व्यावसायिक संस्था की भावी वित्तीय नीतियां जैसे- पूंजीकरण, पूंजी संरचना में परिवर्तन आय का पुनर्विनियोग , आपकी सही गणना पर ही निर्भर करती हैं ।

४- आय के आधार पर ही वित्तीय संस्थायें ऋण देने या न देने का निर्णय करती है इसलिये आय की सही गणना आवश्यक है ।

५- संस्थाओं के सम्मिश्रण, संविलयन तथा पुर्ननिर्माण की योजनायें आय को ही ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं ।

६- श्रमिकों को बोनस आदि देने, अपनी भावी मूल्य नीति तय करने, तथा भावी उत्पादन मूल्य की गणना करने की दृष्टि से भी शुद्ध आय की गणना बहुत ही महत्वपूर्ण है ।

७- आय की मात्रा के आधार पर ही बाजार में अंशों का विक्रय मूल्य निर्धारित होता है ।

शुद्ध आय की गणना करने के बाद उसके वितरण की समस्या आती है । एक व्यावसायिक संस्था की आय में से मुख्य रुप से चार भाग होते हैं-

(अ) लाभों का पुनर्विनियोजन

(ब) ह्रास प्रबन्धन

(स) संचय एवं कोषों का प्रबन्धन

(द) लाभांश वितरण ।

आय के वितरण के सम्बन्ध में इन घटकों का विस्तृत विवेचन इसी आध्याय में आगे किया गया है ।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में लाभों का पुर्नविनियोजन -

लाभों का पुर्नविनियोजन प्रबन्धक का एक महत्वपूर्ण कार्य है । इसके अर्थ है कि कम्पनी के लाभों के अंश को भविष्य के लिये सुरक्षित रखना तथा उनकी मात्रा बढ जाने पर उनका पूंजीकरण कर देना। लाभों को संचित करने के लिये विभिन्न कोष बनाये जा सकते हैं जैसे सामान्य कोष, सुरक्षित कोष, विकास कोष गुप्त कोष इत्यादि भविष्य में आवश्यकतायें पूरी की जा सकती हैं । जब इन कोषों में से अंशधारियों को सकन्ध लाभांश बांट दिया जाता है तो इसे लाभा का पूंजीकरण करना कहते हैं । स्कन्ध लाभांश को ही दूसरे शब्दों में अधिलाभांश अंश निर्गमन भी कहते हैं ।

किसी भी व्यावसायिक संस्था में सामान्यतया लाभों का पुनर्विनियोजन अग्रांकित तत्वों द्वारा प्रभावित होता है-

१- संस्था की आय-

किसी व्यावसायिक संस्था द्वारा किये जाने वाले पुनर्विनियोजन की मात्रा मुख्यत: उसकी आय पर निर्भर करती है। आवश्यक व्ययों तथा करों की व्यवस्था कर लेने के बाद यदि पर्याप्त आय शेष रहती है तभी कोष बनाने के बारे में विचार किया जाता है । कम्पनी की आय की मात्रा के अनुसार ही पुनर्विनियोजन की मात्रा घटती-बढ़ती है। कम्पनी की आय भी कई तत्वों से प्रभावित होती है जैसे व्यवसाय की प्रकृति , संस्था का आकार, उत्पादन की मांग तथा प्रचलित मूल्य स्तर इत्यादि । सामान्यतया अल्पविकसित देशों में कम्पनियों की आय सीमित होने के कारण उनकी बचत क्षमता और उनकी पुनर्विनियोजन क्षमता भी कम रहती है। लेकिन विकसित देशों में कम्पनियों द्वारा अपने विकास वित्त का अधिकांश भाग लाभों के पुनर्विनियोजन से जुटाया जाता है।

२- लाभांश नीति -

लाभों के पुनर्विनियोजन पर इस वात का भी प्रभाव पड़ता है कि कम्पनी ने लाभांश नीति कैसी अपनाई है। यदि कम्पनी ने उदार लाभांश नीति अपनाई है तो कम्पनी संचिति नहीं बना सकती क्योंकि कम्पनी की आय का अधिकांश भाग लाभांश वितरण में ही प्रयोग हो जायेगा। इसके विपरीत एक कठोर लाभांश नीति इस दिशा में सहायक होती है। भारतीय कम्पनियों में उदार लाभांश नीति तथा प्रति अंश लाभांश की दर की उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर ले जाने की प्रवृंति रही है जिससे उनकी अधिकांश आय वितरित हो जाती है। परिणामस्वरुप वे लाभों का पुनर्विनियोज़न करने में असमर्थ रहती हैं।

३- सरकार की कर नीति -

व्यावसायिक संस्थाओं की बचत क्षमता को सरकार की कर नीति बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है। यदि कर की दरें ऊंची हों तो कम्पनियों के लाभ कम रह जायेंगे और फिर वे उसे लाभाशं बांटने के काम में ही ले जायेंगी तथा लाभों का पुनर्विनियोजन नहीं करेंगी। इसके विपरीत

उदार कर नीति वचतों की प्रोत्साहित करती है और लाभों के पुनर्विनियोजन को भी बढ़ावा मिलता है ।

४- प्रबन्धकीय दृष्टिकोंण -

लाभों के पुनर्विनियोजन की मात्रा इस बात पर भी निर्भर करती है कि उच्च स्तरीय प्रबन्धकों का क्या दृष्टिकोंण है । यदि वे आन्तरिक वित्त प्रबन्धन से विकास करना चाहते हैं तो वें लाभों के पुनर्विनियोजन के लिये सदैव प्रयलशील रहेंगे अन्यथा वे वर्तमन आय से ही सन्तुष्ट रहेंगे और कोई वित्तीय नीति सम्बन्धी प्रयोग नहीं करेंगे ।

५- पूंजी संरचना -

कई व्यावसायिक संस्थाओं की पूंजी संरचना इस प्रकार की होती है कि वे आगे चलकर अल्प पूंजीकरण का शिकार हो जाती हैं । इसलिये वे आन्तरिक साधनों द्वारा वित्त व्यवस्था का प्रयत्न करती हैं जबकि अति पूंजीकृत संस्थायें लाभों के पुनर्विनियोजन की नीति में कुछ ढील भी दे सकती हैं । इस प्रकार संस्था का वित्तीय ढांचा भी लाभों के पुनर्विनियोजन की राशि को निर्धारित करने का एक महत्वपूर्ण घटक है ।

६- विकास की सम्भावनायें -

संस्था के विकास की सम्भावनायें भी लाभ के पुनर्विनियोजन को प्रभावित करती हैं । यदि संस्था का निकट भविष्य में " विस्तार करना हो तो ऐसी स्थिति में लाभों का पुनर्विनियोजन अधिक मात्रा में होगा इसके विपरीत यदि संस्था के पास विकास एवं विस्तार की निकट भविष्य में कोई योजना न हो तो वह लाभांश बांटकर ही अंशधारियों को संतुष्ट करना चाहेगी ।

७- अन्य तत्व-

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्व भी होते हैं जो लाभों के पुनर्विनियोजन पर अपना प्रभाव डालते हैं जैसे- देश-विदेश की सामान्य आर्थिक दशायें, भावी व्यापार चक्र की सम्भावना, सरकार की उद्योग सम्बन्धी नीति, उद्योग में प्रचलित परम्परायें, भावी स्वामित्व व नियंत्रण का लाभ इत्यादि ।

व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा जो लाभों का पुनर्विनियोजन किया जाता है उससे संस्था, अंशधारियों एवं समाज को अनेक लाभा होते हैं इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

(अ) व्यावसायिक संस्था को प्राप्त होने वाले लाभ -

१- व्यापार चक्र से सुरक्षा -

व्यवसाय में सदैव एकसा समय नहीं रहता। कभी तेजी का चक्र आ जाता है तो कभी मंदीकाल आ जाता है। विशेष रुप से मन्दी के समय वे ही संस्थायें आर्थिक संकट का सामना करती हैं जिनके आन्तरिक साधन अपर्याप्त हों।

२- लाभांश नीति में स्थायित्व -

व्यावसायिक संस्था की ख्याति के लिये स्थायी लाभांश नीति अत्यन्त आवश्यक है। अनियमित एवं अनिशिचत लाभांश नीति पूंजी बाजार में संस्था की साख को कम कर देती है। यदि संस्था के पास लाभों का पर्याप्त संचय है तो वह स्थायी एवं सुनिशिचत लाभांश नीति का अनुगमन कर सकती है, क्योंकि कम लाभ वाले वर्षों में भी अंशधारियों को उचित लाभांश दिया जा सकता है।

३- विस्तार की सम्भावनायें -

लाभों के पुनर्विनियोजन आन्तरिक वित्तीय साधन होते हैं जो संस्था के विकास एवं विस्तार का एक उत्तम साधन प्रस्तुत करते हैं। इस रीति से संस्था का विकास तथा विस्तार करने में समय अवश्य कुछ अधिक लगता है लेकिन प्रगति का आधार अधिक ठोस बनता चला जाता है।

४- कार्य कुशलता में वृद्धि -

संस्था के पास नवीनीकरण, ह्रास , मरम्मत तथा प्रति स्थापना के लिये पर्याप्त कोष होता है जिसके आधार पर संस्था अपनी मशीनों तथा आकरणों को अच्छी स्थिति में रखकर कार्य कुशलता के उच्च स्तर को हमेशा कायम रख सकती है। इससे उत्पादन की मात्रा तथा किस्म और लाभ के आकार दोनों में वृद्धि होती है।

५- ह्रास एवं कोषों की पूर्ति -

संस्था लाभों के पुनर्विनियोजन से स्थायी सम्पत्तियों पर ह्रास तथा कोषों की व्यवस्था करने में सफल रहती है जिससे संस्था की स्थिति मजबूत रहती है तथा प्रबन्ध एवं संचालन क्षमता अधिक कुशल बनती है ।

६- ऋणों का विमोचन -

यदि संस्था चाहे तो आन्तरिक साधनों के आधार पर दीर्घकालीन ऋणों, ऋणपत्रों को वापिस कर सकती हैं और ब्याज सम्बन्धी अपने दायित्व में कमी करके अपने लाभों में वृद्धि कर सकती है ।

७- लागत रहित पूंजी -

लाभों के पुनर्विनियोजन से संस्था को लागत रहित पूंजी उपलब्ध हो जाती है । इससे संस्था की औसत पूंजी लागत में कमी आती है जिससे वह संस्था के अंशधारियों को अधिक लाभांश वितरित कर सकती है ।

८- प्रबन्धकों के मनोबल में वृद्धि -

पर्याप्त मात्रा में लाभों के पुनर्विनियोजन प्रबन्धकों को भावी आर्थिक संकटों की चिन्ता से मुक्त करते हैं । इस प्रकार उनके साहस में वृद्धि करके उन्हें अपना समस्त ध्यान कम्पनी की प्रगति के लिये लगाने को प्रेरित करते हैं ।

(ब) अंशधारियों को प्राप्त होने वाले लाभ -

१- अंशों के मूल्य में वृद्धि -

लाभों के पुनर्विनियोजन कम्पनी के समता अंशों के मूल्यों में वृद्धि करते हैं । अंशों का बाजार मूल्य बढ़ जाने पर इच्छुक अंशधारी अपने अंशों को बेचकर पूंजीगत लाभा प्राप्त कर सकते हैं । ऐसे अंशों की हस्तांतरणशीलता में वृद्धि हो जाती है ।

२- आय में वृद्धि -

स्थायी लाभांश नीति के द्वारा अंशधारियों को केवल नियमित आय ही नहीं प्राप्त होती रहती है बल्कि संस्था की सम्पत्ति तथा कार्यकुशलता में वृद्धि हो जाने से लाभ की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती हैं जिससे अंशधारियों को और अधिक आय होती है ।

३- सुरक्षित विनियोग-

अंशधारी व्यावसायिक उतार-चढ़ाव से पड़ने वाले प्रभावों की चिन्ता से मुक्त हो जाते हैं क्योकि लाभों के पुनर्विनियोजन द्वारा उनके विनियोग का आधार अत्यन्त सुदृढ़ एवं सुरक्षित हो जाता है। कम्पनी में उनकी अंश पूंजी का अवशिष्ट मूल्य भी बढ़ जाता है।

(स) समाज को प्राप्त होने वाले लाभ

१- पूंजी निर्माण में वृद्धि -

संस्थाओं द्वारा पुनर्विनियोजित लाभ देश के पूंजी निमार्ण का प्रमुख अंग होते हैं। इनके आधार पर विनियोग दर को बढ़ाया जा सकता है। देश के औद्योगीकरण की गति को अधिक तेज किया जा सकता है। आन्तरिक साधनों के बल पर किया गया विकास तथा विस्तार औद्योगीकरण का प्रमुख आधार बन जाता है।

२- जीवन स्तर में वृद्धि -

कम्पनियों की सुदृढ़ता राष्ट्र की आर्थिक सम्पनता की परिचायक है। सुरक्षित विनियोग एवं नियमित आय से विनियोक्ताओं में व्यवसाय के प्रति निष्ठा उत्पन्न होती है। इसका देश के मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार पर अत्यन्त अनुकूल प्रभाव पड़ता हैं। इससे समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

३- वित्तीय स्थायित्व -

ऐसी संस्थाओं का वित्तीय स्थायित्व उनकी सफलता का द्योतक होता है तथा यह समाज की अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में स्थायित्व लाने में सहायक होता है। आये दिन असफल होने वाली कम्पनियों की संख्या बहुत कम हो जाती है। उत्पादन निर्बाध गति से होता रहता है और उपभोक्ताओं को विभिन्न प्रकार की वस्तुयें सस्ते मूल्य पर मिलती रहती हैं।

लाभों का पुनर्विनियोजन करते जाना एक अमिश्रित वरदान नहीं है। यह एक उचित सीमा तक उपयोगी है और इसका अधिक होना कई दोष पैदा कर देता है इसके प्रमुख दोष हैं- १- एकाधिकारों का सम्भावना ,२- अति पूंजीकरण की आशंका , ३- वित्त का दुरुपयोग , ४- सट्टे की

प्रवृत्ति को प्रोत्साहन, ५- अंशधारियों में तीव्र असंतोष, ६- करदायित्व से बचना, ७- पूंजी का अपव्यय इत्यादि । इस प्रकार अधिक मात्रा में लाभों का पुनर्विनियोजन कदापि उचित नहीं होता है इसलिये संस्था को संतुलित रुप में लाभों का पुनर्विनियोजन करना चाहिये ।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में पिछले तीन वर्षो में जो लाभों का पुनर्विनियोजन किया गया है उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है -

१- ग्वालियर रेयान -

अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ तथा १९९३-९४ में इस व्यावसायिक संस्था ने क्रमश: ८३.०९ करोड़ रुपये, ११२.६ करोड़ रुपये तथा १९५.८४ करोड़ रुपये लाभें का पुनर्विनियोजन किया गया है । यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमश: ६.७ प्रतिशत , ७.८ प्रतिशत तथा १०.४ प्रतिशत है यह विनियोजन प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ३५.५ प्रतिशत अधिक , द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ७३.९३ प्रतिशत अधिक है । यिद हम प्रथम वर्ष के विनियोजन से तृतीय वर्ष के विनियोजन से तुलना करें तो यह १२३.७ प्रतिशत अधिक है । इस प्रकार इस संस्था में लाभों के पुनर्विननियोजन में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है । संस्था ने अपनी परिचालन आय का संतुलित भाग ही इस हेतु विनियोजित किया है । इसी कारण से संस्था के अंशों के मूल्यों में वृद्धि होती रही है तथा विनियोक्ताओं का विश्वास बढ़ा है । संस्था के अंशों के पुस्त मूल्य में भी लगातार वृद्धि होती रही है । पिछले तीन वर्षो में यह मूल्य क्रमश: ८०.५५ रुपये, १२७.९५ रुपये तथा १५७.०१ रुपये रहा है ।इस प्रकार अंशों के पुस्त मूल्य में पिछले तीन वर्षों में लगभग दो गुना वृद्धि हुई हैं ।

२- जे०के० टायर -

इस व्यावसायिक संस्था ने अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२ , १९९२-९३ तथा १९९३-९४ में क्रमश: ८.७२ करोड़ रुपये, १.११ करोड़ रु० तथा १.९३ करोड़ रुपये लाभों का पुनर्विनियोजन किया है । यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमश: २.७ प्रतिशत , ०.३ प्रतिशत, तथा ०.४ प्रतिशत है । इसमें पिछले तीन वर्षो में लगातार कमी आती रही हैं । इस प्रकार संस्था ने लाभों का नगण्य भाग ही पुनर्विनियोजित किया है । तृतीय वर्ष में तो यह राशि ऋणात्मक रही है ।

इसी की बजह से संस्था के अंशों के पुस्त मूल्य में कमी आती रही है। पिछले तीन वर्षो में यह क्रमशः १७६.६९ रुपये, २०४.०२रु० तथा १३१.०२ रुपयें रहती है। इसी के कारण अंशों के बाजार मूल्य में लगातार कमी आती रही है जिससे विनियोक्ताओं को लाभ के स्थान पर हानि हुई है। इस प्रकार संस्था के प्रबन्धकों ने लाभों के पुनर्विनियोजन के सम्बन्ध में संतुलित नीति का अनुगमन नहीं किया है।

३- गोदरेज-

इस संस्था में अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९ ,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः ९.७५ करोड़ रुपये, २८.८८ करोड़ रुपये एवं १६.६५ करोड़ रुपये के लाभों का पुनर्विनियोजन किया गया है यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १९६ प्रतिशत अधिक, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ४२.३५ प्रतिशत कम है । यदि हम प्रथम वर्ष के लाभों के पुनर्विनियोजन से तृतीय वर्ष के लाभों के पुनर्विनियोजन से तुलना करते हैं तो यह ७०.७७ प्रतिशत अधिक है। यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमशः २.० प्रतिशत , ७.६ प्रतिशत, ४.४ प्रतिशत है। इस राशि में प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में वृद्धि हुई है लेकिन द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय में इसमें कमी आई है। कर की राशि अधिक होने से ऐसा हुआ है। लाभों के पुनर्विनियोजन का प्रभाव संस्था के अंशों के पुस्तकीय मूल्य पर भी देखने को मिलता है। यह क्रमशः १२२२.११ रु० ,३१.४१ रुपये ,५७.९८ रुपये, रहा है। द्वितीय वर्ष में संस्था द्वारा प्रत्येक एक अंश पर ५ अधिलाभ अंश निर्गमित किये गये जिससे संस्था की अंश पूंजी ६ गुना बढ़ गयी और प्रत्येक अंश जो पहले १०० रुपये अंकित मूल्य का था उसे १० रु० के अंकित मूल्य में परिवर्तित कर दिया गया। इस कारण से द्वितीय वर्ष के पुस्त मूल्य में एक दम कमी आई है। वास्तव में देखा जाये तो लाभों के अनुरुप ही संस्था ने पुनर्विनियोजन किया है और संतुलित नीति को ही अपनाया गया है।

४- पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) -

इस संस्था में अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः २३.२६ करोड़ रुपये , ११.०४ करोड़ रुपये,एंव ५.८७ करोड़ रुपये के लाभों का पुनर्विनियोजन किया है। यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमशः ८.३ प्रतिश्सात, २.८ प्रतिशत

तथा १.१ प्रतिशत है । इस प्रकार कुल संचालन आय के अनुपात में इसमें लगातार कमी आई है । यदि प्रथम वर्ष के लाभों के पुनर्विनियोजन से द्वितीय वर्ष से की जाये तो यह ५२.५ प्रतिशत कम, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ४६.८ प्रतिशत कम है । संस्थ में लाभों की कमी के कारण लाभों के पुनर्विनियोजन में कमी आई है । लाभों के पुनर्विनियोजन का प्रभाव संस्था के अंशों के पुस्तकीय मूल्य पर भी देखने को मिलता है । पिछले तीन वर्षों में यह क्रमशः ४८.५५ रुपये, ५२.५५ रुपये, ५४.०१ रुपये रहा है । संस्था की कुल सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि से अंशों के पुस्त मूल्य में वृद्धि हुई है । इससे संस्था के अंशधारियों में संस्था के प्रति विश्वास बढ़ा है और इसके बाजार मूल्य में भी वृद्धि हुई है । संस्था ने अर्जित आय के आधार पर लाभें के पुनर्विनियोजन के सम्बन्ध में संतुलित नीति को अपनाया है ।

५- कैडबरीज -

इस संस्था द्वारा अध्ययन अवधि अर्थात १९९१-९२,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः १.१९ करोड़ रुपये, ०.३६ करोड़ रुपये (ऋणात्मक),४.३३ करोड़ रुपये के लाभों का पुनर्विनियोजन किया गया है । यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमशः ०.८ प्रतिशत, ०.२ प्रतिशत, एवं २.५ प्रतिशत है । संस्था की आय में द्वितीय वर्ष में मूल्यह्रास में अधिक वृद्धि के कारण कमी आई है । इसीलिये लाभों का पुनर्विनियोजन ऋणात्मक रहा है । यदि इस वर्ष को अपवाद मान लिया जाये तो प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में २६६ प्रतिशत अधिक रहा है । संस्था द्वारा संचालित लाभों के पुर्नविनियोजन की नीति का पालन किया है । इसका प्रभाव संस्था के अंशों के पुस्तमूल्य पर भी देखने को मिलता है, पिछले तीन वर्षो की अवधि में यह क्रमशः ३१.९३ रुपये , ५३.३४ रुपये, तथा ५६.९० रुपये रहा है । इस प्रकार अंशों के पुस्तमूल्य में क्रमशः वृद्धि होती रही है । जिसका लाभ संस्था के अंशधारियों को मिला है, संस्था के अंशों के बाजार मूल्य में भी वृद्धि हुयी है इससे अंशधारी लाभांन्वित हुये है । इस प्रकार लाभों के पुर्नविनियोजन की नीति से संस्था के अंशधारियों के विश्वास में वृद्धि हुयी है ।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों द्वारा किये गये लाभों के पुनर्विनियोजन को निम्नांकित तालिका के रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

तालिका

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों द्वारा किये गये लाभों का पुनर्विनियोजन[८.१] (करोड़ रुपयों में)

औद्योगिक-इकाई	१९९१-९२		१९९२-९३		१९९३-९४	
	पुनर्विनियो-जित राशि	कुल संचालन आय का प्रतिशत	पुनर्विनियो-जित राशि	कुल संचालन आय का प्रतिशत	पुनर्विनियो-जित राशि	कुल संचालन आय का प्रतिशत
ग्वालियर रेयान	८३०९	६.७	११२.६	७८	१९५८४	१०.४
जे० के० टायर	८.७२	२.७	१.११	०.३	-१.९३	(०.४)
गोदरेज	९.७५	२०	२८८८	७.६	१६.६५	४.४
पंचशील (अपोलो टायर लि.)	२३.२६	८.३	११०४	२८	५८७	१.१
कैडबरीज	१.१९	०८	-०.३६	(०.२)	४.३३	२.५
ग्वालियर दुग्ध संघ	-	-	-	-	-	-

६- ग्वालियर दुग्ध संस्था -

यह संस्था दुर्भाग्यवश अपने स्थापना वर्ष से ही हानि में चल रही है और इसकी हानियां उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। इस प्रकार संस्था के पास लाभों के पुनर्विनियोजन के लिये कोई राशि होने का प्रश्न ही नहीं उठता । लाभों के पुनर्विनियोजन संस्था द्वारा अर्जित लाभों में से ही किये जा सकते हैं, जब लाभ ही नहीं हुये हैं तो लाभों का पुनर्विनियोजन सम्भव ही नहीं है। इस संस्था के स्वामियों को इस हानि के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ा हैं। और उनके विश्वास को ठेस पहुंची है।

(8.1) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में ह्रास प्रबन्धन -

ह्रास की व्यवस्था अंचल एवं स्थायी सम्पत्तियों पर की जाती है ह्रास की व्यवस्था सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन एवं विस्तार हेतु वित्त प्रबन्धन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है । जो स्थायी सम्पत्तियां व्यवसाय में उपयोग में लाई जाती हैं, उनका जीवन सीमित होता है । प्रयोग के कारण उनकी उपयोगिता एवं मूल्य घटता ही जाता है । अत: उन पर ह्रास की व्यवस्था आवश्यक है । ह्रास का साधारण अर्थ किसी भी अचल सम्पत्ति के मूल्य में कमी आने से है । व्यवसाय में निरंतर प्रयोग एवं टूट-फूट के कारण स्थायी सम्पत्तियों के मूल्य में कमी होती रहती है, जिसे हम दूसरे शब्दों में अवक्षयण भी कहते हैं ।

कार्टर के अनुसार - "किसी सम्पत्ति के मूल्य में किसी भी कारण से होने वाली शनै:-शनै: और स्थायी कमी को ह्रास कहते हैं ।"[१]

स्पाइसर एवं पैगलर के अनुसार, "ह्रास की परिभाषा इस प्रकार से दी जा सकती हैं कि वह सम्पत्ति के क्रियात्मक जीवन की समाप्ति की माप है जो कि एक निशिचत समय में किसी भी कारण से हुई हो ।"[२]

ह्रास की व्यवस्था मुख्यता अग्रांकित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये की जाती है-

(अ) ह्रास एक परिचालन व्यय है । अत: सही-सही आय ज्ञात करने के लिये संस्था की सकल आय में से स्थायी सम्पत्तियों का भाग ह्रास के रुप में निकलना आवश्यक होता है ।

(ब) सम्पत्तियों को उनके सही मूल्य पर दिखाये जाने के लिये ह्रास की गणना और लेखा करना आवश्यक होता है ।

(स) स्थायी सम्पत्ति के क्रय पर किया गया व्यय विनियोग माना जाता है । यह विनियोग भी कम्पनी की आय कमाने के लिये ही किया जाता है, अत: ह्रास के रुप में इस विनियोग का व्यय भी कम्पनी की वार्षिक आय में से ही निकाला जाना चाहिये ।

(द) ह्रास कोष आन्तरिक वित्तीय स्रोतों का एक महत्वपूर्ण अंग है ।

(य) पुरानी सम्पत्तियों को प्रतिस्थापन करने के लिये ह्रास की व्यवस्था करना आवश्यक है ।

---

(1) वित्तीय लेखांकन - डा0 एस0एम0 शुक्ल पृ0क्र0 ।93
(2) - तदैव - पृ0क्र0 ।93

ह्रास की उचित व्यवस्था करना प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है,अत: इसके सम्बन्ध में प्रबन्धकों को विशेष रुप से अच्छी नीति निर्धारित करनी चाहिये क्योंकि यह विधी उपक्रम की लाभोत्पादकता, सम्पत्ति प्रतिस्थापन, रोकड़ प्रवाह तथा अंशधारियों को मिलने वाले प्रतिफल आदि सभी बातों को प्रभावित करती है । ह्रास की पर्याप्त व्यवस्था करने से जहां व्यावसायिक संस्था को मशीनों तथा यन्त्रादि के आधुनिकीकरण के लिये सरलता से पर्याप्त धन उपलब्ध हो जाता है । संक्षेप में ह्रास काटने की प्रक्रिया में सम्पत्तियों की प्रतिस्थापन लागत, विनियोगों पर समुचित पुरस्कार तथा आय में से भावी विस्तार एवं विकास के लिये कुछ आय का प्रतिधारण करने की अन्तर्धारणा निहित है । इस सम्बन्ध में एक उचित ह्रास नीति बनाई जानी आवश्यक होती है । यद्यपि काटे जाने वाले ह्रास की राशि बहुत कुछ प्रबन्धकों के विचार एवं दृष्टिकोंण पर निर्भर करती है । लेकिन फिर भी व्यावसायिक संस्था की सही आय की गणना करने के लिये यह आवश्यक है कि ह्रास की राशि व्यावसायिक तथा वैधानिक दृष्टि से तर्क संगत तथा संस्था के हित में हो । सामान्यत । ह्रास की नीति का निर्माण करते समय अग्रांकित तत्वों पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है-

१- स्थिरता-

ह्रास की गणना करने की विभिन्न पद्धतियां व्यवहार में लाई जाती हैं । व्यावसायिक संस्था द्वारा चाहे जिस पद्धति से लगाया जाये लेकिन एक बार कोई पद्धति अपना लेने पर उसे निश्चय पूर्वक अपनाना चाहिये । यदि नीति और पद्धति के बार-बार बदला जायेगा तो ह्रास की गणना ठीक ढ़ंग से नहीं हो सकेगी ।

२- सुरक्षा -

ह्रास के बारे में यह पूरी तरह विचार करके निर्णय लिया जाना चाहिये कि प्रबन्ध एवं संस्था को उस सम्पत्ति के विषय में पूरी तरह सुरक्षा प्राप्त हों । ह्रास काटने के कई उद्देश्य होते हैं और एक नीति को उन सभी उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिये ।

३- पुरानी तथा अप्रचलित सम्पत्तियों का प्रतिस्थापन -

प्रबन्धकों को एक अच्छी ह्रास नीति निर्धारित करते समय इस महत्वपूर्ण लक्ष्य को सदैव सामने रखना चाहिये कि सम्पत्ति प्रतिस्थापना के लिये आवश्यक वित्त का आन्तरिक प्रबन्ध हो सके । क्योंकि सम्पत्तियों के मूल्य में होने वाला ह्रास , न केवल लाभों एवं आयों के सही अनुमान लगाने

की समस्या को ही जन्म देता है बल्कि इन सम्पत्तियों के समाप्त हो जाने अथवा पुरानी एंव अप्रचलित पड़ जाने पर नई सम्पत्तियों के क्रय करने की समस्या को भी जन्म देता है ।

४- मूल्य स्तर में होने वाले परिवर्तन -

यह एक आर्थिक प्रगति का महत्वपूर्ण लक्षण है कि जैसे-जैसे प्रगति होती जाती है वैसे-वैसे दीर्घकालीन सम्पत्तियों के मूल्य में भी वृद्धि होती जाती है । जब पुरानी सम्पत्तियों के बदले नई सम्पत्ति खरीदने का समय आता है तो स्वाभाविक रुप से पहले की अपेक्षा अधिक धन की आवश्यकता होती है । इसलिये एक उचित ह्रास नीति में इस बात की व्यवस्था होनी चाहिये कि सम्पत्ति का पूरा मूल्य तो अपलिखित हो ही जाये इसके साथ ही साथ मूल्य में होने वाली अतिरिक्त वृद्धि की भी व्यवस्था हो जाये । सामान्यतया प्रबन्धकों द्वारा इस महत्वपूर्ण घटक की उपेक्षा कर दी जाती है । वे केवल सम्पत्ति के मूल्य का अपलेखन करते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि नई सम्पत्ति खरीदते समय उन्हें अतिरिक्त साधनों की खोज करनी पड़ती है ।

५- वैधानिक अपेक्षायें-

कम्पनी अधिनियम तथा अन्य नियम भी ह्रास की व्यवस्थाओं को प्रभावित करते हैं इसीलिये प्रबन्धकों को ह्रास के सम्बन्ध में कोई निर्णय लेते समय चयह बात भी विशेष रुप से ध्यान में रखना चाहिये कि किसी वैधानिक नियम का उल्लंघन न हो । जैसे भारतीय कम्पनी अधिनियम १९५६ में यह व्यवस्था है कि कोई भी कम्पनी तब तक लाभांश नहीं बांट सकती जब तक कि वह अपनी सम्पत्तियों पर ह्रास की व्यवस्था न कर ले । इसका प्रमुख उद्देश्य यह देखना है कि कम्पनी किसी भी स्थिति में अंशधारियों की उनकी पूंजी लाभांश के रुप में वापिस न कर दें । इसी प्रकार आयकर अधिनियम १९६१ की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत विभिन्न सम्पत्तियों पर स्वीकृत ह्रास दरें उल्लिखित हैं । इस प्रकार ह्रास की व्यवस्था करते समय वैधानिक अपेक्षाओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक है ।

६- अन्य घटक -

ह्रास की व्यवस्था करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि सम्पत्ति के जीवन काल में सम्पत्ति का मूल्य पूरी तरह अपलिखित हो जाये । यदि सम्पत्ति का कोई अवाशिष्ट मूल्य अनुमानित है तो उसे क्रेडिट किया जाना चाहिये ।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में पिछले तीन वर्षों में जो मूल्यह्रास का प्रबन्धन किया गया है वह इस प्रकार है-

(१) ग्वालियर रेयान -

इस व्यावसायिक संस्था में अध्यय अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२,१९९२-९३, एवं १९९३-९४ में क्रमश: ५४.५ करोड़ रुपये, ६६.०७ करोड़ रुपये, एवं ६६.७ करोड़ रुपये का ह्रास प्रबन्धन किया गया है। यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमश: ४.५ प्रतिशत तथा ३.५ प्रतिशत है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में २१.२३ प्रतिशत अधिक , द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ०.९५ प्रतिशत अधिक है। यदि प्रथम वर्ष के ह्रास से तृतीय वर्ष के ह्रास से तुलना करते हैं। तो यह २२.४ प्रतिशत अधिक है। इस प्रकार संस्था ने अपने लाभों की वृद्धि के अनुरुप मूल्यह्रास के आयोजन में भी वृद्धि की है। इससे विभिन्न वैधानिक औपचारिकताओं की पूर्ति के साथ-साथ सम्पत्तियों के सही मूल्यांकन में सुविधा रही है।

(२) जे०के० टायर -

इस व्यावसायिक संस्था में अध्ययन अवधि अर्थात् वर्ष १९९१-९२ ,१९९२-९३ एवं वर्ष १९९३-९४ में क्रमश: २५.०५ करोड़ रुपये, २६.४६ करोड़ रुपये तथा २२.६४ करोड़ रुपये का ह्रास प्रबन्धन किया गया है। यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमश: ७.७ प्रतिशत, ६.४ प्रतिशत एवं ४.३ प्रतिशत है। प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ५.६२ प्रतिशत की वृद्धि हुई है तथा द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १४.४४ प्रतिशत की कमी हुई है। यदि हम प्रथम वर्ष के ह्रास की तुलना तृतीय वर्ष के ह्रास से करते हैं तो इसमें ९.६२ प्रतिशत की कमी हुई है। संस्था की विक्री में प्रतिवर्ष वृद्धि होती रही है जबकि मूल्य ह्रास का तृतिय वर्ष में कम आयोजन किया गया है। जब संस्था अपने विक्रय में वृद्धि करती है तो इसके उत्पादन में भी वृद्धि होती है जिससे स्थायी सम्पत्तियों का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक ही होता है जबकि ह्रास की व्यवस्था उसके अनुरुप नहीं की गई हैं।

(३) गोदरेज :-

इस संस्था द्वारा अध्ययन अविध अर्थात वर्ष १९९१-९२ ,१९९२-९३ एवं वर्ष १९९३-९४ में क्रमश: ६.५१ करोड़ रुपये, ७.०४ करोड़ रुपये तथा ७.३१ करोड़ रुपये का ह्रास

प्रबन्धन किया गया है। यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमशः १.१ प्रतिशत, १.९ प्रतिशत तथा १.९ प्रतिशत है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ८.१४ प्रतिशत अधिक, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ३.८३ प्रतिशत अधिक है। यदि हम प्रथम वर्ष के ह्रास प्रबन्धन से तृतीय वर्ष के ह्रास प्रबन्धन से तुलना करते हैं तो यह ११.२९ प्रतिशत अधिक है। इस प्रकार इस संस्था ने अपने लाभों के अनुरुप ही मूल्यह्रास का प्रबन्धन किया है। इससे वैधानिक औपचारिकताओं की पूर्ति हुई है। इसके साथ ही सम्पत्तियों का मूल्यांकन सही किया गया है।

(४) पंचशील (अपोलो टायर लि०) -

इस व्यावसायिक संस्था में अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ तथा १९९३-९४ में क्रमशः ८.५२ करोड़ रुपये, १७.२७ करोड़ रुपये तथा २३.११ करोड रुपये का ह्रास प्रबन्धन किया गया है। यह संस्था की कुल संचालन आय का क्रमशः ३ प्रतिशत , ४.४प्रतिशत, ५.४ प्रतिशत है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १०२.७ प्रतिशत अधिक ,द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ३३.८ अधिक है। यदि प्रथम वर्ष के ह्रास प्रबन्धन की तुलना तृतीय वर्ष के ह्रास प्रबन्धन से करते हैं तो यह १७१.२४ प्रतिशत अधिक है। संस्था में विक्रय में हुई वृद्धि के साथ साथ ह्रास प्रबन्धन में वृद्धि होती रही है। जिससे सम्पत्तियों के सही मूल्यांकन के साथ- साथ वैधानिक औपचारिकताओं को पूरा करने में मदद मिली है।

(५) कैडबरीज -

इस व्यावसायिक संस्था द्वारा अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२ , १९९२-९३ तथा १९९३-९४ में क्रमशः ३.६७ करोड रुपये, ३.७३ करोड रुपये तथा ३.२७ करोड़ रुपये का ह्रास प्रबन्धन किया गया है। यह संस्था की कुल संचालन आपका क्रमशः २.६ प्रतिशत , २.३ प्रतिशत , एवं १.९ प्रतिशत है।

यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १.६३ प्रतिशत अधिक , द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १२.३३ प्रतिशत कम है यदि प्रथम वर्ष के ह्रास प्रबन्धन से तृतीय वर्ष के ह्रास प्रबन्धन की तुलना की जाती तो यह १०.९ प्रतिशत कम है । संस्था के विक्रय में तो लगातार वृद्धि होती रही है लेकिन ह्रास लगने के कारण संस्था की कुल सम्पत्तियों का मूल्य घटता रहा है। उन्ही के अनुरुप ह्रास का प्रबन्धन किया गया है।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों द्वारा किये गये ह्रास प्रबन्धन को निम्नांकित तालिका के रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

तालिका

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों द्वारा किया गया ह्रास प्रबन्धन ८.२ (करोड़ रुपयो में)

औद्योगिक-इकाई	१९९१-९२		१९९२-९३		१९९३-९४	
	ह्रास की राशि	कुल संचालन आय का प्रतिशत	ह्रास की राशि	कुल संचालन आय का प्रतिशत	ह्रास की राशि	कुल संचालन आय का प्रतिशत
ग्वालियर रेयान	५४.५	४.५	६६०७	४.५	६६.७	३.५
जे० के० टायर	२२०५	७.७	२६.४६	६.४	२२.६४	४.३
गोदरेज	६.५१	१.१	७०४	१.९	७.३१	१.९
पंचशील (अपोलो टायर लि.)	८.५२	३०	१७.२७	४.४	२३.११	५.४
कैडबरीज	३.६७	२.६	३.७३	२.३	३.२७	१.९
ग्वालियर दुग्ध संघ	०.३६	०.४२	०.३३	२.९६	०.४८	२.७२

(६) ग्वालियर दुग्ध संघ -

इस व्यावसायिक संस्था द्वारा अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ तथा वर्ष १९९३-९४ में क्रमशः ३६ लाख रुपये , ३३ लाख रुपये तथा ८ लाख रुपये का ह्रास प्रबन्धन किया गया है। यह संस्था की कुल परिचालन आय का क्रमशः ०.४२ प्रतिशत २.९६ प्रतिशत एवं २.७२ प्रतिशत है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ८.३४ प्रतिशत कम, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में तृतीय वर्ष में ४५.५ प्रतिशत अधिक है। यदि प्रथम वर्ष के ह्रास प्रबन्धन की तुलना तृतीय वर्ष के ह्रास प्रबन्धन से करते हैं तो यह ३३.३ प्रतिशत अधिक है। यदि द्वितीय वर्ष के ह्रास प्रबन्धन को अपवाद मान लिया जाये तो विक्रय के अनुरुप ही ह्रास प्रबन्धन की व्यवस्था की गई है। यद्यपि प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में संस्था की कुल सम्पत्तियां अधिक रही हैं।

(8.2) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0

इसलिये द्वितीय वर्ष में भी मूल्य ह्रास की व्यवस्था प्रथम वर्ष से अधिक होनी चाहिये थी जो नहीं की गई है ।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में विभिन्न संचय एवं कोषों का प्रबन्धन-

आधुनिक युग में वह व्यवसाय सफल होता है जिसकी नीतियां दूरदर्शिता पूर्वक निर्धारित की जातीं हैं तथा भविष्य की समस्त आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर वुद्धिमत्ता पूर्ण एवं विधि पूर्वक योजनायें बनाई जाती हैं । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्रत्येक अच्छी व्यावसायिक संस्था के प्रबन्धक संचय एवं कोषों की व्यवस्था करना उचित समझते हैं ताकि लाभांश भुगतान के पूर्व कुछ राशि सम्भाव्य दायित्व के बंटवारे के लिये अलग रखी जा सके । **गेस्टर्नवर्ग के अनुसार** " यह एक ऐसी लेखा विधि है जिसका प्रयोग किसी सम्पत्ति के पुस्तक मूल्य को कम करने, किसी ज्ञात या सम्भाग दायित्व को पूरा करने अथवा संचित लाभों के समायोजन करने के लिये किया जाता है ।[१]"

संचय किसी ज्ञात हानि या सम्माक हानि के लिये बनाया जाता है । इसका प्रबन्ध लाभहानि खाते को विकलिस करके किया जाता है । चूंकि संचय ज्ञात अथवा सम्भाव्य हानि के अपलेखन के लिये बनाया जाता है, अत: इसका निर्माण करना अनिवार्य होता है चाहे व्यवसाय से लाभ हो अथवा हानि । व्यवसाय के पिछले अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुछ अधमर्ण अशोध्य होते हैं । अत: यह तो कहा जा सकता है कि कुछ अधर्मण अशोध्य तो होंगे ही पर यह निशिचत रुप से नहीं कहा जा सकता कि कितने अधमर्ण अशोध्य होंगे । अत: ऐसी स्थिति में हानि की पूर्ति का प्रबन्ध करना आवश्यक होता है, चाहे व्यवसाय में हानि हो या लाभ । इस प्रकार यह कहा जा सकता है संचय लाभ हानि खाते पर एक आयोजित प्रभार है जो किसी ज्ञात या सम्माक हानि के अपलेखन के लिये होता है । **कार्टर के शब्दों में,** " संचय किसी सम्भाव्य हानि या दायित्व के लिये आयोजन बनाने के लिये, शुद्ध लाभ की गणना करने के पूर्व लाभ पर किया गया प्रभार है ।

जब व्यवसाय की आर्थिक स्थिति ,नीति आदि को दृढ़ बनाने के उद्देश्य से संचय बनाया जाता है तो उसे कोष कहा जाता है । इसका निर्माण केवल विभाजन योग्य लाभ म से ही किया जाता है । **कार्टर के शब्दों में,** " संचित कोष उन लाभों के प्रतिनिध होते हैं जो अलग रख दिये जाते हैं और संचित होते रहते हैं जिससे सीमित प्रमंडल की स्थिरता में वृद्धि हो । " इसी प्रकार के विचार **डिक्सी** ने दिये हैं, उनके अनुसार "संचित कोष उस राशि को कहते हौ जो विभाजन शील लाभ में से

- -

अलग रख दी जाती है और उपक्रम की वित्तीय अवस्था को सबल करने के लिये हाथ में रहती है ।"
संचय एवं कोष सामान्यतया निम्नांकित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं-

१- संस्था की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने के लिये -

संचय करने से व्यवसाय की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है । व्यावसायिक संस्था को इन संचयों के रुप में एक प्रत्यक्ष लागत रहित वित्तीय संसाधन प्राप्त हो जाता है ।

२- शुद्ध आय की गणना हेतु -

सामान्य संचय शुद्ध आय के निर्धारण में अनुमान सम्बन्धी गणनाओं में वरिष्ठ विचारों के कारण होने वाली सम्भावित त्रुटियों से सुरक्षा प्रदान करता है । जैसे- यह सम्भव हो सकता है कि संस्था के प्रबन्धकों ने ह्रास कम काटा तो, किसी ज्ञात हानि के लिये व्यवस्था न की हो तो ऐसी स्थिति में संचय से काम चल जाता है ।

३- लाभांश में समानता लाने हेतु -

संस्था में जिस वर्ष लाभ बहुत अधिक हो प्रबन्धक संचय में स्थानान्तरण करके बांटने के लिये बचे हुये लाभ की मात्रा को कम कर सकते हैं और जिस वर्ष आय कम हो उस वर्ष संचय से निकालकर लाभांश वितरित कर सकते हैं । इस प्रकार लाभांशों की दर में समानता लाई जा सकती है । कुछ प्रबन्धक तो इसी उद्देश्य के लिये लाभांश समानीकरण कोष का ही निर्माण करते हैं ।

४- आन्तरिक पूंजी निर्माण हेतु -

संचय बनाने से व्यवसाय के विकास एवं विस्तार के लिये अतिरिक्त धनराशि की व्यवस्था हो जाती है । बाह्य वित्तीय स्त्रोतों पर संस्था की निर्भरता कम हो जाती है । संस्था सरलतापूर्वक पुरानी एवं अप्रचलित मशीनों के स्थान पर नवीन आधुनिक मशीनों की संस्थापना कर सकती है ।

५- अज्ञात हानियों की व्यवस्था हेतु-

प्रत्येक व्यवसाय में पग-पग पर जोखिम होती है । यह आवश्यक नहीं होता कि संस्था में इस वर्ष लाभ हुआ है तो अगले वर्ष लाभ ही होगा । समाज में घट रहीं अनेक घटनायें व्यावसायिक

क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। अत: ऐसी स्थिति में संचय व्यवसायिक जगत की अनिशिचतताओं के विरुद्ध सुरक्षा कवच का कार्य करते हैं।

६- अन्य उद्देश्य -

कभी-कभी व्यवसाय के लाभों को छिपाने के लिये भी लाभ संचय कोषों में हस्तांतरित कर दिये जाते हैं । उदाहरण के लिये प्रतियोगियों की दृष्टि से असली लाभ छिपाने के लिये , अथवा राजनैतिक कारणों से।

सामान्यतया संचय एवं कोष निम्न प्रकार के हो सकते हैं-

(१) सामान्य संचय-

यह संचय किसी विशेष उद्देश्य को लेकर नहीं बनाया जाता। इसका मुख्य उद्देश्य संस्था की सामान्य वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करना होता है। यह संस्था की दूरदर्शिता एवं बुद्धिमत्ता का परिचायक है। बैंकिग एवं बीमा कम्पनियों में इस कोष का विशेष महत्व होता है, इसका मुख्य कारण यह है कि इससे सदस्यों की सुरक्षा में तो वृद्धि होती ही है, जमाकर्ताओं एवं पॉलिसी होल्डरों को भी अधिक सुरक्षा प्राप्त हो जाती है।

(२) लाभांश समानीकरण कोष -

यह लाभांशों की दरों में समानता लाने हेतु बनाया जाता है। लाभ की मात्रा में प्रतिवर्ष परिवर्तन होते रहते हैं। यदि किसी वर्ष संस्था को लाभ कम होता है तो सामान्य दर से लाभांश देने के लिये इस कोष की सहायता ली जाती है। कम्पनी की साख को बनाये रखने तथा संस्था के अंशों के बाजार मूल्यों में स्थायित्व लाने की दृष्टि से यह कोष विशेष महत्व रखता है।

(३) पूंजी संचय-

इसका आशय ऐसे कोष से होता है जो पूंजीगत प्रकृति के लाभों से बनाया गया हो और जो लाभांश के रुप में वितरण के लिये सुलभ न हों। लेकिन समापन पर ये कोष भी अंशधारियों को ही मिलते हैं। ऐसे कोषों का निर्माण भी संस्था की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिये ही किया जाता है। ये संचय स्थायी सम्पत्तियों के मूल्यों में हुई वृद्धि , समामेलन से पूर्व हुये लाभों, अंशों के हरण अथवा पूंजी में कमी करने के कारण हुई बचत इत्यादि साधनों से बनाये जाते हैं।

(४) सुधार कोष-

संस्था को प्रतिवर्ष हुये लाभ में से कुछ राशि सुधार के लिये पृथक कर दी जाती है और वह इस कोष में जमा रहती है। मशीनों, यंत्रों एवं अन्य सम्पत्तियों के सुधार अथवा आधुनिकीकरण के उद्देश्य से सुधार कोषों की स्थापना की जाती है।

(५) आकस्मिकता कोष-

आकस्मिक दुर्घटनाओं के कारण होने वाली हानि से बचाव के बाद इस कोष की स्थापना की जाती है। जैसे आग,बाढ़ , भूकम्प इत्यादि । इस प्रकार की हानि को एक वर्ष के लाभ से पूरा नहीं किया जा सकता है। अत: इनके लिये संचय बना लेना उचित रहता है।

(६) गुप्त संचय-

ये इस प्रकार के संचय होते हैं जिनका अस्तित्व संस्था के स्थिति विवरण से मालूम नहीं होता । ये सम्पत्तियों को कम मूल्य पर दिखाकर, दायित्वों को अधिक मूल्य पर दिखाकर , पूंजीगत व्ययों को आयगत मानकर, पूर्वदत्त व्ययों को समाप्त करके बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार के संचयों से संस्था की कार्यशील पूंजी में वृद्धि हो जाती है और व्यावसाय की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती जाती है।

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में पिछले तीन वर्षों में जो विभिन्न संचय एवं कोषों का प्रबन्ध किया गया है उसका विवरण इस प्रकार हैं-

१- ग्वालियर रेयान -

इस संस्था के अध्ययन अवधि अर्थात् पिछले तीन वर्षों १९९१-९२,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश ४२६.८४ करोड़ रुपये, ७९५.४१ करोड़ रुपयें, ९९३.३३ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ८६.३५ प्रतिशत अधिक , द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में २४.८८ प्रतिशत अधिक हैं। यदि प्रथम वर्ष के संचय से तृतीय वर्ष के संचय की तुलना करते हैं तो यह वृद्धि १३२.७२ प्रतिशत है। इस प्रकार पिछले तीन वर्षों में ये संचय बढ़कर दो गुना से अधिक हो गये हैं। जिसका प्रभाव यह हुआ है कि एक तो संस्था की वित्तीय

स्थित मजबूत हुई है और दूसरी तरफ अंशों के बाजार मूल्य में काफी वृद्धि हुई है, जिसका लाभ प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप में अंशधारियों को मिला है ।

२- जे०के० टायर -

इस संस्था में पिछले तीन वर्षो अर्थात् वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ तथा वर्ष १९९३-९४ में क्रमशः २३४.०५ करोड़ रुपये, २६७.९ करोड़ रुपये, तथा २९५.४३ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं । यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १४.५ प्रतिशत अधिक, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १०.२७ प्रतिशत अधिक हैं । यदि प्रथम वर्ष के संचयों से तृतीय वर्ष के संचयों की तुलना करते हैं तो ये २६.२३ प्रतिशत अधिक हैं । इस प्रकार इस संस्था के संचय पिछले तीन वर्षो में सवागुने से अधिक हुये है । मूल्य ह्रास में वृद्धि के कारण संस्था के पास शुद्ध लाभ बहुत अधिक मात्रा में शेष न रह पाने के कारण इन संचयों में अधिक धनराशि नहीं ले जायी गई हैं । फिर भी संचयों में वृद्धि से संस्था की वित्तीय स्थिति पर अनुकूल प्रभाव ही पड़ा हैं ।

३- गोदरेज -

इस संस्था द्वारा पिछले तीन वर्षो अर्थात वर्ष १९९१-९२ ,१९९२-९३ एवं वर्ष १९९३-९४ में क्रमशः ४८.४७ करोड़ रुपये, ५५.४९ करोड़ रुपये तथा १५९.०५ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं । यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १४.४८ प्रतिशत अधिक,द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १८६.६ प्रतिशत अधिक हैं । यदि प्रथम वर्ष के संचयों की तुलना तृतीय वर्ष के संचयों से करते हौ तो यह २२८.१४ प्रतिशत अधिक हैं । इस पप्रकार तीन वर्षो में ये संचय तीन गुने से अधिक हो गये हैं । जिसका प्रभाव यह हुआ है कि एक ओर तो संस्था की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ हुई है और दूसरी ओर अंशों के बाजार एवं पुस्तकीय मूल्य में वृद्धि हुई है जिससे अंशधारियों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ हुआ है । इसके साथ ही संस्था की साख में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है ।

४- पंचशील (अपोलो टायर लि०) -

इस संस्था द्वारा अध्ययन अवधि पिछले तीन वर्षो अर्थात् वर्ष १९९१-९२,१९९२-९३ एवं वर्ष १९९३-९४ में क्रमशः १३५.१९ करोड़ रुपये,१४६.१४ करोड़ तथा १६०.१९ करोड़ रुपये

के संचय रखे गये हैं। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ८.१ प्रतिशत अधिक ,द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ९.६१ प्रतिशत अधिक हैं। यदि हम प्रथम वर्ष के संचयों से तृतीय वर्ष के संचयों से तुलना करते हैं तो ये १८.४९ प्रतिशत अघिक हैं। इस प्रकार इस संस्था के संचयों में कोई खास वृद्धि नहीं हो सकी है इसका मुख्य कारण यह रहा है कि संचालन व्ययों में वृद्धि, मूल्यह्रास में वृद्धि , ब्याज में वृद्धि एवं करों में वृद्धि के कारण शुद्ध लाभ में बहुत अधिक राशि का शेष न रहना है। इसी कारण से वहुत कम राशि संचयों हस्तांतरित की गई है। संस्था की वित्तीय स्थिति में तो सुधार हुआ है लेकिन अंशों के बाजार मूल्यों में कमी आई है जिससे अंशोधारियों को पूंजीगत हानि का सामना करना पड़ा है। यद्यपि सम्पत्तियों के शुद्ध मूल्यों में वृद्धि के कारण अंशों के पुस्त मूल्यों में मामूली सी वृद्धि हुई है। इसका प्रत्यक्ष लाभ न होकर अप्रत्यक्ष लाभ होता है और वह भी काफी समय के बाद जब कम्पनी का समापन होता है ।

५- कैडबरीज -

इस संस्था में अध्ययन अवधि पिछले तीन वर्षों अर्थात् वर्ष १९९१-९२,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः १८.४२ करोड़ रुपये,५३.७४ करोड़ रुपये तथा ५८.१५ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १९१.७५ प्रतिशत अधिक , द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ८.२१ प्रतिशत अधिक हैं। यदि प्रथम वर्ष के संचयों के तुलना तृतीय वर्ष के संचयों से की जाती है तो यह वृद्धि २१५.६९ प्रतिशत है। इस प्रकार तीन वर्षों में संचय तीन गुना से अधिक हुये हैं। जिसका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ संस्था के अशंधारियों को मिला है एक ओर तो अंशों के बाजार मूल्य में काफी वृद्धि हुई है तथा दूसरी ओर संस्था की सम्पत्तियों में वृद्धि के कारण, अंशों के पुस्तकीय मूल्य में वृद्धि हुई है। संचयों में वृद्धि से संस्था की वित्तीय स्थिति में सुधार हुआ है। संस्था की साख में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। इसके साथ ही संस्था को पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन प्राप्त हुये हैं।

६- ग्वालियर दुग्ध संघ -

यह संस्था दुर्भाग्यवश अपने स्थापन काल से ही हानि में चल रही है। ऋणों पर ब्याज ,स्थायी सम्पत्तियों पर मूल्यह्रास एवं अन्य संचालन व्ययों में वृद्धि के कारण इसकी हानियों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। इसीलिये इस संस्था द्वारा अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष

१९९१-९२,१९९२-९३ तथा वर्ष १९९३-९४ में कोई भी संचय नही किया गया है। सामान्यतया संचय तभी बनाये जाते हैं जबकि संस्था लाभ में चल रही होती है। जब संस्था को लाभ ही नहीं हुये हैं तो संचय का सवाल ही पैदा नहीं होता है। इसके साथ ही यह एक सहकारी संस्था है। जिसका उद्देश्य व्यवसाय में अधिक लाभ कमाना न होकर नाम मात्र के लाभ पर व्यवसाय चलाना होता है। इस संस्था को इसी कारण से म०प्र० शासन से आर्थिक सहायता भी दी जाती रही है। इसके बाद भी संस्था की हानियां वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ती ही जा रही हैं।

विभिन्न औद्योगिक इकाईयों द्वारा किये गये विभिन्न संचय एवं कोषों के प्रबन्धन को निम्नांकित तालिका द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है-

तालिका

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों द्वारा किया गया संचय एवं कोषों का प्रबन्धन[८.३]

(करोड़ रुपयों में)

औद्योगिक इकाई	१९९१-९२	१९९२-९३	१९९३-९४
ग्वालियर रेपान	४२६.८४	७९५.४१	९९३.३३
जे०के० टायर	२३४.०५	२६७.९	२९५.४३
गोदरेज	४८.४७	५५.४९	१५९.०५
पंचशील (अपोलो टायर लि)	१३५.१९	१४६.१४	१६०.१९
कैडबरीज	१८.४२	५३.७४	५८.१५
ग्वालियर दुग्ध संघ	-	-	-

लाभांश नीति से आशय एवं प्रमुख औद्योगिक इकाईयों में इसका मूल्यांकन -

लाभांश किसी व्यावसायिक संस्था अथवा कम्पनी के लाभों का वह अंश है जो अंशों के सममूल्य के प्रतिशत के रुप में अथवा प्रति अंश एक निशिचत दर से कम्पनी के संचालक मण्डल के

(8.3) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0

निर्णय के अन्तर्गत घोषित एवं वितरित किया जाता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कम्पनी की कुल आय में से समस्त व्यय घटाने, करों का प्रावधान कर देने तथा संचय कोषों को हस्तांतरण कर देने के पश्चात् जो लाभ शेष बचते हैं, उन्हें संचालक अंशधारियों को भुगतान कर देते हैं । लाभों के सम्बन्ध में संचालक मण्डल के सामने दो विकल्प रहते हैं- पहला तो यह कि इन लाभों को व्यवसाय में ही रोककर रखा जाये अथवा दूसरा विकल्प यह कि इन्हें लाभांश के रुप में अंशधारियों को वितरित कर दिया जाये । चूंकि अंशधारी कम्पनी में विनियोग इसलिये करते हैं कि उन्हें इस पर लाभांश मिलेगा । अत: लाभांश का वितरण कम्पनी की वित्तीय आवश्यकताओं तथा लाभ के विषय में अंशधारियों की आशाओं के बीच एक ऐसा समझौता है जिसका प्रमुख आधार कम्पनी के संचालकों का विवेक होता है । **हन्ट के अनुसार** " लाभांश निगम के स्वामियों को प्राप्त आय है जिसे वे स्वामी की हैसियत से प्राप्त करते हैं ।"

एक संस्था की लाभांश नीति निशिख्त करना अति महत्वपूर्ण और प्रबन्ध के महत्वपूर्ण निर्णयों में से एक है । किसी भी फर्म का मूल्य लाभांश भुगतान अनुपात पर निर्भर करता है साथ ही उस संस्था की औसत पूंजी लागत को भी प्रभावित करता है । लाभांश निर्णय का आशय है संस्था के अंशधारियों तथा प्रतिधारित लाभों के बीच आय का विभाजन । संस्था की सम्पत्तियों की प्रतिस्थापना तथा विस्तार कार्यक्रमों से वित्त पोषण के लिये प्रतिधारित लाभ । रोके गये लाभ बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं । यह धन व्यवसाय में ही रहता है और प्रबन्धकों को इस पर कोई प्रत्यक्ष प्रत्याय नहीं देनी पड़ती । दूसरी ओर लाभांश का आशय होता है रोकड़ का संस्था से बाहर जाना अर्थात चालू सम्पत्तियों में कमी । यद्यपि संस्था का विकास और लाभांशोंका वितरण दोनों ही प्रबन्घकों के वांछनीय लक्ष्य हैं । लेकिन इन दोनों में संघर्ष की स्थिति रहती है । ऊंची दर से लाभांश बांटने का आशय है कम प्रतिधारित लाभ ,विकास की धीमी गति, प्रत्याय दर में कमी, अंशों के बाजार मूल्य में सुधार न होना । इसके विपरीत कम लाभांश बांटने का आशय है अंशधारियों को असंन्तुष्ट करना । अत: प्रबन्धकों का यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि वे लाभाश वितरण के बारे में संतुलित निर्णय लें । एक सुदृढ़ एवं संतुलित लाभांश नीति पर्याप्त सीमा तक संस्था की वित्तीय संरचना, कोषों, के प्रवाह, संस्था के कोषों की तरलता, अंशों के पुस्तमूल्य तथा बाजार मूल्यों को प्रभावित करती है । इसीलिये कम्पनियों के प्रबन्धकों द्वारा लाभांश सम्बन्धी निर्णय काफी सोच समझ कर लिया जाता है । जिससे

एक ओर तो अल्पकाल में अंशधारियों को संतुष्ट कर दिया जाता है तथा दीर्घकल में संस्था को विकास हेतु पर्याप्त आन्तरिक पूंजी उपलब्ध करा देते हैं।

लाभांश नीति एक बहुत ही लोचपूर्ण शब्द है इसका आशय है कि संचालक मण्डल द्वारा लाभांश वितरण के सम्बन्ध में प्रतिवर्ष एक समान नीति अपनाई जाये। लाभांश नीति का सामान्य अर्थ लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों, नीतियों एवं कार्यप्रणाली निशिचत करने व लाभांश की दर निशिचत करने तथा उसे वितरित करने की योजना बनाने से होता है। **डा० लिटनर के अनुसार**, "प्रबन्धकों द्वारा लाभांश वितरण सम्बन्धी कोई भी निशचय गत वर्षो के लाभांशों से अवश्य ही प्रभावित होता है।" **वोस्टन एण्ड विंद्यम के अनुसार** " प्रबन्धकों के सामने यह विकल्प नहीं होता कि लाभांश बाटें अथवा न बाटें, हां यह प्रश्न अवशय है कि कितना बाटें, इस प्रश्न का उत्तर लाभांश नीति से मिलता है। "इस सम्बन्ध में गत वर्षो में वितरित लाभांश की दर आधार बिन्दु का काम करती है। सामान्यतया प्रबन्धक लाभांश दर को नियमित करने का प्रयत्न करते हैं जिसे हम सुस्थिर लाभांश नीति की संज्ञा दी जा सकती है। इसका अर्थ यह है कि प्रबन्धकों द्वारा यह प्रयत्न किया जाता है कि अंशधारियों को प्रति वर्ष लाभांश के रुप में जो धनराशि प्राप्त हो वह लगभग समान हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे एक सुनिशिचत लाभांश नीति का पालन करते हैं लेकिन यह अनेक तथ्यों से प्रभावित होती है। लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व अग्रांकित हैं-

(१) लाभों की स्थिति-

लाभांश आय व लाभों से ही वितरित किये जाते हैं इसीलिये प्रबन्धकों को यह देखना होता है कि लाभ पर्याप्त है अथवा नहीं। लाभों का कितने प्रतिशत भाग लाभांश के रुप में वितरित किया जाता है वह भुगतान अनुपात कहलाता है। प्रति अंश लाभांश और लाभांश की दर को स्थिर बनाये रखने के लिये भुगतान अनुपात में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

(२) पुरानी लाभांश दरें -

प्रबन्धक लाभांश घोषित करते समय पिछले वर्षो में घोषित लाभांश दरों का भी ध्यान रखते हैं। यादि लाभांश दरों में एकदम वृद्धि कर दी जाये तो अंशों में सट्टा होने लगेगा। इसीलिये उन्हें लाभांश दर को कमोवेश स्थिर रखने का ही प्रयास करना चाहिये। यदि अधिक लाभांश बांटना ही हो तो अन्तरिम लाभांश या विशिष्ट लाभांश के लाभ से बांटा जाये।

(३) भावी वित्तीय आवश्यकतायें-

लाभांश नीति काफी सीमा तक संस्था की भावी वित्तीय आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। यदि संस्था अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहती है, सम्पत्तियों का नवीनीकरण एवं प्रतिस्थापन करना चाहती है। तथा यह सब कुछ आन्तरिक साधनों से ही करना चाहती है तो उसे विवश होकर अपने लाभांश में कुछ कटौती करनी पड़ेगी तथा लाभों का प्रतिधारण एवं पुनर्विनियोग करना पड़ेगा।

(४) कम्पनी के कोषों में तरलता -

लाभांश नकद ही दिया जाता है लेकिन कम्पनी द्वारा पर्याप्त लाभ अर्जित करने की स्थति में भी यह सम्भव हो सकता है कि कम्पनी की नकद स्थिति ऐसी न हो कि वह नकद लाभांश का भुगतान कर सके। ऐसी स्थिति में नकद लाभाश न देकर स्कन्ध लाभांश बांटा जाना उचित होगा। यदि लाभांश बांटने के लिये बैंक आदि से ऋण लेना पड़े तो इसे वित्तीय दृष्टि से अच्छा नहीं माना जा सकता है।

(५) अंशधारियों की प्रत्याशा -

अंशधारी अंश क्रय करते समय लाभांश इत्यादि के बारे में कुछ आशाये करते हैं। कम्पनी इनकी उपेक्षा करके लाभांश वितरित नहीं कर सकती अन्यथा उसे भविष्य में पूंजी एकत्रित करने में कठिनाई होगी। प्रबन्धकों को इस बारे में यह ध्यान रखना चाहिये कि उस जैसी कम्पनियां अपने अंशधारियों को कितना लाभांश दे रही है।

(६) कम्पनी की स्थिति -

नई कम्पनियां सामान्यतया इस स्थिति में नहीं होती कि वे अधिक लाभांश बांट सकें। आन्तरिक वित्तीय सुदृढ़ता प्राप्त करने के लिये भी उन्हें कुछ वर्षो तक कठोर लाभांश नीति ही अपनानी चाहिये । इसके विपरीत जो पुरानी संस्थायें हैं और जिनके पास पर्याप्त संचित कोष हैं, वे अधिक लाभंश भी दे सकती हैं।

(७) वैधानिक प्रतिबन्ध -

वैधानिक व्यवस्थायें भी लाभांश नीति को महत्वपूर्ण रुप से प्रभावित करती हैं। कम्पनी अधिनियम के अनुसार कम्पनी को लाभांश देने से पूर्व अपनी सभी अचल सम्पत्तियों पर ह्रास की व्यवस्था करना अनिवार्य है। किसी भी स्थिति में लाभांश का भुगतान पूंजी में से नहीं किया जा सकता है। यदि कम्पनी ने अपने कुछ अंशधारियों से कोई विशेष समझौता किया है तो उनका भी पालन किया जाना चाहिये। पूर्वाधिकारी अंशों पर लाभांश पहले देने का आश्वासन इसी प्रकार का एक आनुवंधिक समझौता है।

(८) स्वामित्व का ढांचा -

यदि कम्पनी का स्वामित्व कुछ थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में है तो बे इस बात के लिये सहमत हो सकते हैं कि कम्पनी तथा उन सबके हित में कुछ वर्षो के कठोर लाभांश नीति का पालन किया जाये। लेकिन यदि कम्पनी के अंशधारी बहुत अधिक हैं और वे विभाजित हैं तो ऐसी दशा में उदार लाभांश नीति के लिये जोर दे सकते हैं।

(९) व्यापार चक्रों का प्रभाव :-

मंदीकाल में लाभ की मात्रा में कमी हो जाती है। कम्पनियां लाभांश की दरों में कमी करने के लिये बाध्य हो जाती हैं। कुछ कम्पनियां जिनके पास लाभांश समानीकरण कोष पर्याप्त मात्रा में होते हैं, ऐसे कठिन समय को भी सरलता पार कर लेती हैं तथा लाभांश की उचित दर को बनाकर अपनी साख बनाये रखती हैं तेजी के समय में लाभांश की दरों को बढ़ाने की एक होड़ सी लग जाती है। ऐसी स्थिति में सभी कम्पनियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि लाभांश प्रचलित दरों से कम न दिया जाये।

(१०) लोकमत -

संस्थाओं की लाभांश नीति जनमत एवं सार्वजनिक प्रतिक्रिया से भी प्रभावित होती हैं। सामान्यततया अधिक लाभांश वांटने वाली कम्पनियां स्वयं अपने कर्मचारियों, उपभोक्ताओं तथा जन साधारण की शंका के पात्र बन जाती हैं क्योंकि वे अंशधारियों को मिलने वाली अधिक लाभांश

की राशि को बेईमानी की आय समझते हैं। उनके कर्मचारी अपने वेतन-भत्तों में वृद्धि की मांग करने लगते हैं और उपभोक्ता वस्तुओं के विक्रय मूल्य को घटाने की मांग करते हैं।

(११) आर्थिक नीतियां-

सरकार द्वारा यदि बैंक दर में वृद्धि कर दी जाती है तो कम्पनियों को बैंकों से मिलने वाली ऋण सुविधा मंहगी हो जाती है। ऐसी स्थिति में व्यावसायिक संस्था अपने आंतरिक स्रोतों पर अधिक निर्भर करती है जिससे लाभांश की दर में कमी आ जाती है।

(१२) कर नीतियां -

निगम कर की दर में वृद्धि वितरण के लिये उपलब्ध लाभ की राशि में कमी कर देती है। इसके विपरीत निगम कर की दर कम होने पर वितरण के लिये उपलब्ध राशि में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार कर नीतियां भी लाभांश नीति को प्रभावित करती हैं।

किसी भी कम्पनी द्वारा एक समुचित लाभांश नीति को अपनाना चाहिये जिसमें स्थयित्व, लाभांश दरों में क्रमशः वृद्धि,नकद लाभाशों का वितरण, आरम्भ में कम लाभांश, अर्जित लाभों में से ही लाभांश का भुगतान इत्यादि विशेषतायें होनी चाहिये। अध्ययन अवधि में प्रमुख औद्योगिक इकाईयों ने जो लाभांश नीति अपनाई है वह इस प्रकार है-

१- ग्वालियर रेयान -

इस संस्था द्वारा अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२ ,१९९२-९३ एवं वर्ष १९९३-९४ में क्रमशः ६०.५ करोड़ रुपये ,६७.४४ करोड़ रुपये एवं ६७.४४ करोड रुपये के अंश पूंजी पर क्रमशः ३७.५ प्रतिशत, ४०.०० प्रतिशत तथा ४७.५ प्रतिशत की दर से क्रमशः २२.९१ करोड़ रुपये, २५.११ करोड रुपये तथा ३२.०३ करोड़ रुपये के लाभांश का भुगतान किया गया है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ६.६७ प्रतिशत अधिक, द्वितीय वर्ष की तुलना तृतीय वर्ष में १८.७५ प्रतिशत अधिक है। यदि प्रथम वर्ष के लाभांश से तृतीय वर्ष के लाभांश तुलना की जाये तो यह २६.६७ प्रतिशत अधिक है। इस प्रकार संस्था ने अपाने अंशधारियों में बढ़े हुये एवं स्थिर लाभांश का भुगतान किया है। यद्यपि इसके भुगतान अनुपात में कमी आई है यह क्रमशः २१.६१

प्रतिशत , १८.२३ प्रतिशत एवं १४.०६ प्रतिशत रहा है इससे यह ज्ञात होता है कि संस्था ने प्रतिअंश अर्जित आय की तुलना में कम दर से लाभांश भुगतान किया है ।

$$\text{भुगतान अनुपात} = \frac{\text{लाभांश प्रति अंश}}{\text{अर्जित आय प्रति अंश}} \times 100$$

२- जे०के० टायर -

इस संस्था द्वारा अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश: १४.०४ करोड़ रुपये, १८.५६ करोड़ रुपये तथा २९.३७ करोड़ रुपये समता अंशपूंजी पर क्रमश: ३० प्रतिशत, २० प्रतिशत एवं ३० प्रतिशत की दर से क्रमश: ४.२१ करोड़ रुपये, ४.५४ करोड रुपये तथा ८.२५ करोड़ रुपये के लाभांश भुगतान किये गये हैं । इस प्रकार संस्था ने द्वितीय वर्ष में प्रथम वर्ष की अवपेक्षा ३३.३३ प्रतिशत की दर से लाभांश दिया है यह एक संतुलित लाभांश नीति का परिचायक नहीं है । इससे अंशधारियों के विशवास में कमी होती है और उनकी आय की अनिशिचतता वनी रहती है । यद्यपिसंस्था के भुगतान अनुपात में अधिक वृद्धि हुई है । यह क्रमश: ३२.६ प्रतिशत, ८०.३३ प्रतिशत एवं १३०.५४ प्रतिशत रहा है । इससे यह ज्ञात होता है कि प्रति अंशअर्जित करने की तुलना में अंशधारियों को अधिक भुगतान किया गया है । इसका मुख्य कारण यह रहा कि संस्था की अंश पूंजी में वृद्धि हुई लेकिन उस अनुपात में लाभों में वृद्धि नहीं हो सकी ।

३- गोदरेज -

इस संस्था द्वारा अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२ , १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश: ४.३२ करोड़ रुपयें, २५.९२ करोड़ रुपये एवं ३२.९६ करोड रुपये समता अंश पूंजी पर क्रमश: १० प्रतिशत, १० प्रतिशत, २० प्रतिशत एवं ३० प्रतिश्सात की दर से क्रमश: ०.४३ करोड रुपये, १.०६ करोड़ रुपये एवं ८.६५ करोड़ रुपये के लाभांश का भुगतान किया गया है । यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १०० प्रतिशत अधिक , द्वितीय की तुलना में तृतीय वर्ष में ५० प्रतिशत अधिक है यदि प्रथम वर्ष के लाभांश की तुलना वित्तीय वर्ष के लाभांश में करते हैं तो यह २०० प्रतिशत अधिक है । इस प्रकार इस संस्था द्वारा अपने अंशधारियों के बढ़े हुये एवं स्थिर लाभांश भुगतान किये हैं जो कि एक संतुलित लाभांश नीति का परिचायक है । इससे अंशधारियों को आर्थिक लाभ होने के साथ-साथ उनके विश्वास में भी वृद्धि हुई है । संस्था का लाभांश भुगतान

अनुपात पिछले तीन वर्षों में क्रमशः ४.२४ प्रतिशत,३.५४ प्रतिशत एवं ३४.२ प्रतिशत रहा है । इस प्रकार संस्था ने प्रतिअंश अर्जित आय की तुलना में काफी कम भाग ही वितरित किया है । इससे एक ओर तो अंशधारियों को बढ़े हुये लाभांश प्राप्त हुये हैं तथा दूसरी ओर संस्था को अन्तरिक वित्तीय साधन ।

४- पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) -

इस संस्था द्वारा अध्ययन अविध अर्थात वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः २७.८५ करोड रुपये, २७.८६ करोड रुये तथा २७.८९ करोड़ रुपये की समता अंश पूंजी पर क्रंमशः ३५ प्रतिशत ,३५ प्रतिशत तथा ३५ प्रतिशत की दर से क्रमशः ९.७६ करोड रुपये, ९.७६ करोड़ रुपये तथा ९.७६ करोड रुपये के लाभांश का भुगतान किया गया है । इस प्रकार लाभांश की दर में कोई वृद्धि नहीं हुई है जिससे अंश धारियों को वही पुरानी दर से दिया जाने वाला लाभांश मिलता रहा है जबकि अंशधारियों की अपेक्षाये बढ़े हुये लाभांश की होती हैं, इससे अंशधारियों के विशवास को बनाये नहीं रखा जा सका है और अंशों के बाजार मूल्य में काफी कमी आई है । संस्था का लाभांश भुगतान अनुपात क्रमशः २९.५६ प्रतिशत, ४६.९१ प्रतिशत एवं ६२.४५ प्रतिशत रहा है । यदि हम लाभांश भुगतान की दृष्टि से देखते हैं तो इसमें लगातार वृद्धि होती रही है । इसका अर्थ यह है कि संस्था की अर्जित आय प्रतिअंश में कमी रही है ।

५- कैडबरीज-

इस संस्था द्वारा अध्ययन अवधि अर्थात वर्ष १९९१-९२ , १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः ८.४ करोड़ रुपये ,१२.४ करोड़ रुपये एवं १२.४ करोड़ रुपये की अंश पूंजी पर क्रमशः ३० प्रतिशत, २० प्रतिशत एवं ३५ प्रतिशत की दर से क्रमशः २.५२ करोड़ रुपये, १.७३ करोड़ रुपये तथा ४.३४ करोड़ रुपये के लाभांश भुगतान किये गये हैं । इसमें प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ३३.३३ प्रतिशत की कमी हुई है जबकि द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ७५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है यदि प्रथम वर्ष के लाभांश की तुलना तृतीय वर्ष के लाभांश से करते हैं तो इसमें १६.६७ प्रतिशत की वृद्धि हुई है । संस्था का लाभांश भुगतान अनुपात क्रमशः ६८.६३ प्रतिशत एवं ५०.०४ प्रतिशत रहा है । इस प्रकार विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अध्ययन अवधि के दूसरे वर्ष में संस्था की प्रतिअंश अर्जित आय में कमी होने से अंशधारियों को कम दर से भुगतान किया है यद्यपि

यह भुगतान प्रति अंश अर्जित आय की तुलना में अधिक है। इस प्रकार संस्था ने लाभांश दर को स्थिर बनाये रखने का प्रयास किया है लेकिन जब लाभ ही कम अर्जित हुये हों तो ऐसी स्थिति में कोई विकल्प ही नहीं रह जाता। संस्था में प्रथम एवं तृतीय वर्ष में लाभांश भुगतान अनुपात भी संतुलित ही रहा है।

६- ग्वालियर दुग्ध संघ -

यह संस्था अपनी स्थापना के समय से ही नुकसान में कार्य कर रही है इसलिये इसने अपनी अंशपूंजी पर कोई लाभांश वितरित नहीं किया है। लाभांश सदैव लाभों में से ही दिये जाते हैं।

विभिन्न औद्योगिक इकाईयों द्वारा वितरित की गई लाभांश राशि एवं अंशपूंजी पर लाभांश दर को निम्नांकित तालिका द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है-

तालिका

प्रमुख औद्योगिक इकाईयों द्वारा वितरित की गई लाभांश राशि एवं लाभांश दर[८.४]

(करोड़ रुपयों में)

औद्योगिक-इकाई	१९९१-९२		१९९२-९३		१९९३-९४	
	लाभांश राशि	लाभांश दर	लाभांश राशि	लाभांश दर	लाभांश राशि	लाभांश दर
ग्वालियर रेयान	६०.५	३७.५%	६७.४४	४०%	६७.४४	४७.५%
जे० के० टायर	१४०४	३०%	१८.५६	२०%	२९.३७	३०%
गोदरेज	४.३२	१०%	२५.९२	२०%	३२.९६	३०%
पंचशील (अपोलो टायर लि.)	२७८५	३५%	२७८६	३५%	२७८९	३५%
कैडबरीज	८.४	३०%	१२.४	२०%	१२.४	३५%
ग्वालियर दुग्ध संघ	-	-	-	-	-	-

(8.4) विनियोग अनुसंधान एवं सूचना सेवा लि0

नवम अध्याय

निष्कर्ष, एवं सुझाव -

निष्कर्ष -

विकसित देशों की श्रेणी में वे ही देश सम्मिलित किये जाते हैं जिन्होंने न केवल तीव्र बल्कि सुव्यवस्थित औद्योगिक विकास किया है, जो देश ऐसा नहीं कर सके हैं उन्हें अल्पविकसित देश ही माना जाता है। यह हमारे देश का दुर्भाग्य ही है कि देश में औद्योगिक विकास की सभी अनुकूल परिस्थितियां होने के बाबजूद भी आज भी भारत देश विकासशील देशों की श्रेणी में गिना जाता है, विकसित राष्ट्र होने का गौरव प्राप्त नहीं कर सका है। भारत के मध्य में स्थित होने के कारण मध्य प्रदेश अपने नाम को चरितार्थ करता है। यह राज्य देश के क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है। खनिज सम्पदा की दृष्टि से मध्य प्रदेश विशेष रुप से धनी राज्य है। इन राज्य में लगभग २५ प्रकार के खनिज मिलते हैं। इनमें कोयला, लोहा, मैंगनीज, तांबा , वाक्साइट, हीरा, टिन, फायर-क्ले, चाइना-क्ले इत्यादि के भाण्डार विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रकृति की विशेष कृपा के बावजूद भी म०प्र० में औद्योगिक विकास की गति बहुत ही धीमी रही है। प्रदेश में उद्योगों के विकास के लिये केन्द्र सरकार , राज्य सरकार तथा पूंजीपतियों के द्वारा प्रयास किये गये हैं। औद्योगिक इकाईयों की स्थापना हेतु सरकार की ओर से तरह तरह की छूट भी दी गई है। औद्योगिक विकास में परिवहन के साधनों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि इन्ही के द्वारा औद्योगिक इकाईयों को कच्चेमाल की आपूर्ति की जाती है और इन औद्योगिक इकाईयों के द्वारा निर्मित माल भी , इन्हीं यातायात के साधनों की मदद् से , बाजारों तक पहुंचता है। जब तक इन परिवहन के साधनों का विकास सम्भव नहीं होता वहां की औद्योगिक प्रगति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। दुर्भाग्यवश मध्य प्रदेश में परिवहन के साधनों का अपेक्षाकृत कम विकास ही हो पाया है।

स्वतन्त्रता के पूर्व मध्य प्रदेश में,भारत के अन्य राज्यों की तुलना में, उद्योगों के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। मध्य प्रदेश छोटी-छोटी रियासतों में बंटा हुआ था और इनके राजाओं द्वारा उद्योगों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग बहुत ही कम होता रहा तथा इनसे सम्बन्धित उद्योग धंधों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इस प्रकार प्राकृतिक संसाधन वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक काल में भी संचित भण्डार के रुप में ही पड़े रहे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् १९५६ में जब मध्य प्रदेश का गठन हुआ, तब एक बड़े राज्य के रुप में यहां संसाधनों का मूल्यांकन एवं उपयोग प्रारम्भ हुआ। मध्य प्रदेश के इन्दौर, ग्वालियर , उज्जैन, रतलाम,

जबलपुर इत्यादि नगर छोटे-छोटे औद्योगिक केन्द्र बन गये और यहां उपभोक्ता सामग्री से सम्बन्धित उद्योग स्थापित हुये। म०प्र० में देश का लगभग २५% कोयला, ३० और प्रतिशत लोहा ५० प्रतिशत मैगनीज, ४४ प्रतिशत बाक्साइट खनिज संसाधन उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त जल संसाधन ,वन सम्पदा , कृषि सम्पदा में म० प्र० काफी सम्पन्न राज्य है। इन संसाधनों की प्रचुरता की पृष्ठ-भूमि में औद्योगिक नियोजित विकास कल्पना की जा सकती है।

भारत की प्रथम पंचबर्षीय योजना में मध्यप्रदेश के औद्योगिक विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान भिलाई कारखाने का निर्माण हुआ तथा भोपाल हैवी इलैक्टिकल्स से उत्पादन शुरु हो गया जिससे रोजगार के नये अवसर उत्पन्न हुये, इसके साथ ही ग्रामीण औद्योगिक विकास हेतु ग्रामीण औद्योगिक संस्थान स्थापित किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में म०प्र० के औद्योगिक विकास के लिये ९२९.५७ लाख रुपये की व्यवस्था की गई, इन्दौर, ग्वालियर , भोपाल, रायपुर, भिलाई, जबलपुर में प्रारम्भ किये गये इण्डस्ट्रियल एस्टेट्स का निर्माण कार्य आगे बढ़ाया गया तथा २६ जिलों में ग्रामीण इण्डस्ट्रियल एस्टेट्स तथा ५० वर्कशाप बनाने का काम भी शुरु किया गया। इसके अलावा राज्य शासन ने ४ क्षेत्रीय औद्योगिक केन्द्र स्थापित किये जिससे कम लागत पर औद्योगीकरण की सुविधायें उपलब्ध कराई जा सकें। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ३१ वृहद तथा मध्यम वर्ग के उद्योगों की स्थापना की गई जिन पर ८६.३१ करोड़ रुपये का विनियोग किया गया जिनसे १०७४० व्यक्तियों को रोजगार मिला , इसके साथ ही इस योजना में २० इकाईयों के आधुनिकीकरण तथा विस्तार का काम हाथ में लिया गया, मध्य प्रदेश औद्योगिक विकास निगम ने उद्योगों के स्थापन की वित्तीय सहायता का काम बड़े पैमाने पर किया, इसके अलावा इस योजना में मध्य प्रदेश टैक्सटाइल कॉर्पोरेशन ने प्रदेश के कपड़े के सात कारखानें के आधुनिकीकरण का काम हाथ में लिया। पांचवी पंचवर्षीय योजना में उन क्षेत्रों के औद्योगिक विकास पर विशेष रुप से ध्यान दिया गया जहां उद्योगों से सम्बन्धित संसाधन उपलब्ध थे। इस योजना में वृहद तथा मध्यम उद्योगों की संख्या , उत्पादन क्षमता तथा मजदूरों की संख्या में विशेष रुप से वृद्धि हुई। इसके साथ ही सन् १९७७ में औद्योगीकरण की नीति में मूलभूत परिवर्तन किया गया तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया जिससे छोटे-छोटे नगरों तथा गांवों में रोजगार के अवसर उत्पन्न हुये । छटवीं पंचवर्षीय योजना में प्रदेश का सन्तुलित एवं सर्वागींण विकास करने के उद्देश्य से औद्योगिक असंतुलन को दूर करने का लक्ष्य निर्धारित

किया गया। अधिक रोजगार प्रदान करने वाले उद्योगों की स्थापना की गई, औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादकता में वृद्धि का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया जिससे संसाधनों का विदोहन अच्छे ढ़ग से किया जा सके। इसके साथ ही उद्योगों के आधुनिकीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में पहले से स्थापित किये गये उद्योगों के आधुनिकीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। इस अवधि में कुछ नये परम्परागत उद्योग भी स्थापित किये गये जिनमें लगभग २.७७ लाख लोग रोजगार प्राप्त कर सकें। आठवीं पंचवर्षीय योजना में उन क्षेत्रों के औद्योगिक विकास पर विशेष बल दिया गया है जहां उद्योगों के लिये समुचित संसाधन उपलब्ध हैं जिससे उद्योगों की स्थापना तीव्रगति से की जा सके। इसके साथ ही पूंजीगत सामान के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया है। बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से लघु उद्योगों की स्थापना पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। प्रदेश के औद्योगिक विकास में राज्य सरकार ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उन औद्योगिक इकाईयों को अपने हाथ में लिया है जो घाटे में चलने के कारण बन्द होने की स्थिति में थीं इसके साथ ही शासन ने ऐसे क्षेत्रों में उद्योग स्थापित किये है जहाँ निजी उद्यमी अपना उद्योग स्थापित नहीं करना चाहते। वर्तमान में आधुनिकतम तकनीक के विभिन्न प्रकार के लगभग २० कारखाने स्थापित किये जा रहे हैं जो राज्य सरकार तथा राज्य के बाहर के उद्यमियों की सहायता से तैयार किये जा रहे हैं। जिनसे बड़ी मात्रा में रोजगार के अवसर मिलने के साथ-साथ राज्य का चहुंमुखी विकास भी सम्भव हो सकेगा। मध्य प्रदेश में वर्तमान में कुछ औद्योगिक केन्द्रों को भी विकसित किया जा रहा है जैसे- देवास,उज्जैन ,नागदा,मेघनगर,धार,मंडीद्वीप ,विदिशा ,रायपुर,भिलाई, दुर्ग, राजनांद गांव इत्यादि प्रमुख हैं। इन औद्योगिक केन्द्रों के पूर्ण विकसित होने पर प्रदेश में एक औद्योगिक क्रांति की आशा की जा सकती है जिससे बड़ी मात्रा में रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकेंगे तथा लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठ सकेगा ।

शोधार्थी द्वारा विषय की व्यापकता एवं गहन विश्लेषण की दृष्टि से ग्वालियर क्षेत्र की सभी इकाईयों को न लेकर केवल ६ इकाईयों को ही अध्ययन के लिये चुना है जिनमें- १- ग्वालियर रेयान, २- जे०के० टायर, ३- गोदरेज, ४- पंचशील अपोलो टायर लिमिटेड,५- कैंडवरीज एवं ६- ग्वालियर दुग्ध संघ, सम्मलित हैं। जब कोई शोध कार्य प्रारम्भ किया जाता है तो उसके कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं और उन उद्देश्यों को तब ही प्राप्त किया जा सकता है जबकि शोधकार्य

योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित ढंग से शुद्ध किया जाये। इसके लिये नियोजित रुपरेखा तैयार करना आवश्यक होता है इस नियोजित एवं योजनाबद्ध तरीके से तैयार की गई रुपरेखा को ही शोध प्रक्रिया कहते हैं। शोध प्रक्रिया के अर्न्तगत समंकों के संकलन, सम्पादन,वर्गीकरण तथा सारणीयन, विश्लेषण एवं निर्वचन आदि को सम्मलित किया जाता है। प्रत्येक शोध प्रबन्ध का सम्पूर्ण कार्य उसकी शोध प्रक्रिया पर निर्भर करता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधार्थी ने जो पद्धति अपनाई है वह सारांश रुप में निम्न प्रकार है-

संग्रहण का कार्य शोध प्रक्रिया का प्रथम चरण है इस उद्देश्य से शोधार्थी ग्वालियर क्षेत्र की प्रमुख इकाईयों के कार्यालयों में उपस्थित हुआ और वहां सम्बन्धित अधिकारियों को अपने शोध प्रबन्ध के उद्देश्य से अवगत कराया जिससे वे सम्बन्धित जानकारी देने के लिये तैयार हो सके इसके साथ ही विभिन्न औद्योगिक संस्थाओं की पत्रिकाओं, वार्षिक प्रतिवेदनों से शोधार्थी ने सम्बन्धित समंक एकत्रित किये हैं। इसके बाद शोधार्थी ने अध्ययन में प्रयुक्त समंकों एवं सूचनाओं का गहन परीक्षण किया है तथा संग्रहीत समंकों को विश्लेषण योग्य बनाने के लिये उन्हें व्यवस्थित क्रम में रखा है जिससे विश्लेषण द्वारा शुद्ध परिणाम प्राप्त किये जा सकें। इसके पश्चात् संकलित समंकों को उनकी प्रकृति के आधार पर विभिन्न तालिकाओं में शोधार्थी ने यथा स्थान प्रस्तुत किया है। शोधार्थी द्वारा महत्वपूर्ण तथ्यों को सम्बन्धित अध्यायों में, सारणियों के रुप में प्रस्तुत कर इस अध्ययन को संक्षिप्त एवं पूर्ण बनाने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। इसके पश्चात् शोधार्थी ने प्रस्तुत की गई सारणियों का विश्लेषण किया है, इस विश्लेषण में प्रतिशतों एवं अनुपातों की गणना की गई है तथा प्रत्येक अध्याय के अन्त में अध्याय से सम्बन्धित समस्त सूचनाओं, समंकों एवं सारणियों के निष्कर्ष भी निकाले गये हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में एक निश्चित सीमा तक ही प्राथमिक समंकों का प्रयोग किया गया है जिससे विषय से सम्बन्धित शुद्ध एवं विश्वसनीय समंक प्राप्त हो सकें। इस शोध प्रबन्ध के लिये अधिकांश द्वितीयक समंकों का ही प्रयोग किया गया है क्योंकि अध्ययन से सम्बन्धित औद्योगिक इकाईयों द्वारा ही समंक प्रकाशित किये जाते हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधार्थी द्वारा प्राथमिक समंकों का संकलन प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अवलोकन विधि द्वारा किया गया है तथा द्वितीयक समंकों का संकलन शासकीय प्रकाशन एवं व्यापारिक संस्थाओं के प्रकाशन द्वारा किया गया है। शोधकार्य में प्रस्तुत किये गये तथ्यों को अधिक आकर्षक एवं बोधगम्य बनाने के लिये आवश्यकतानुसार सारणियों , चार्टो,चित्रों, विन्दुरेखा चित्रों में प्रदर्शित किया गया है।

समय चक्र के घुमाव जैसे- जैसे व्यावसायिक जीवन-पथ पर अग्रसर हुए हैं, औद्योगिक क्रियाओं में विकास , उत्पादन स्तर में वृद्धि ,तीव्र प्रतियोगिता, तकनीकी प्रविधियों की जटिलता और उद्योगों के सामाजिक दायित्व के प्रति जनता की जागरुकता में भी वृद्धि हुई है । व्यावसायिक जगत में हुये इन परिवर्तनों के फलस्वरुप नवीन आवश्यकतायें महसूस की गई और इनकी पूर्ति के लिये नई विधियों का विकास हुआ । इसी विकास क्रम में प्रबन्धकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रबन्ध के लिये लेखांकन का जन्म हुआ जिसे वर्तमान में लेखाशारुत्र की नवीनतम शाखा के रुप में प्रबन्ध लेखाशास्त्र के नाम से जाना जाने लगा है । व्यावसायिक गतिविधियों के क्षेत्र में आश्चर्यजनक वृद्धि होने के कारण दूसरे विश्वयुद्ध के बाद वित्तीय लेखांकन के लिये यह एक सवसे बड़ी चुनौती रही है । आधुनिक युग की प्रबन्ध व्यवस्थाओं में सूचनाओं का निरन्तर प्रवाह अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इसके आधार पर ही प्रबन्धक दिन-प्रतिदिन के आवश्यक निर्णय ले सकते हैं तथा उत्पादन के साधनों का सम्पूर्ण उपयोग करने तथा उन पर नियंत्रण करने सम्बन्धी योजनाओं का निर्माण करने में सफल हो सकते हैं । इसी प्रकार की आवश्यकता ने ही वित्तीय लेखांकन में क्रांतिकारी एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पर बल दिया है जिसके फलस्वरुप ही प्रबन्धकीय लेखांकन का जन्म हुआ है । **आर०एन० एन्थोनी के अनुसार**,"प्रबन्ध लेखांकन का सम्बन्ध लेखांकन सूचना से है जो प्रबन्ध के लिये उपयोगी है ।"[१] प्रबन्ध लेखांकन में वे सभी सेवाये सम्मिलित रहती हैं । जो किसी व्यावसायिक संस्था का लेखांकन विभाग प्रबन्ध को अर्पित करता है,जिससे व्यवसाय के विभिन्न विभागों का आधुनिकतम ढंग से अधिकतम कुशलता के साथ संचालन किया जा सके । प्रबन्ध लेखांकन जिन उद्देश्यों की पूर्ति करता है उनमें नियोजन तथा नीति निर्धारण में सहायता करना, नियंत्रण प्रक्रिया में सहायता करना,संगठन कार्य में सहायता करना, समन्वय में सहायता करना, अभिप्रेरण में सहायता करना, मूल्यांकन करने में सहायता करना, निर्णय में सहायता करना, जबावदेही निश्चित करने में सहायता करना, संप्रेषण में सहायता करना कानूनी प्रक्रिया को पूर्ण करने में सहायता करना, इत्यादि उद्देश्य महत्वपूर्ण हैं । सूचना प्राप्ति के लिये प्रबन्ध द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपकरण एवं तकनीक के अन्तर्गत वित्तीय आयोजन, वित्तीय लेखांकन, ऐतिहासिक लागत लेखांकन, पुनर्मूल्यांकन लेखांकन, उत्तरदायित्व लेखांकन, वित्तीय विश्लेषण, प्रमाप लागत लेखांकन, बजटरी नियंत्रण , सीमांत लागत लेखांकन, निर्णय लेखांकन, नियंत्रण लेखांकन, अंकेक्षण, वित्तीय प्रतिवेदन या सवंहन, क्रियात्मक अनुसंधान तथा सांख्यिकीय विधियां, निधि प्रवाह विश्लेषण , पूंजी विनियोगों पर प्रत्याय, सांख्यिकीय चार्ट तथा तकनीक इत्यादि उपकरण एवं तकनीक प्रयोग में लाये जाते हैं । प्रबन्धकीय

---

(1) प्रबन्ध लेखांकन - एम0 आर0 अग्रवाल पृ0 क्र0 -5

लेखांकन के कार्यों में संमकों का अभिलेखन, समंकों की वैधता निश्चित करना, समंकों का विश्लेषण एवं व्याख्या ,संख्यात्मक रुप में सूचनाओं का संवहन, नियोजन में सहायता करना, संगठन में सहायता करना , नियंत्रण में सहायता करना, सम्प्रेषण में सहायता करना, निर्णयन में सहायता करना, समन्वय में सहायता करना, अभिप्रेरण में सहायता करना, कर प्रशासन में सहायता करना इत्यादि कार्य सम्मलित हैं। प्रबन्ध लेखांकन की सीमाओं के अन्तर्गत- वित्तीय लेखों पर आधारित ,अधिकांश भूतकालिक सूचनायें, प्रशासन का विकल्प नहीं, निरंतरता की आवश्यकता , सम्बन्धित विषयों के ज्ञान का अभाव, भारी संरचना की तुलना में कम उपलब्धियां, अन्तर्ज्ञानीय निर्णयन की ओर झुकाव , विषय परकता का अभाव, विकासशील अवस्था, खर्चीची पद्धति , विस्तृत क्षेत्र, मनोवैज्ञानिक विरोध इत्यादि सीमायें सम्मलित हैं।

पूंजी को आधुनिक उद्योग का जीवन रक्त कहा जाता है क्योकि पूंजी ऐसा शक्तिशाली साधन है जो उद्योग को गतिशील रखता है, उत्पादों का विकास करता है, मनुष्यों एवं मशीनों की क्रियाशील रखता है। किसी भी व्यवसाय के शुद्ध करने के विचार से लेकर उसके प्रवर्तन ,विस्तार एवं उसके समापन एक सभी परिस्थितियों में पूंजी की आवश्यकता होती है। वित्त प्रबन्ध के लिये वित्तीय आयोजन आवश्यक होता है,किसी भी संस्था की भावी सफलता एवं असफलता वित्तीय आयोजन की सुदृढ़ता पर ही निर्भर करती है। किसी भी संस्था के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सोच विचार कर सही प्रकार से वित्तीय आयोजन आवश्यक होता है। वित्तीय योजना की आवश्यकता जिन कारणों से होती है उनमें पूंजी की सुरक्षा, संचालन क्रियाओं में मितव्ययिता तथा समन्वय, मूल्यस्तर में परिवर्तन, संस्था की सफलता,सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार इत्यादि कारण महत्वपूर्ण हैं। आवश्यक वित्त की मात्रा निर्धारित करने के पश्चात् उसके स्त्रोतों पर विचार करना आवश्यक होता है। यह विचार ही पूंजी संरचना को निश्चित करता है, इसके अन्तर्गत यह निशिचत किया जाता है कि कुल पूंजी का कितना भाग ऋण पत्रों के रुप में हो, कितना भाग समता अंशों के रुप में हो तथा कितना भाग पूर्वाधिकार अंशों के रुप में हो। किसी भी व्यावसायिक संस्था को अधिकतम संतुलित एवं अनुकूलतम पूंजी संरचना की आवश्यकता जिन कारणों से होती है वे हैं- पूंजी लागत को कम करने के लिये, जोखिम कों कम करने के लिये, समता अंश पूंजी पर प्रत्याय में वृद्धि के लिये, अधिकतम नियंत्रण के लिये, लचीलापन लाने के लिये ।

शोधार्थी द्वारा अध्ययन के लिये जिन औद्योगिक इकाईयों का चयन किया गया है उनमें वित्तीय योजना एवं पूंजी करण की जो स्थिति रही है वह इस प्रकार है- ग्वालियर रेयान में सन् १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः १०२९.१ करोड़ रुपये, १२०६.०१ करोड़ रुपये तथा १४६५.२४ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है, इस प्रकार सन् १९९१-९२ की तुलना में सन् १९९३-९४ में पूंजी में ४२.३८ प्रतिशत की वृद्धि रही है। जे०के० के टायर में सन् १९९१-९२,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः २१६.०२ करोड़ रुपये, ४११.२७ करोड़ रुपये ४८१.१२ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है, इस प्रकार सन् १९९१-९२ की तुलना में सन् १९९३-९४ में १२२.७२ प्रतिशत की वृद्धि रही है। गोदरेज में वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः १४८.४७ करोड़ रुपये, १८२.२२ करोड़ रुपये तथा १५२.९६ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है, इस प्रकार सन् १९९१-९२ की तुलना में सन् १९९३-९४ में केवल ३.० प्रतिशत अधिक है। पंचशील अपोलो टायर लिमिटेड में सन् १९९१-९२,१९९२-९३ तथा सन् १९९३-९४ में क्रमशः १९१.३६ करोड़ रुपये, २०५.७७ करोड़ रुपये तथा २०५.७८ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है, इस प्रकार सन् १९९१-९२ की तुलना में सन् १९९३-९४ में ७.५४ प्रतिशत अधिक है। कैडवरीज में सन् १९९१-९२,१९९२-९३ तथा सन् १९९३-९४ में क्रमशः ३१.२६ करोड़ रुपये, ३३.१८ करोड़ रुपये एवं ३५.९९ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है यह सन् १९९१-९२ की तुलना में सन् १९९३-९४ में यह १५.१३ प्रतिशत अधिक है। ग्वालियर दुग्ध संघ में सन् १९९१-९२ , १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः १४.७५ करोड़ रुपये, १७.२६ करोड़ रुपयें एवं १८.३९ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित रही है, इस प्रकार यह सन् १९९१-९२ की तुलना में सन् १९९३-९४ में २४.६८ प्रतिशत अधिक है। इन्हीं औद्योगिक इकाईयों की पूंजी संरचना एवं पूंजी के स्रोतों का सारांश इस प्रकार है- ग्वालियर रेयान में उपरोक्त अध्ययन अवधि में क्रमशः ६०.५ करोड़ रुपये, ६७.४४ करोड़ रुपये एवं ६७.४४ करोड़ रुपये की समता अंश पूंजी, ९०५.३५ करोड़ रुपये, १०३१.७९ करोड़ रुपये एवं १०८४.८४ करोड़ रुपये की दीर्घकालीन ऋण पूंजी, ८३.३१ करोड़ रुपये, १०६.७८ करोड़ रुपये तथा ३१२.९८ करोड़ रुपये अल्पकालीन ऋण पूंजी विनियोजित रही है। जे०के० टायर में इसी अवधि में क्रमशः १४.०४ करोड़ रुपये, १८.५६ करोड़ रुपये, एवं १९.८७ करोड़ रुपये की समता अंश पूंजी, १७६.८७ करोड़ रुपये, ३६४.६० करोड़ रुपये तथा ३६४.६० करोड़ रुपये की दीर्घकालीन ऋणपूंजी, २५.११ करोड़ रुपये, २८.११ करोड़ रुपये एवं ९६.६ करोड़ रुपये की अल्पकालीन ऋणपूंजी विनियोजित रही है। गोदरेज

इकाई में इसी अवधि में क्रमश: ४.३२ करोड़ रुपये, २५.९२ करोड़ रुपये, ३२.९६ करोड़ रुपये की समता अंश पूंजी , ४७.५८ करोड़ रुपये, ३९.०६ करोड़ रुपये एवं १६.९६ करोड़ रुपये की दीर्घकालीन ऋणपूंजी, ९६.५७ करोड़ रुपये, ११७.२४ करोड़, १०३.०७ करोड़ रुपये की अल्पकालीन ऋणपूंजी विनियोजित रही है। पंचशील अपोलो टायर लिमिटेड में इसी अवधि में क्रमश: २७.८५ करोड़ रुपये, २७.८६ करोड़ रुपये एवं २७.८७ करोड़ रुपये की समता अंश पूंजी, १२३.१६ करोड़ रुपये, ११६.९३ करोड़ रुपये एवं ११८.४४ करोड़ रुपये की दीर्घकालीन ऋणपूंजी,४०.३५ करोड़ रुपये, ६०.९८ करोड़ रुपये एवं ५९.५६ करोड़ रुपये की अल्पकालीन ऋणपूंजी विनियोजित रही है। कैडवरीज में इसी अवधि में क्रमश: ८.४ करोड़ रुपये,१२.४ करोड रुपये एवं १२.४ करोड रुपये की समता अंश पूंजी, १४.५९ करोड़ रुपये, ८.८ करोड़ रुपये एवं ३.२१ करोड़ रुपये की दीर्घकालीन ऋणपूंजी, ८.२७ करोड़ रुपये, ११.८९ करोड़ रुपये एवं २०.३८ करोड़ रुपये की अल्पकालीन ऋण पूंजी विनियोजित रही है। ग्वालियर दुग्ध संघ में इसी अवधि में क्रमश: ४८.९६ लाख रुपये, ५४.३८ लाख रुपये एवं ४६.८५ करोड़ रुपये की समता अंशपूंजी, ११.५९ करोड़ रुपये,१२.७५ करोड़ रुपये एवं १६.१७ करोड़ रुपये की दीर्घकालीन ऋणपूंजी, २.६७ करोड़ रुपये एवं ३.९६ करोड़ रुपये की अल्पकालीन ऋणपूंजी विनियोजित रही है।

आधुनिक युग में व्यवसाय का क्षेत्र विस्तृत होकर संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल तक जा पहुंचा है। प्रत्येक विनियोक्ता अपना धन विनियोजित करने से पूर्व उस सम्बन्धित व्यवसाय की स्थिति को जानना चाहता है जिससे उसे कम से कम जोखिम हो, ऐसी स्थिति में लेखा पुस्तकों का महत्व बढ़ जाता है। वर्तमान में सभी प्रमण्डलों द्वारा लेखों को प्रकाशित किया जाता है जिससे अंशधारी एवं विनियोक्ता उससे अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सके। इन प्रकाशित लेखों से कम्पनी की वित्तीय स्थिति एवं उपार्जन शक्ति का ज्ञान होता है। किसी कम्पनी द्वारा किसी भी निश्चित अवधि में वित्तीय विवरण तैयार किये जाते हैं इनके अन्तर्गत चिट्ठा,लाभ-हानि खाता, संचालकों का प्रतिवेदन, अंकेक्षक प्रतिवेदन तथा अध्यक्षीय भाषण सम्मलित किये जाते हैं। इन वित्तीय विवरणों के सहायक के रुप में अनेक अनुसूचियां भी तैयार की जाती हैं, जिनसे वित्तीय विवरणों का विश्लेषण करने में मदद मिलती है। चिट्ठा किसी निश्चित तिथि को एक व्यवसाय की आर्थिक स्थिति का विवरण प्रस्तुत करता है। लाभहानि खाता एक वित्तीय विवरण है जो किसी संस्था की एक लेखांकन अवधि के आगम एवं व्ययों को प्रस्तुत करता है तथा आय का व्यय पर आधिक्य या व्यय का आय पर

आधिक्य दर्शाता है और संस्था की लाभदायकता मापता है। संचालकों का प्रतिवेदन अंतिम लेखों का एक आवश्यक अंग होता है जिसके अन्तर्गत व्यापार की स्थिति, कोषों की स्थिति, लाभांश के बारे में जानकारी एवं अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बारे में संचालकों की ओर से जानकारी दी जाती है। अंकेक्षकीय प्रतिवेदन में कम्पनी के कार्यों के सम्बन्ध में अंकेक्षक अपना मत प्रस्तुत करता है। अध्यक्षीय भाषण में कम्पनी के अध्यक्ष द्वारा यह दर्शाया जाता है कि कम्पनी ने व्यापार किस प्रकार संचालित किया है, कितनी एवं किस-किस क्षेत्र में प्रगति हुई, कम्पनी के सामने क्या-क्या कठिनाईयां उपस्थित हुई हैं, भविष्य में क्या-क्या कठिनाईयां हो सकती हैं, इन कठिनाईयों को किस प्रकार दूर करने का प्रयास किया जायेगा, इत्यादि। किसी भी व्यावसायिक संस्था के वित्तीय विवरणों में विभिन्न व्यक्ति एवं संस्था रुचि रखते हैं क्योंकि वित्तीय विवरण उन सभी के लिये भिन्न-भिन्न रुप में कार्य करते हैं। साधारणतया इन वित्तीय विवरणों का महत्व प्रबन्धकों , बैकों, व्यापारिक ऋणदाताओं विनियोक्ताओं एवं अन्य प्रतिस्पद्धी संस्थाओं के लिये सर्वाधिक होता है। किसी व्यवसाय की आर्थिक स्थिति तथा लाभार्जन क्षमता का ज्ञात प्राप्त करने के लिये उसके वित्तीय विवरणें की मदों में क्षैतिज अथवा लम्बवत् विश्लेषण का अध्ययन करने के लिये जिन उपायों का प्रयोग किया जाता है उन्हें वित्तीय विश्लेषण की तकनीक कहा जाता है, जिन प्रमुख तकनीकों का प्रयोग बहुतायत से होता है उनमें अनुपात विश्लेषण समविच्छेद विन्दु तकनीक एवं रोकड़ तथा कोष प्रवाह विश्लेषण प्रमुख हैं।

शोधार्थी द्वारा जिन औद्योगिक इकाईयों को अध्ययन के लिये चुना गया है उनमें से ग्वालियर रेयान,जे०के० टायर , गोदरेज, पंचशील (अपोलो टायर लि०) एवं कैडबरीज इकाईयों में लाभदायकता अनुपातों के अन्तर्गत संचालन लाभ ह्रास ,ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व/ संचालन आय (प्रतिशत में), कर के पूर्व लाभ अनुपात, कर चुकाने के बाद लाभ/संचालन आय अनुपात, संचालन लाभ ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व/उत्पादित पूंजी विनयोजित अनुपात, ब्याज एवं कर चुकाने के पूर्व लाभ/विनियोजित पूंजी अनुपात, कर चुकाने के बाद लाभ/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात की गणना की गई है। इसके साथ ही दंतिकरण अनुपात के अन्तर्गत कुल ऋण/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात, दीर्घकालीन ऋण/शुद्ध सम्पत्ति अनुपात की गणना की गई है। अध्ययन के लिये चयन की गई ग्वालियर दुग्ध संघ इकाई ने अपने प्रारम्भ से ही कोई भी लाभ अर्जित नहीं किया है इसिलये इस प्रकार के अनुपातों का प्रयोग नहीं किया गया है।

विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का हिसाब - किताब उनकी प्रकृति के अनुरुप अलग-अलग रखा जाता है । इनकी लेखांकन पद्धति अलग-अलग होने पर भी उन सभी व्यवसायों में लेखांकन करने का सिद्धान्त एक ही लागू होता है । ठीक इसी प्रकार से लागत लेखांकन में हम कोई एक ऐसी पद्धति का प्रयोग नहीं कर सकते जो समान रुप से सभी प्रकार के व्यवसायों के लिये उपयुक्त हो, इसीलिये विभिन्न व्यवसायों की प्रकृति के अनुरुप लागत लेखांकन की विभिन्न पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है । आधुनिक प्रतिस्पर्द्धी जगत में वही संस्था अधिकतम लाभ आर्जित करने में सफल हो सकती है जो कम से कम लागत पर अच्छी से अच्छी वस्तु का निर्माण करने में सक्षम हो । इसके लिये लागत का समुचित नियोजन एवं प्रभावी नियंत्रण रखना आवश्यक होता है, बजटिंग तकनीक के प्रयोग से यह सम्भव हो सकता है । बजट को प्रबन्ध की इच्छाओं की अभिव्यक्ति कहा जाता है, यह संस्था की नीतियों एवं योजनाओं का पद प्रदर्शक होता है, इसका उद्देश्य संस्था की क्रियाओं को समय समय पर नियोजित करने में मदद देना होता है, यह संदेश वाहन का प्रभावी साधन होता है तथा इसी के माध्यम से प्रबन्ध एवं प्रशासन अपनी नीतियों को संगठन तक पहुंचाने में सफल होता है ।बजट प्रबन्ध की नियंत्रण प्रक्रिया को प्रभावी बनाता है तथा व्यवसाय से सम्बन्धित सामग्री,श्रम तथा वित्तीय साधनों पर कुशल नियंत्रण की व्यवस्था करता है । किसी भी व्यावसायिक संस्था के लिये बजट का महत्व जिन बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट होता है वे हैं- पूर्व नियोजन का लाभ, व्यावसायिक क्रियाओं में स्थायित्व, उद्देश्यों का स्पष्टीकरण, साधनों का सही उपयोग, अधिकार, कर्तव्य एवं दायित्वों का निर्धारण, प्रभावपूर्ण समन्वय, सूचनाओं के अदान-प्रदान को प्रोत्साहन, श्रम-प्रबन्ध के मधुर सम्बन्ध,मिल-जुलकर कार्य करने की भावना, विस्तृत नियंत्रण सम्भव , संगठन व्यवस्था को मजबूत करना, प्रमाप लागत में सहायता, लेखांकन विभाग की कार्यकुशलता में वृद्धि एवं व्यवसाय के पक्ष को प्रस्तुत करना इत्यादि । अपने सीमित साधनों से अधिकतम लाभ अर्जित करना प्रत्येक व्यवसायी का प्रमुख उद्देश्य होता है ऐसा तभी सम्भव होता है जबकि वह वस्तु तथा प्रक्रिया की लागत पर प्रभावी नियत्रंण रखकर न्यूनतम लागत पर अधिकतम एवं श्रेष्ठतम किस्म का उत्पादन तैयार करने में सक्षम हो, प्रमाप लागत विधि के द्वारा इस कार्य को सम्भव बनाया जा सकता है । यह विधि प्रमाप लगात के निर्धारण पर आधारित होती है । इस विधि के अन्तर्गत भविष्य में किये जाने वाले उत्पादन के प्रमाप लक्ष्य, औसत कार्यक्षमता तथा दक्षता के आधार पर,निश्चित किये जाते हैं,उत्पादन हो जाने पर वास्तविक लागत की तुलना पहले से निश्चित किये गये प्रमापों से की जाती है, जिससे निर्धारित प्रमापों तथा वास्तविक परिणामों में विचरण का पता लग जाता है और

प्रबन्ध इन कारणों को जानकर उनके निवारण हेतु उचित एवं प्रभावी उपाय कर सकता है। प्रमाप लागत विधि के प्रयोग से जो लाभ प्राप्त होते हैं उनमें लागतों में कमी एवं नियंत्रण, निष्पादन के माप का आधार उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग, वास्तविक लागत ज्ञात करने में सहायक, श्रमिकों की कार्यक्षमता का ज्ञान, उत्पादन तथा मूल्यनीतियों का निर्धारण, कर्मचारियों में लागत चेतना का विकास, लागत लेखा विभाग की लागतों में बचत, अधिकारों में प्रभावपूर्ण प्रत्यायोजन, तुलना एवं कर्मचारी प्रेरणा का स्थिर आधार, स्कन्ध मूल्यांकन में उपयोगी, लागत प्रतिवेदन एवं बजट में सहायक, इत्यादि लाभ सम्मिलित हैं। किसी भी औद्योगिक इकाई के लिये सीमांत लागत विधि का अध्ययन आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है, यह लागत सूचनाओं को प्रदर्शित करने की एक विशेष प्रणाली है। यह प्रणाली लाभ नियोजन, लागत नियंत्रण एवं प्रबन्धकीय निर्णयों में सहायक होती है। इसमें परिवर्तनशील लागतों को ही वस्तु की लागत माना जाता है तथा स्थिर लागत को अवधि की लागतें माना जाता है इसीलिये इस तकनीक में क्रियाओं या उत्पादों पर केवल परिवर्तनशील लागतों का ही भार डाला जाता है तथा स्थिर लागतें उस अवधि के लाभों से अपलिखित की जाती हैं जिसमें वे उदय होती हैं। वस्तु के विक्रय मूल्य की तुलना परिवर्तनशील लागत से की जाती है तथा दोनों का अन्तर अंशदान कहलाता है, इस अंशदान में से उस अवधि की स्थिर लागतों को घटाकर शुद्ध लाभ मालूम किया जाता है। इस प्रकार सीमांत लागत हम उस लागत को कहते हैं जो एक अतिरिक्त इकाई वनाने में आती है। व्यावसायिक प्रबन्ध के क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण तकनीक है इसका महत्व जिन विन्दुओं से मालूम होता है वे हैं- समझने में आसानी, लागतों में तुलना, लाभ नियोजन में सरलता, लागत नियंत्रण सम्भव, विभिन्न परिवर्तनों का लागत पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी, प्रबन्धकीय निर्णयों में उपयोगी जैसे-विक्रय मूल्य निर्धारित करना, विक्रय मूल्यों में परिवर्तन का प्रभाव मालूम करना, अनुकूल उत्पाद मिश्रण का चयन, विभाग अथवा उत्पाद बन्द करने के बारे में निर्णय करना, अल्पकाल के लिये व्यावसायिक क्रियाओं को स्थगित करने के बारे में निर्णय करना, बनाओं अथवा खरीदो का निर्णय करना, किराये पर लेने या क्रय करने के बारे में निर्णय करना, नये उत्पाद के निर्माण का निर्णय करना, आगे प्रक्रियांकन करने अथवा विक्रय करने के बारे में निर्णय करना, उपोत्पाद से उत्पादन करने अथवा अवशिष्ट को सीधे बाजार में बेचने के बारे में निर्णय करना, सर्वाधिक लाभप्रद विक्रय विधि का चयन करना, संयत्र के प्रतिस्थापन सम्बन्धी निर्णय,व्यवसाय को स्थाई रुप से बंद करने के बारे में निर्णय करना। शोधार्थी द्वारा जिन औद्योगिक इकाईयों को अध्ययन

के लिये चुना है उनमें से केवल ग्वालियर दुग्ध संघ को छोड़कर बाकी सभी इकाईयों में इन तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है और इनसे मिलने वाले लाभ भी इन संस्थाओं को मिल रहे हैं ।

आधुनिक व्यावसायिक संगठनों का जैसे-जैसे आकार बढ़ता जाता है, उसके क्रिया कलापों पर नियंत्रण की समस्या में वृद्धि होती जाती है । बड़े आकार की व्यवस्था में नियंत्रण व्यवस्था सुचारु रुप से क्रियान्वयन के अधिकार एवं उत्तरदायित्व का विभाजन भी किया जाता है । इन अधिकारों का प्रयोग किस क्षमतापूर्ण सीमा तक किया गया है, इसकी उपयुक्त सूचना अच्छे नियंत्रण के लिये आवश्यक होती है । विभिन्न प्रबन्धकीय स्तरों की नीति निर्धारण, निर्णय कार्य तथा नियंत्रण के लिये इन प्रतिवेदनों को भेजना आवश्यक होता है । बड़े व्यावसायिक संगठनों में अनेक पेचीदगी के कारण विभिन्न सूचनायें लिखित प्रतिवेदनों के रुप में प्रस्तुत की जाती हैं । प्रबन्ध सूचना प्रणाली में प्रबन्ध के विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये तथ्य एकत्रित किये जाते हैं, उन्हें काट-छांट या सूक्ष्म या संश्लेषित करते हैं तथा सम्बन्धित अधिकारियों को उपलब्ध कराये जाते हैं । इन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है । जिससे संबंधित घटना की अनिश्चितता को दूर किया जा सके या कम किया जा सके । इन सूचनाओं को सामान्यतया प्रतिवेदनों के द्वारा प्रदान किया जाता है। प्रबन्ध सूचना प्रणाली के लेखांकन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है । यदि किसी संस्था में प्रभावी प्रबन्ध सूचना प्रणाली नहीं है तो प्रबन्ध के लिये लेखांकन की कोई उपयोगिता नहीं मानी जाती है । इसका मुख्य कारण यह है कि समस्त व्यावसायिक निर्णय इन्हीं प्रतिवेदनों के आधार पर लिये जाते हैं । किसी भी व्यावसायिक उपक्रम के लिये प्रबन्ध सूचना प्रणाली का महत्व जिन लाभों से दृष्टिगत होता है वे हैं- भविष्य की योजनायें बनाने में सहायक, नियंत्रण में सहायक, अपवाद द्वारा प्रबन्ध में सहायक, बाह्य पक्षों के प्रति दायित्व के निर्वहन में सहायक, कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि इत्यादि । वास्तव में अच्छी सूचना प्रणाली का प्रबन्धकों के लिये वही महत्व है जो एक व्यक्ति के लिये रक्त संचार का है । जिस प्रकार एक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिये उसके शरीर में नियमित रक्त संचार होते रहना आवश्यक है, रक्त संचार में वाधा आने से व्यक्ति बीमार पड़ जाता हैं तथा रक्त संचार बंद होने पर उसकी मृत्यु हो जाती है, ठीक उसी प्रकार अपने व्यवसाय को ठीक प्रकार चलाने के लिये नियमित सूचना संचार होते रहना आवश्यक है । प्रबन्ध सूचना प्रणाली की संस्थापना में विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता होती है । प्रबन्ध लेखापाल का यह कर्तव्य होता है कि वह सम्बन्धित अधिकारियों को व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के तथ्यों को एकत्रित एवं विधियन करके उचित समय पर

प्रस्तुत करे। इसी स्थिति में प्रबन्धक गण उचित निर्णय लेकर नीति निर्धारित कर सकते हैं। प्रबन्ध लेखापाल के इस कार्य को प्रतिवेदन देने का कार्य कहा जाता है प्रबन्ध हेतु तैयार किये गये लेखांकन प्रतिवेदनों को कई आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इसके प्रमुख वर्गीकरण इस प्रकार हैं- (१)उद्देश्य अथवा प्रयोगकर्ताके आधार पर अ- आंतरिक प्रतिवेदन ,ब- बाह्य प्रतिवेदन, (२) निहित सूचना तथ्य के आधार पर -अ- परिचालन प्रतिवेदन, ब- वित्तीय प्रतिवेदन, (३) प्रकृति के आधार पर- अ- उपक्रम प्रतिवेदन,ब- नियंत्रण प्रतिवेदन,स- अन्वेषणात्मक प्रतिवेदन , (४)- क्रियाशीलता के आधार पर- अ- व्यक्तिगत क्रियाशीलता प्रतिवेदन,ब- संयुक्त क्रियाशीलता प्रतिवेदन।

शोधार्थी द्वारा जिन औद्योगिक इकाईयों को अध्ययन के लिये चुना गया है उनमें, ग्वालियर दुग्ध संघ को छोड़कर ,सभी औद्योगिक इकाईयों में आधुनिकतम सूचना प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है इनमें कम्प्यूटर फैक्स,टेलीप्रिन्ट, टेलीफोन इत्यादि प्रमुख हैं। शोधार्थी को सर्वेक्षण के दौरान ज्ञात हुआ है कि आधुनिकतम सूचना प्रणाली के प्रयोग से इन इकाईयों में भविष्य की योजनायें बनाने में सहायता मिली है, नियंत्रण में सहायता मिल रही है, बाह्य पक्षों के प्रति दायित्व के निर्वहन में सहायता मिल रही है, कर्मचारियों की कार्यकुशलता को बढ़ाने में मदद मिल रही है, अपवाद द्वारा प्रबन्धन में सहायता मिल रही है। इन इकाईयों को अपने मुख्य कार्यालय से प्रबन्ध सूचना प्रणाली द्वारा समय- समय पर निर्देश मिलते रहते हैं जिससे ये संस्थायें अपने उद्देश्यों के प्रति सजग रहती हैं इसके साथ ही ये औद्योगिक इकाईयां अपनी सहायक इकाईयों से भी सतत् सम्पर्क बनाये रखती हैं जिससे महत्वपूर्ण सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहायता मिलती है जिसका लाभ संस्थाओं को मिलता है। सर्वेक्षण के दौरान शोधार्थी को ज्ञात हुआ है कि सहकारी क्षेत्र की इकाई ग्वालियर दुग्ध संघ इकाई प्रारम्भ से ही हानि में चल रही है इसलिये इसमें प्रबन्ध सूचना प्रणाली की आधुनिक तकनीक नहीं अपनाई गयी है क्योंकि इस पर व्यय अधिक मात्रा में होता है। इस संस्था में सूचना प्रणाली के पुराने तरीके ही प्रचलित हैं।

किसी भी व्यावसायिक संस्था की भावी सफलता उसको मजबूत आन्तरिक वित्तीय व्यवस्था पर निर्भर करती है। इससे एक ओर तो अंशधारियों द्वारा प्रदान की गई अंशपूंजी को सुरक्षित रखा जा सकता है तथा दूसरी ओर भावी विकास के लिये आन्तरिक पूंजी निर्माण होता हैं। पुराने समय में इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था लेकिन वर्तमान में प्रबन्धक इस ओर विशेष ध्यान देने लगे हैं। आय के अच्छे प्रबन्ध को प्रबन्धकीय कुशलता का एक दीर्घकालीन

मापदण्ड माना जाता है। आय के प्रबन्ध में व्यवसाय के विभिन्न दायित्वों की पूर्ति और आन्तरिक पूंजी निर्माण भी अन्तर्निहित है। इस प्रकार संस्था के स्वामियों द्वारा प्रदत्त पूंजी को यथावत बनाये रखने, संचय एवं अन्य आवश्यक कोषों का निर्माण करने एवं स्वामियों को उचित दर से लाभांश वितरित करने के लिये आय का पर्याप्त प्रबन्ध आवश्यक हो जाता है। किसी भी व्यावसायिक संस्था को सामान्यतया चार प्रकार के साधनों से आय होती है- १- प्रमुख व्यवसाय से आय, २- सहायक व्यवसाय से आय, ३- विनियोग से आय और ४- विशिष्ट आय । आपकी गणना व्यावसायिक संस्था की प्रबन्ध- क्षमता एवं कार्यकुशलता का उचित मापदण्ड मानी जा सकती हो। सामान्यतया उचित आय उसे कहा जा सकता है जिसमें कोई व्यावसायिक संस्था अपनी आय में से संचालन व्यय घटाने के बाद कम से कम इतना शुद्ध लाभ बचा ले जिससे विभिन्न कोषों एवं करों के प्रावधान के बाद अंशधारियों को उचित लाभांश दे सके। आय की सही गणना का व्यवसाय में बहुत महत्व होता है, उचित सिद्धान्तों पर आधारित वित्तीय लेखे अंशधारियों को यह सूचित करते हैं कि संस्था के प्रबन्धक उनकी पूंजी का उचित प्रयोग कर रहे हैं या नहीं। आय की सही गणना करने के बाद उसके वितरण की समस्या आती है। किसी व्यावसायिक संस्था की आय में से मुख्य रुप से चार भाग होते हैं- १- लाभों का पुनर्विनियोजन, २- ह्रास प्रबन्धन, ३- संचय एवं कोषों का प्रबन्धन, ४- लाभांश वितरण ।

लाभों का पुनर्विनियोजन प्रबन्धन का एक महत्वपूर्ण कार्य है, इसका अर्थ है कि कम्पनी के लाभों के एक भाग को भविष्य के लिये सुरिक्षत रखना तथा उनकी मात्रा बढ़ जाने पर उनका पूंजीकरण कर देना। लाभों का पुनर्विनियोजन सामान्यतया जिन तत्वों द्वारा प्रभावित होता है वे हैं- संस्था की आय, लाभांश नीति, सरकार की कर नीति , प्रबन्धकीय दृष्टिकोंण, पूंजी संरचना, विकास की सम्भावनायें,व्यापार चक्र की सम्भावना, सरकार की उद्योग सम्बन्धी नीति, उद्योग में प्रचलित परम्परायें , भावी स्वामित्व व नियंत्रण का लाभ इत्यादि। लाभों के पुनर्विनियोजन द्वारा संस्था को अनेक लाभ होते हैं उनमें प्रमुख हैं- व्यापार चक्र से सुरक्षा, लाभांश नीति में स्थायित्व, विस्तार की सम्भावनायें, कार्यकुशलता में वृद्धि , ह्रास एवं कोषों की पूर्ति , ऋणपत्रों का विमोचन, लागत रहित पूंजी की प्राप्ति एवं प्रबन्धकों के मनोबल में वृद्धि इत्यादि। लाभों के पुनर्विनियोजन से अंशधारियों को होने वाले लाभ हैं- अंशों के मूल्य में वृद्धि ,आय में वृद्धि , सुरक्षित विनियोग। इसके अतिरिक्त इससे समाज को भी लाभ होते हैं वे हैं- पूंजी निर्माण में वृद्धि ,जीवन स्तर में वृद्धि ,वित्तीय स्थायित्व

इत्यादि। लाभों का पुनर्विनियोजन एक निश्चित सीमा तक तो ठीक रहता है इसके बाद इसके कई दोष उत्पन्न हो जाते हैं जैसे- एकाधिकारों की सम्भावना, अतिपूंजीकरण की आशंका, वित्त का दुरुपयोग, सट्टे की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन, अंशधारियों में तीव्र असंतोष, करदायित्व से बचना, पूंजी का अपव्यय इत्यादि। शोधार्थी द्वारा अध्ययन के लिये जिन औद्योगिक इकाईयों का चयन किया गया है उनमें पिछले तीन वर्षों में जो लाभों का पुनर्विनियोजन किया गया है वह संक्षिप्त रुप में इस प्रकार है-१- ग्वालियर रेयान द्वारा वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमशः ८३.०९ करोड़ रुपये, ११२.६ करोड़ रुपये तथा १९५.८४ करोड़ रुपये के लाभों का पुनर्विनियोजन किया गया है, यह प्रथम वर्ष की तुलना में तृतिय वर्ष में १२३.७ प्रतिशत अधिक है१ २- जे०के० टायर द्वारा इसी अवधि में क्रमशः ८.७२ करोड़ रुपय, १.११ करोड़ रुपये तथा- १.९३ करोड़ रुपये का पुनर्विनियोजन किया गया है। इस प्रकार इसमें निरंतर कमी आती रही है। ३- गोदरेज द्वारा इसी अवधि में क्रमशः ९.७५ करोड़ रुपये, २८.८८ करोड़ रुपये एवं १६.६५ करोड़ रुपये के लाभों का पुनर्विनियोजन किया गया है, यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १९६ प्रतिशत अधिक है लेकिन द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ४२.३५ प्रतिशत कम है। ४- पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) द्वारा इसी अवधि में क्रमशः २३.२६ करोड़ रुपये, ११.०४ करोड़ रुपये तथा ५.८७ करोड़ रुपये के लाभों का पुनर्विनियोजन किया गया है, इस प्रकार इसमें लगातार कमी आती रही है। यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ५२.५ प्रतिशत कम, द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ४६.८ प्रतिशत कम है। संस्था के लाभों में कमी आने के कारण ऐसा हुआ है। ५- कैडबरीज में इसी अवधि में क्रमशः १.१९ करोड़ रुपये ,-०.३६ करोड़ रुपये तथा ४.३३ करोड़ रुपये के लाभों का पुनर्विनियोजन किया गया है। इसमें प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में बहुत अधिक कमी आई है ऐसा मूल्यंह्रास में अधिक वृद्धि के कारण हुआ है, यह प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय में २६६ प्रतिशत अधिक रहा है। ६- ग्वालियर दुग्ध संघ द्वारा अपने स्थापना वर्ष से ही कोई लाभ नहीं कमाया है इसलिये लाभों के पुनर्विनियोजन का प्रश्न ही नहीं उठता।

मूल्यह्रास की व्यवस्था सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन एवं विस्तार हेतु वित्त प्रबन्धन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है, जो स्थायी सम्पत्तियां व्यवसाय में उपयोग में लाई जा रही होती हैं, उनका जीवन सीमित होता है तथा प्रयोग के कारण उनकी उपयोगिता एवं मूल्य घटता ही जाता है। अतः उन पर ह्रास की व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है। ह्रास की उचित व्यवस्था करना प्रबन्ध का

एक महत्वपूर्ण दायित्व है, अत: इसके सम्बन्ध में प्रबन्धकों को विशेष रुप से अच्छी नीति निर्धारित करनी चाहिये । सामान्यतया ह्रास नीति का निर्माण करते समय जिन तत्वों को ध्यान में रखना चाहिये वे हैं- स्थिरता, सुरक्षा ,पुरानी तथा अप्रचलित सम्पत्तियों का प्रतिस्थापन, मूल्यस्तर में होने वाले परिवर्तन, वैधानिक अपेक्षायें इत्यादि । शोधार्थी द्वारा जिन औद्योगिक इकाईयों को अध्ययन के लिये चुना है उनमें ह्रास की व्यवस्था सारांश रुप में इस प्रकार की गई है- **(१) ग्वालियर रेयान** में वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश: ५४.५ करोड़ रुपये ६६.०७ करोड़ रुपये एवं ६६.७ करोड़ रुपये के ह्रास का आयोजन किया गया है, इस प्रकार इसमें लगातार वृद्धि होती रही है । **(२) जे०के० टायर** में इसी अवधि में क्रमश: २५.०५ करोड़ रुपये, २६.४५, एवं २२.६४ करोड़ रुपये के ह्रास का आयोजन किया गया है, इस प्रकार प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ५.६२ प्रतिशत वृद्धि हुई है तथा द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १४.४४ प्रतिशत की कमी आई है । **(३) गोदरेज** संस्था द्वारा इसी अवधि में क्रमश: ६.५१ करोड़ रुपये, ७.०४ करोड़ रुपये एवं ७.३१ करोड़ रुपये के ह्रास का आयोजन किया गया है । इस प्रकार इसमें लगातार वृद्धि होती रही है । **(४) पंचशील (अपोलो टायर लि०)** द्वारा इसी अवधि में क्रमश: ८.५२ करोड़ रुपये, १७.२७ करोड़ रुपये तथा २३.११ करोड़ रुपये के ह्रास का आयोजन किया गया है । इसमें लगातार वृद्धि होती रही है । **(५) कैडबरीज** संस्था द्वारा इसी अवधि में क्रमश: ३.६७ करोड़ रुपये, ३.७३ करोड़ रुपये एवं ३.२७ करोड़ रुपये का ह्रास प्रबन्धन किया गया है । यह प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में १.६३ प्रतिशत अधिक है लेकिन द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में इसमें १२.३३ प्रतिशत की कमी की गई है । **(६) ग्वालियर दुग्ध संघ** द्वारा इसी अवधि में क्रमश: ३६ लाख रुपये, ३३ लाख रुपये एवं ४८ लाख रुपये के ह्रास का आयोजन किया गया है । इसमें प्रथम वर्ष की तुलना में द्वितीय वर्ष में ८.३४ प्रतिशत की कमी की गई है जबकि द्वितीय वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में ४५.५ प्रतिशत वृद्धि की गई है ।

आधुनिक युग में वह व्यवसाय ही सफल होता है जिसकी नीतियां दूरदर्शिता पूर्वक निर्धारित की जाती हैं तथा भविष्य की समस्त आवश्यकताओं के अनुरुप वुद्धिमिता पूर्वक, योजनाबद्ध ढंग से योजनायें बनाई जाती हैं । इसी उद्देश्य के तहत अच्छी व्यावसायिक संस्थाओं के प्रबन्धक संचय की व्यवस्था करना उचित समझते हैं जिससे किसी ज्ञात हानि या सम्भाव्य हानि की पूर्ति की जा सके । संचय लाभहानि खाते पर एक आयोजित प्रभार होता है जिसका सृजन अनिवार्य

होता है चाहे संस्था को लाभ हो या न हो। जब व्यवसाय की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के उद्देश्य से संचय बनाया जाता है तो उसे कोष कहा जाता है, इसका निर्माण केवल विभाजन योग्य लाभों में से ही किया जाता है। संचय एवं कोष बनाते समय जो उद्देश्य ध्यान में रखने होते हैं वे हैं- संस्था की आर्थिक स्थिति को मजबूत करना, शुद्ध आय की गणना करना, लाभांश में समानता लाना, आन्तरिक पूंजी का निर्माण करना, अज्ञात हानियों की व्यवस्था करना, प्रतियोगियों को वास्तविक लाभ की जानकारी न देना, राजनीतिक कारण इत्यादि। सामान्यतया किसी भी व्यावसायिक संस्था में जो विभिन्न संचय एवं कोष बनाये जाते हैं वे इस प्रकार के हो सकते हैं- सामान्य संचय, लाभांश समानीकरण कोष, पूंजी संचय, सुधार कोष, आकस्मिकता कोष, गुप्त संचय इत्यादि/ शोधार्थी द्वारा जिन औद्योगिक इकाईयों का चयन अध्ययन के लिये किया गया है उनमें जो संचय एवं कोष वनाये गये हैं उनकी संक्षिप्त में स्थिति प्रकार रही है- **(१) ग्वालियर रेयान** में वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३, १९९३-९४ में क्रमशः ४२६.८४ करोड़ रुपये, ७९५.४१ करोड़ रुपये एवं ९९३.३३ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं। इस प्रकार इसमें प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १३२.७२ प्रतिशत वृद्धि हुई है। **(२) जे०के० टायर** में इसी अवधि में क्रमशः २३४.०५ करोड़ रुपये, २६७.९ करोड़ रुपये एवं २९५.४३ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं। इस प्रकार इसमें प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में २६.२३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। **(३) गोदरेज** औद्योगिक इकाई द्वारा इसी अवधि में क्रमशः ४८.४७ करोड़ रुपये, ५५.४९ करोड़ रुपये तथा १५९.०५ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं। यह प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में २२८.१४ प्रतिशत अधिक हैं। **(४) पंचशील (अपोलो टायर (लि०)** द्वारा इसी अवधि में क्रमशः १३५.१९ करोड़ रुपये, १४६.१४ करोड़ रुपये तथा १६०.१९ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं। इस प्रकार ये प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में १८.४९ प्रतिशत अधिक हैं। **(५) कैडबरीज** संस्था में इसी अवधि में क्रमशः १८.४२ करोड़ रुपये, ५३.७४ करोड़ रुपये तथा ५८.७५ करोड़ रुपये के संचय रखे गये हैं। इस प्रकार ये प्रथम वर्ष की तुलना में तृतीय वर्ष में २१५.६९ प्रतिशत अधिक हैं। **(६) ग्वालियर दुग्ध संघ** द्वारा इस अवधि में कोई भी संचय नहीं बनाया गया है क्योंकि संस्था प्रारम्भ से ही हानि में चल रही हैं।

किसी भी व्यावसायिक संस्था की कुल आय में से समस्त व्यय घटाने, करों का प्रावधान कर देने तथा संचय एवं कोषों में राशि हस्तांतरण कर देने के बाद जो लाभ शेष बचते हैं, उन्हें संचालक अंश धारियों में बांट देते हैं। लाभों के सम्बन्ध में संचालकों के समक्ष दो विकल्प होते हैं-

पहला तो यह कि इन लाभों को व्यवसाय में रोक कर रखा जाये तथा दूसरा विकल्प यह कि इन्हें लाभांश के रुप में अंशधारियों में वितरित कर दिया जाये। इस प्रकार एक संस्था की लाभांश नीति निश्चित करना अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रबन्ध के महत्वपूर्ण निर्णयों में से एक है। एक सुदृढ़ एवं संतुलित लाभांश नीति पर्याप्त सीमा तक संस्था की वित्तीय संरचना, कोषों के प्रवाह, संस्था के कोषों की तरलता, अंशों के पुस्त मूल्य तथा बाजार मूल्यों को प्रभावित करती है। इसलिये लाभांश सम्बन्धी निर्णय काफी सोच समझकर लिया जाता है जिससे एक ओर तो अल्पकाल में अंशधारियों को संतुष्ट कर दिया जाता है तथा दीर्घकाल में संस्था को विकास हेतु पर्याप्त आन्तरिक पूंजी उपलब्ध कराई जाती है। लाभांश नीति के अन्तर्गत लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों , नीतियों एवं कार्य प्रणाली निश्चित करने व लाभांश की दर निश्चित करने तथा इसे वितरित करने की योजना को सम्मलित किया जाता है। लाभांश नीति को जो तत्व प्रभावित करते हैं वे हैं- लाभों की स्थिति ,पुरानी लाभांश दरें, भावी वित्तीय आवश्यकतायें, कम्पनी के कोषों में तरलता, अंशधारियों की प्रत्याशी, कम्पनी की स्थिति, बैधानिक प्रतिबन्ध, स्वामित्व का ढ़ांचा, व्यापार चक्रों का प्रभाव, लोकमत, आर्थिक नीतियों, कर नीतियां इत्यादि। शोधार्थी द्वारा अध्ययन के लिये जिन औद्योगिक इकाईयों का चयन किया गया है उनमें लाभांश की स्थिति संक्षिप्त में इस प्रकार रही है- (१) **ग्वालियर रेयान** इकाई द्वारा वर्ष १९९१-९२, १९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश: ३७.५ प्रतिशत , ४० प्रतिशत एवं ४७.५ प्रतिशत लाभांश का भुगतान किया गया है, इस प्रकार संस्था ने अपने अंश धारियों को बढ़े हुये एवं स्थिर लाभांश का भुगतान किया है। (२) **जे०के० टायर** द्वारा इसी अवधि में क्रमश: ३० प्रतिशत, २० प्रतिशत एवं ३० प्रतिशत लाभांश भुगतान किया गया है, इस प्रकार संस्था द्वारा भुगतान किये गये लाभांश में अस्थिरता एवं अनिश्चितता की स्थिति रही है। (३) **गोदरेज** इकाई द्वारा इसी अवधि में क्रमश: १० प्रतिशत, २० प्रतिशत,एवं ३० प्रतिशत लाभांश का भुगतान किया गया है, इस प्रकार इस संस्था ने अपने अंशधारियों को स्थिर एवं बढ़ी हुई दर से लाभांश का भुगतान किया है। (४) **पंचशील अपोलो टायर लि०** इकाई द्वारा इसी अवधि में क्रमश: ३५ प्रतिशत ,३५ प्रतिशत एवं ३५ प्रतिशत लाभांश का भुगतान किया गया है, इस प्रकार संस्था ने इन तीन वर्षों की अवधि में एक ही दर से लाभांश का भुगतान किया है। (५) **कैडबरीज** इकाई द्वारा इसी अवधि में क्रमश: ३० प्रतिशत, २० प्रतिशत एवं ३५ प्रतिशत लाभांश का भुगतान किया गया है, इस प्रकार इस संस्था द्वारा किये गये लाभांश भुगतान में अनिश्चितता एवं अस्थिरता की स्थिति रही है। द्वितीय वर्ष में लाभ की मात्रा में कमी आने के कारण लाभांश की दर में कमी हुई है। (६) **ग्वालियर दुग्ध संघ**

द्वारा अपने कार्यकाल में कोई लाभ अर्जित नहीं किया गया है इसलिये इसके द्वारा अपने अंशधारियों को भी लाभांश का वितरण भी नहीं किया गया है ।

सुझाव एवं शोध सम्भावनायें -

१- शोधार्थी द्वारा जिन इकाईयों का अध्ययन के लिये चयन किया गया है, उनको लगाने का एक मुख्य उद्देश्य स्थानीय बेरोजगारी को दूर करना भी था, लेकिन शोधार्थी को सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि कैडबरीज, गोदरेज, जे०के० टायर, पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) में ८० प्रतिशत या इससे अधिक कर्मचारी ग्वालियर सम्भाग के बाहर के कार्यरत हैं जिससे स्थानीय बेरोजगारी को दूर करने के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पा रही है । अत: इन इकाईयों को कर्मचारियों की नियुक्ति में स्थानीय लोगों को वरीयता देने का प्रावधान करना चाहिये ।

२- भारत जैसे विकासशील देश में जहां जनाधिक्य है, वहां कम्प्यूटरीकृत एवं पूर्ण स्वचालन व्यवस्था उचित नहीं है । कैडवरीज, गोदरेज, पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) में ९० प्रतिशत से अधिक एवं जे०के० टायर ,ग्वालियर रेयान में ७५% से अधिक कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से एवं स्वचालन प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न किया जाता है जिससे लोगों को रोजगार के बहुत ही कम अवसर उपलब्ध हो पाते हैं । अत: इन इकाईयों को अपनी नीतियों में रोजगार के अवसरों पर भी विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है ।

३- शोधार्थी द्वारा जिन इकाईयों को अध्ययन के लिये चुना है वे ग्वालियर के पास ही स्थापित हैं, इन इकाईयों के द्वारा उत्पादित उत्पाद को प्रदर्शित करने की कोई व्यवस्था नहीं है । अत: इन इकाईयों को अपने उत्पादन के प्रदर्शन एवं विक्रय के लिये ग्वालियर शहर में अपने केन्द्र स्थापित करना चाहिये जिससे जन सामान्य को इनकी जानकारी मिल सकेगी एवं इन इकाईयों के द्वारा अधिक विक्रय किया जा सकेगा ।

४- अध्ययन की गई इकाईयों के कार्यालयों से शोधार्थी को शोधकार्य के लिये समंक उपलब्ध नहीं हो सके हैं, जब शोधार्थी द्वारा इस सम्बन्ध में अधिकारियों से सम्पर्क किया गया तो उनके द्वारा इस सम्बन्ध में कोई विशेष सहायता नहीं मिल सकी । अत: इन औद्योगिक इकाईयों को

चाहिये कि अपने कार्यालयों में इस तरह की व्यवस्था करें कि शोध कार्य के लिये चाही गई सामग्री शोधार्थियों को मिल सकें, जिसका लाभ अन्तत: इन इकाईयों को ही मिलेगा ।

५- ग्वालियर रेयान इकाई में में जिन वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है उनमें से स्पॉन्ज आयरन की उत्पादन क्षमता का केवल १२.१ प्रतिशत ही उत्पादन किया जाता है। अत: संस्था को चाहिये कि इस उत्पाद की भी अधिकतम उत्पादन क्षमता का उपयोग कर उत्पादन करें जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी होगी और इसका लाभ संस्था को मिलेगा ।

६- ग्वालियर रेयान इकाई में जिस गति से लाभ अर्जित किया गया है उस अनुपात में अंशधारियों को लाभांश का भुगतान नहीं किया गया है। वर्ष १९९१-९२,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश: २१.६१ प्रतिशत, १८.२३ प्रतिशत एवं ११.०६ प्रतिशत लाभांश भुगतान अनुपात रहा है। इससे अंशधारियों में असंतोष की भावना को वल मिलता है। अत: संस्था को चाहिये कि लाभांश भुगतान अनुपात में वृद्धि करे।

७- ग्वालियर रेयान में दीर्घकालीन ऋणों का अधिक उपयोग किया जा रहा है जिससे संस्था पर ब्याज का भार अधिक रहता है इसलिये इस इकाई को चाहिये कि दीर्घकालीन ऋणों को कम करके समता अंश पूंजी में वृद्धि करे जिससे संस्था के स्वामी अर्थात अंशधारियों को लाभ मिल सकेगा ।

८- जे०के० टायर इकाई में टायरों की उत्पादन क्षमता के ७९.७ प्रतिशत का उपयोग कर उत्पादन किया जा रहा है। अत: संस्था को अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग कर उत्पादन करना चाहिये जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी आयेगी जिसका लाभ उपभोक्तओं को मिलने के साथ-साथ इस इकाई को भी मिलेगा।

९- जे०के० टायर इकाई में अध्ययन अवधि अर्थात् वर्ष १९९१-९२,१९९२-९३ एवं १९९३-९४ में क्रमश: ३२.६० प्रतिशत, ८०.३३ प्रतिशत एवं १३०.५४ प्रतिशत लाभांश भुगतान अनुपात रहा है। इस प्रकार इस इकाई द्वारा वर्ष १९९३-९४ में अपने लाभों से अधिक लाभांश का भुगतान किया गया है जो कि एक स्वस्थ्य परम्परा नहीं है। अत: सस्था को चाहिये कि इस प्रकार की

त्रुटि से दूर रहा जाये क्योंकि इससे संस्था के संचयों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के साथ-साथ संस्था की आर्थिक स्थिति भी प्रभावित होती है ।

१०- जे०के० टायर इकाई में समता अंश पूंजी की तुलना में दीर्घकालीन ऋणों का उपयोग अधिक मात्रा में किया जा रहा है जिससे ब्याज के भार में वृद्धि होती जाती है इसी कारण से संस्था के विक्रय में वृद्धि के बावजूद भी प्रति अंश अर्जित आय में कमी आई है जिससे संस्था के प्रति विनियोजकों एवं अंशधारियों में अविश्वास की भावना प्रबल होती जाती है इसीलिये संस्था को चाहिये कि दीर्धकालीन ऋणों की मात्रा को कम करके समता अंशपूंजी में वृद्धि करे ।

११- गोदरेज औद्योगिक इकाई में अपनी उत्पादन क्षमता के ५० प्रतिशत से ६० प्रतिशत भाग का ही प्रयोग कर उत्पादन किया जा रहा है, जो कि काफी कम है । संस्था को चाहिये कि वह अपनी क्षमता का पूरा लाभ उठाये और उत्पादन में वृद्धि करे जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी आने के साथ-साथ संस्था के लाभों में भी वृद्धि होगी ।

१२- अध्ययन अवधि वर्ष १९९१-९२,१९९२-९३ एवं वर्ष १९९३-९४ में गोदरेज इकाई के विक्रय में लगातार कमी आई है जिससे संस्था के उत्पादन के प्रति ग्राहकों के रुझान में कमी की ओर संकेत करती है । अत: संस्था को चाहिये कि वह अपने उत्पादों का विज्ञापन एवं विक्रय सम्बर्द्धन क्रियाओं के माध्यम से विक्रय में वृद्धि करे । इसके द्वारा संस्था को तो लाभ मिलेगा ही इसके साथ ही ग्राहकों को कम कीमत पर माल मिल सकेगा क्योंकि जब विक्रय अधिक होता है तो उत्पादन में वृद्धि होती है जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी आ जाती है ।

१३- गोदरेज इकाई के प्रति अंश अर्जित आय में लगातार कमी होती जा रही है इसलिये संस्था को चाहिये कि वह अपने लाभों में वृद्धि कर प्रतिअंश अर्जित आय में वृद्धि करने का प्रयास करे जिससे अंशधारियों एवं विनियोक्ताओं में संस्था के प्रति विश्वास बना रहेगा ।

१४- पंचशील अपोलो टायर लिमिटेड इकाई में प्रतिवर्ष विक्रय में वृद्धि हो रही है लेकिन इसके लाभों में कमी आ रही है इसका अर्थ यह हुआ कि इसके खर्चों में काफी वृद्धि हुई है । अत: संस्था को चाहिये कि वह अनावश्यक खर्चों में कटौती कर अपने लाभों में वृद्धि करने का प्रयास करे ।

१५- पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) इकाई में अध्ययन अवधि के वर्षों में प्रति अंश अर्जित आय में लगातार कमी आती रही है जिससे विनियोक्ताओं एवं अंशधारियों के मन में अविश्वास की भावना उत्पन्न होती है । अत: संस्था को अपने लाभें में वृद्धि कर प्रति अंश अर्जित आय में वृद्धि करने का प्रयास करना चाहिये ।

१६- पंचशील (अपोलो टायर लिमिटेड) इकाई में लाभों की कमी होने से लाभों के पुनर्विनियोजन में भी कमी आ रही है जिससे भविष्य में संस्था की विकास की गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । अत: संस्था को अपने लाभों में वृद्धि करके लाभों के पुनर्विनियोजन को भी बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये जिससे संस्था की आर्थिक स्थिति मजबूत रहे ।

१७- कैडबरीज औद्योगिक इकाई में अपनी उत्पादन क्षमता के ११ प्रतिशत से ५५ प्रतिशत तक भाग का ही उपयोग कर उत्पादन किया जा रहा है जो कि बहुत कम है । अत: संस्था को चाहिये कि वह उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग करे जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी आयेगी और उसका लाभ उपभोकताओं को मिलने के साथ-साथ संस्था को भी मिलेगा ।

१८- कैडबरीज इकाई में प्रतिअंश अर्जित आय में कमी-वृद्धि होती रही है इसके साथ ही लाभांश भुगतान अनुपात भी कम-अधिक होता रहा है जिससे अंशधारियों में अनिशिचता की स्थिति बनी रहती है । अत: प्रबन्धकों को इस सम्बन्ध में स्पष्ट नीति का अनुगमन करना चाहिये ।

१९- ग्वालियर दुग्ध संघ संस्था सहकारी क्षेत्र में कार्यरत है । यह संस्था अपनी स्थापना के वर्ष से ही नुकशान में चल रही है जिससे ने तो अंशधरियों को लाभांश ही दिया जा सका है, न किसी तरह का संचय प्रबन्धन किया गया है । इसलिये प्रबन्धकों को चाहिये कि सरकारी मदद लेकर, अपनी उत्पादन क्षमता में वृद्धि करके अभी तक की हानियों को समाप्त करें । यदि हानियों को समाप्त करने में सफलता मिल जाती हैं तो और अधिक अंश पूंजी एकत्रित करके इस संस्था में आधुनिक यंत्रों, आधुनिक सूचना प्रणाली का प्रयोग करना सम्भव हो सकता है जिससे इसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सकेगी और इसकी आर्थिक स्थिति भी मजबूत रहेगी ।

२०- ग्वालियर दुग्ध संघ संस्था में ब्याज पर बहुत अधिक मात्रा में राशी खर्च होती है क्योंकि इसने दीर्घकालीन ऋणों का अधिक मात्रा में उपयोग किया है इसलिये इसको चाहिये कि दीर्घकालीन ऋणों को समता अंश पूंजी में परिवर्तित करवा लिया जाये जिससे ब्याज पर किये जाने वाले खर्च में कटौती सम्भव हो सकेगी ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

BIBLIOGRAPHY

1. Archer - Business Finance, Theory & Management.

2. Ashley, C.A. - Corporation Finance.

3. Budger & Guthmann - Investment - Principles and Practices.

4. Basu, S.K. - Industrial Finance in India.

5. Bond, G.D. - Corporate Finance for Management.

6. Broadly - Fundamentals of Corporation Finance .

7. Broadly, J.F. - Administrative Financial Management.

8. Bright, M.G. - Financial Management.

9. Black, Champion & Brown - Accounting in Business Decision.

10. Batly, J. - Standard Costing.

11. Bassies - Economic forecasting.

12. Batly, J. - Standard Costing.

13. Cirvaste, V.R. - Stock Market Premier.

14. Claude, N.R. - Stock Market Premier.

15. Cole, G.D.H. - Studies in Capital and Investment.

16. Chaudhary, S.B. - Analysis of Company Financial.

17. Chambess, Edward J. - Economic Fluctuations and Forecasting.

18. Choudhary, S.B. - Management Accountancy.

19. Dewy. - Corporation Finance Val I & II.

20. Danaldson, F.F. - Corporate Finance.

21. Dougall, H.E. - Business Financial Management.

22. Dautem Care A. - Business Finance.

23. Dearden, John - Cost & Budget analysis.

24. De Paula, F. Clive - Managerial Accounting.

25. Engeer, G.E. - Business Financial Management.

26. Field, Kenneth - Corporation Finance.

27. Francis, D.P. - The Foundation of Financial Management.

28. Gerstern berg, W.C. - Financial Organisation & Management.

29. Gitman, L.J. - Principles of Managerial Finance .

30. Gower Press. - Financial Management (Hand Book).

31. Goyal, O.P. - Financial Institutional and Economic.

32. Gupta, L.C. - Readings in Industrial Finance.

33. Guthmann, Harry G. - Analysis of Financial Statement.

34. Harald, G - Corporation Finance.

35. Hastings, Paul G. - Management of Business Finance.

36. Hongland - Corporation Finance.

37. Husband & Dockesay - Modern Corporation Finance.

38 Horngsen, Charles T. - Accounting for Management Control.

39. Howard, L.R. and Brown, J.R. - Principles and Practices of Management Accountancy.

40. Johnson. R.W. - Financial Management.

41. Jone, H.L. - Corporation Finance.

42. Kuchhal, S.C. - Corporation Management.

43. Kuchhal, S.C. - Financial Management.

44. Keller and Ferrara - Management Accounting & Profit control

45. Knight and Weinwarm - Managerial Budget.

46. Lee, T.A. - Company Financial Reporting.

47. Loknathan, P.S. - Industrial Organisation in India.

48. Midgley, K. - Business Organisation & Economic Market.

49. Moulton, H.J. - Financial Organisation & Economic System.

50. Murti, V.S. - Management Finance.

51. Moonitz & Jardan - Accounting - analysis of its Problems.

52. Moore & Stetller - Accounting System for Management Control. 703

53. Murphy, M.E. - Managerial Accounting.

54. Nevin Edward - The Role of Financial Institutions.

55. Nickerson, Clarence B. - Managerial Cost Accounting and Analysis.

56. Osborn, R.C. - Corporation Finance.

57. Paish, F.W. - Business Finance.

58. Prince, J.H. - Investment Analysis.

59. Raj, A. Basant C. - Corporate Financial Management.

60. Ram Chandran, H. - Financial Planning & Finance.

61. Samual, J.M. - Management Company Finance.

62. Silverstein - Corporation Finance.

63. Salomon Ezra - Management of Corporate Capital.

64. Salomon Ezra - The Theory of Financial Management.

65. Shrivastav, R.M. - Financial Management.

66. Sinha, S.L.N. - The Capital Market in India.

67. Singh & Kumar - The Financial Analysis for Business Decision,

68. Sharaff, A.D. - Finance and Industry in India.

69. Silk, Leonard S. - Forecasting Business Trends.

70. Tarkeshwari Maitin - Institutional Financing in India.

71. Upadhyaya, K.M. - Financial Management.

72. Vanhorne & Jamesc - Financial Management & Policy.

73. Walker, E.W. - Essentuals of Financial Management.

74. Weston & Woods - Basic Financial Management.

75. Welsch - Budgeting Profit - Planning and Control

76. Willsmore, A.M. - Business Budgets and Budgetary Control.

77. अग्रवाल, एम.डी. एवं एन.पी. अग्रवाल - वित्तीय प्रबन्ध

78. अग्रवाल, एम.डी. - निगम प्रबन्ध

79. अग्रवाल जे.के. एवं अग्रवाल आर.के. - प्रबन्धकीय लेखांकन

80. अग्रवाल एम.आर. - प्रबन्ध लेखांकन

81. आर्य, एस.पी. - सामाजिक विश्लेषण

82. कुच्छल, सुरेश चन्द्र - निगम वित्त

83. कुलश्रेष्ठ, आर. एस. - निगमों का वित्तीय प्रबन्ध

84. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ - सामाजिक सर्वेक्षण व सामाजिक शोध

85. गुप्ता, एस.पी. - प्रबन्धकीय लेखा विधि

86. यादव, डी.एस. - निगम वित्त प्रबन्ध

87. श्रीवास्तव, राधे मोहन - वित्तीय प्रबन्ध सिद्धांत एवं समस्यायें

88. शर्मा, बी. सी. - वित्तीय प्रबन्धक के सिद्धांत

89. सक्सेना, एस. सी. - भारत में उद्योगों का संगठन वित्त व्यवस्था एवं प्रबन्ध

90. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ - सामाजिक शोध व सांख्यिकी

Journals and Periodicals.

- Artha Niti, Calcutta University (Monthly)

- Artha Vigyan, Poona (Monthly)

- Commerce, Bombay (Weekly)

- Commerce & Industry, New Delhi (Weekly)

- Capital, Calcutta (Weekly)

- Eastern Economist, New Delhi (Fortnightly)

- Economic Times, New Delhi (Daily)

- Economist, London (Weekly)

- Financial Express, New Delhi (Daily)

- Hindustan Times, New Delhi (Daily)

- Indian Economic review, New Delhi (Quarterly)

- Indian journal of Commerce - all India Commerce Associations Chandigarh.

- Indian Express, New Delhi (Daily)

- Indian Finance, calcutta (Weekly)

- Indian Economic Journal, Bombay (Quarterly)

- Indian Journal of Economics, allahabad (Quarterly)

- Times of India, Bombay (Daily)

- Yojna, New Delhi (Fortnightly)

- Reports - Investment Research & Information Services Ltd.